Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान

द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित

साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037

January-Februray 2025

Volume 13, Issue 1-2

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 1-2 | जनवरी-फरवरी : 2025 | आईएसएसएन : 2321-8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

इन्जीनियर सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा। सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	7-7
2.	भारतीय समाज और नारी	डॉ. जनक रानी	8-11
3.	कला, शिल्प, संस्कृति एवं लोक परंपराओं का विश्लेषण : काशी, सारनाथ, अयोध्या, एवं कुशीनगर के सन्दर्भ में	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	12-19
4.	डॉ. नामवर सिंह के व्यक्तित्व में बनारस की भूमिका	लाभ चंद्र धाकड़, प्रो. रमेश चंद मीना,	20-25
5.	डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के बाल साहित्य की प्रमुख विधाएँ	डॉ. रचना शर्मा	26-31
6.	आंचलिक असमानता एवं विकासशील राजनीति : पिछड़े क्षेत्रों में नीति-निर्माण की प्रभावशीलता का अध्ययन	प्रभात कुमार ओझा	32-37
7.	शीतयुद्धोत्तर भारत-अमेरिका संबंधों में प्रवासी भारतीयों की भूमिका : एक सांस्कृतिक, आर्थिक और कूटनीतिक विश्लेषण	डॉ. अवधेश कुमार, विजय कुमार	38-43
8.	डॉ. नरेश सिहाग की लघु कथाओं के कथा शिल्प की संरचना	डॉ. मीरा चौरसिया	44-47
9.	भारतीय समाज में पर्यावरणीय स्थिरता में महिलाओं का योगदान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अंजनी कुमार, तनु तिवारी	48-56
10.	बोहल की कहानियां - एक समीक्षा	डॉ. सरला जांगिड	57-59
11.	साहित्यिक-सांस्कृतिक स्पंदनों का साक्षी 'जब तोप मोकाबिल हो'	राजेश कुमार, डॉ. उषा रानी	60-65
12.	भारतेन्दु हरिश्चंद्र रचित 'भारत दुर्दशा' नाटक और नर्मद रचित 'तुलजी वैधव्यचित' नाटक में सम्प्रेषण कौशल	सिमरन कोठारी	66-70
13.	वृद्ध मनोभाव का स्वरूप	उमाकान्त	71-75
14.	धर्मवीर भारती के काव्य में युगबोध एवं यथार्थवादी दृष्टि	निशिम नागर, डॉ. शिवचरण शर्मा	76-83
15.	माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाओं में नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का अध्ययन	डॉ. विष्णु कुमार	84-89
16.	हिन्दी के प्रचार-प्रसार में साहित्येतर वर्गों की भूमिका	राजू नंदन साहा	90-99
17.	हिंदी भाषा और ई-शिक्षा	डॉ. लीना गोयल	100-103
18.	मलयालम की क्रन्तिकारी लेखिका माधविकुट्टी	डॉ. गायत्री एन	104-108
19.	विद्यापति की पदावली में भक्ति भावना	नयन कुमारी, डॉ. विनोद कुमार शर्मा	109-115

20.	**From Tradition to Transformation : Critically Exploring the Influence of Buddhist Education on Indian Society**	**Pratyashi Saikia Tandon**	**116-121**
21.	अंतगड़दशांग सूत्र की वर्तमान प्रासंगिकता	साध्वी देशनाश्री, डॉ. तृप्ति जैन	122-131
22.	**Digitalization : A Catalyst for Improved Financial Performance in the Banking Sector–Reality or Myth?**	**Vishal Garg**	**132-137**
23.	**Digital Payments and Consumer Behaviour : Trends and Challenges**	**Rajat Sahay Dubey, Dr. Mayank Jindal**	**138-144**
24.	**Influence of Religious Ethics on Business Practices in India : A Multifaceted Approach**	**Pardeep Kumar, Dr. Kamlesh Kumar Patel**	**145-150**
25.	कमजोर होता सार्क और दक्षिण एशिया में चीन का बढ़ता प्रभाव	कैलाश चन्द सैनी	151-155
26.	स्वतंत्रता संग्राम में ठाकुर प्यारेलाल सिंह का योगदान	गायत्री सिंह	156-158
27.	महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षण प्रक्रिया में स्मार्टफोन की उपयोगिता का अध्ययन	दीक्षा देशपांडे, डॉ. नरेंद्र त्रिपाठी	159-164
28.	मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में पुरुष मनोविज्ञान	रेनू सैनी, डॉ. शिवांगी सिंह	165-169
29.	**Śaṅkardeva's Bhakti Movement : Interpreting the *Bhāgavata-purāṇa* in the Assamese Context**	**Dr. Nibedita Goswami**	170-174
30.	डॉक्टर नरेश सिहाग बाल मनोविज्ञान के कुशल चितेरे	कृष्णा चोटिया	175-177
31.	**Modern Bikaner's Architect : Maharaja Ganga Singh** आधुनिक बीकानेर के निर्माता के रूप में महाराजा गंगा सिंह	**Bharat Bhoosan Chouhan**	**178-187**
32.	सृजनात्मकता का आकलन और उसके सिद्धांत	प्रो. बी. एल. जैन, डॉ. अमिता जैन	188-192
33.	नव भारत के निर्माण में महिलाओं की भूमिका	डॉ. जयंतीलाल. बी. बारीस	193-195
34.	तुलसी की मानवतावादी एवं सामाजिक दृष्टिकोण	डॉ. आर. के. वर्मा	196-200
35.	प्रकृतवाद और हिन्दी साहित्य	महेंद्र सिंह	201-203
36.	**Observing the Characteristics of "Romans durs" in the context of *Les Fiançailles de M. Hire***	**Ravi Shankar Kumar**	**204-209**
37.	क्वीर सिद्धांत की देसी अवधारणा और चुनौतियाँ	जयकृष्णन एम्	210-215

38.	उपदेशात्मक लघुकथा समाज के लिए उपयोगी	डॉ. शिंदे मालती धोंडोपन्त	216-218
39.	समकालीन हिन्दी कविता में दलित और स्त्री	प्रज्ञा शाकल्य	219-223
40.	अनिता वर्मा की कविताओं में अभिव्यक्त 'स्त्री के वस्तुकरण' की समस्याएं	श्रीराज के एस	224-227
41.	छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य शैली के शलाका पुरुष-हबीब तनवीर	डॉ. चौधरी निलोफर महेबुब	228-231
42.	सामाजिक चेतना और यथार्थ के कवि : स्वप्निल श्रीवास्तव	Swapnil Shrivastava	232-235
43.	अरावली पहाड़ियों में महाराणा प्रताप की नवीन सैन्य रणनीतियों का विश्लेषण	शशांक शर्मा, डॉ. अल्पना शर्मा	236-242
44.	बालपन की यादों का खज़ाना, कृष्णा सोवती का संस्करण 'बचपन'	डॉ. हरप्रीत कौर	243-245
45.	हिंदी साहित्य का इतिहास	डॉ. नामदेव ज्ञानदेव शितोळे	246-250
46.	भारतीय कला का अन्य संस्कृतियों पर प्रभाव	ओटाराम सैन	251-254

सम्पादक की कलम से......

शोध संगम पत्रिका के जनवरी-फरवरी 2025 अंक में आपका स्वागत है।

प्रिय पाठकों,

हमारे इस विशेषांक में, हमने समकालीन शोध, सामाजिक मुद्दों, और सांस्कृतिक विमर्श पर केंद्रित लेख प्रस्तुत किए हैं। इस अंक में शामिल प्रमुख विषयों पर एक संक्षिप्त दृष्टि :—

1. **समकालीन शोध की दिशा :-**

वर्तमान में, शोध की दिशा तेजी से बदल रही है। नई तकनीकों और विधियों के साथ, शोधकर्ता अपने क्षेत्रों में नवीनतम ज्ञान की खोज में जुटे हैं। इस खंड में, हम विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण शोध कार्यों की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

2. **सामाजिक मुद्दों पर विमर्श :-**

समाज में व्याप्त असमानताएँ, पर्यावरणीय संकट, और मानवाधिकार जैसे मुद्दे आज भी प्रासंगिक हैं। इस खंड में, हमने इन विषयों पर विशेषज्ञों के विचार और समाधान प्रस्तुत किए हैं।

3. **सांस्कृतिक विमर्श :-**

हमारी सांस्कृतिक धरोहर और उसकी वर्तमान स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। इस खंड में, हमने विभिन्न सांस्कृतिक पहलुओं, उनकी चुनौतियों, और संरक्षण के उपायों पर लेख प्रस्तुत किए हैं।

4. **विज्ञान और प्रौद्योगिकी :-**

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रही प्रगति समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रही है। इस खंड में, हमने नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधान, तकनीकी नवाचार, और उनके सामाजिक प्रभावों पर चर्चा की है।

नई कार्य योजनाएँ :-

हमारी आगामी कार्य योजनाओं में निम्नलिखित प्रमुख पहलें शामिल हैं :—

– **विशेषांक प्रकाशन** – हम विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर विशेषांक प्रकाशित करने की योजना बना रहे हैं, ताकि इन क्षेत्रों में गहन विमर्श को बढ़ावा मिल सके।

– **ऑनलाइन मंच का विस्तार** – हम अपने डिजिटल प्लेटफॉर्म को और अधिक इंटरैक्टिव और उपयोगकर्ता—मित्रवत बनाने की दिशा में काम कर रहे हैं, जिससे पाठकों और लेखकों के बीच संवाद को सुदृढ़ किया जा सके।

– **शोध कार्यशालाएँ** – हम शोधकर्ताओं और छात्रों के लिए कार्यशालाओं और सेमिनारों का आयोजन करेंगे, ताकि नवीनतम शोध विधियों और तकनीकों पर चर्चा की जा सके।

हम आशा करते हैं कि यह अंक आपके ज्ञानवर्धन में सहायक होगा और समकालीन मुद्दों पर आपकी समझ को विस्तृत करेगा। आपके सुझाव और प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए मूल्यवान हैं। कृपया हमें अपनी राय से अवगत कराएं।

–सम्पादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 8–11

भारतीय समाज और नारी

डॉ. जनक रानी
प्राचार्य, मनोहर मैमोरियल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, फतेहाबाद।

भारत का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। भारतीय समाज कई जातियों, धर्मों, भाषाओं और सामाजिक वर्गों से मिलकर बना है जिसमें कई तरह की विविधताएं पाई जाती है। भारत को बहुभाषी देश माना जाता है। हिंदी भारत की मुख्य संचार भाषा है। भारतीय समाज में कई तरह के धर्म, रिवाज व मान्यताएं हैं। समाज में परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया जाता है। भारतीय समाज एक बहुलवादी समाज है जिसमें एक जटिल सामाजिक व्यवस्था है जिसमें जातिगत विभाजनों की भीड़ की विशेषता है, फिर भी विविधता में एकता निहित है। इसका अर्थ यह है कि भारत एक विविधापूर्ण राष्ट्र है।

पुरातत्त्वेताओं की धारणा रही है कि आरंभ से ही विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में मात्र देवी को उच्च स्थान दिया गया है। हिंदू धर्म में देवी को विशेष महत्व प्राप्त है। वह आदिकाल से शक्ति के रूप में पूजनीय रही है। मातृ–पूजन की परंपरा भारतीय संस्कृति की मुख्य धरोहर है। भारतीय सामाजिक परंपरा में नारी के प्रति सम्मान व रक्षा की भावना उल्लेखनीय है। नारी प्रकृति की सबसे सुंदर रचना है। वह न केवल परिवार की रीढ़ की हड्डी है, बल्कि संस्कृति की संरक्षिका भी है। भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान आदरपूर्ण रहा है।

नारी अपने आप में संपूर्ण है। आजादी से पूर्व नई मुद्दों पर शोध की कोई जरूरत महसूस नहीं की गई बल्कि तब विद्वानों का प्राथमिक उद्देश्य महिलाओं की स्थिति को सरल व महिमा मंडित वर्णन करना था। विद्वानों की रुचि के अन्य क्षेत्र थे – बाल विवाह, शैक्षिक अपंगता। आजादी के बाद के प्रथम दो दशकों में मध्य वर्ग शिक्षित और शहरी महिलाओं के अध्ययन पर केंद्रित रहा– जो नौकरियां ले रही थी और दोहरी भूमिका के द्वंद झेल रही थी। 1960 तथा 1973 में सरकार द्वारा नियुक्त कुछ आयोगों ने वेतन विसंगतियों, महिलाओं की बेरोजगारी और स्वास्थ्यगत दिक्कतों को उजागर किया किंतु ना तो समाज वैज्ञानिक और ना ही नीति निर्माता नारी की बढ़ती सामाजिक मूल्यहीनता के प्रति सचेत हुए। महिला का कार्य परिवार, समाज एवं राज्य के लिए बहुमूल्य होता है परंतु यह कार्य हमेशा अदृश्य बने रहते हैं। भारत में कई समाज सुधारक पश्चिम के उदारवादी विचारों से प्रेरित थे। उसी समय कुछ ऐसे सुधारक थे जो समाज सुधार के लिए प्राचीन भारत की ''गौरवपूर्ण परंपराओं'' को चुनने के पक्षधर थे। स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद जैसे विद्वानों ने नई स्थिति /दशा को सुधारने का प्रयास किया। समाज सुधारकों के प्रयासों व शासको के सहयोग से कुछ प्रगतिशील कानून सती निषेध अधिनियम 1829, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 आदि पारित हुए। भारतीय नारी का अतीत निश्चित रूप में गौरवपूर्ण था। स्थिति में धीरे–धीरे परिवर्तन हुआ। परंतु स्थिति शोचनीय भी रही। मध्यकाल में

मुसलमान के आक्रमण से हिंदू समाज का मूल ढांचा चरमरा गया और वे मुसलमान शासकों का अनुकरण करने लगे। मैथिलीशरण गुप्त ने इसका अत्यंत सजीव चित्रण किया है :–

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।"

राजा राममोहन राय, महर्षि दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी व अन्य समाज सुधारकों ने नारी हित में कुप्रथाओं का विरोध किया। महिलाओं का शोषण देखकर सुमित्रानन्दन पंत के कवि हृदय ने अपना आक्रोश इन पंक्तियों में प्रकट किया :–

"मुक्त करो नारी को मानव।
चिर वन्दनी नारी को।।"

महिला जो समाज की धरोहर है। समाज की उन्नति की सूचक है। कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है, आवश्यकता है इस बात की कि महिलाओं को सहयोग दिया जाए, आगे बढ़ाया जाए ताकि नारी सम्मानपूर्वक जीवन जीए। उसके बारे में जयशंकर प्रसाद ने लिखा है :–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत पग-पग तल में।
पीयूष श्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।।"

महिलाओं की वर्तमान स्थिति :-

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नारी की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो चुकी है। वर्ष 1990 में स्त्रियों के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया है। राष्ट्रीय महिला शक्ति सम्पन्नता नीति 2001 इस नीति का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति अथवा विकास है। नीति के लक्ष्य–राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सिविल सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का सैद्धान्तिक तथा वस्तुतः उपयोग। इसके अतिरिक्त सभी स्तरों पर स्वास्थ्य देखभाल, स्तरीय शिक्षा, जीविका तथा व्यवसायिक मार्गदर्शन, रोजगार, समान पारिश्रमिक, व्यवसायिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक पदों इत्यादि में महिलाओं की समान पहुंच इत्यादि। संविधान के अनुच्छेद 15(3) में सरकार की तरफ से महिलाओं व बच्चों को कुछ विशेष सुविधा प्रदान की गई है। महिलाओं व बच्चों की स्वाभाविक प्रकृति ही ऐसी होती है जिसके कारण उन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है। 84वें संशोधन द्वारा लोकसभा में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था तथा राज्य की विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है। ग्रामीण महिलाओं के उत्थान व विकास के लिए कई योजनाएं बनाई गई । ग्रामीण महिला व बाल विकास कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक व आर्थिक संपन्नता प्रदान करके शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि उपलब्ध करवाना है जिससे महिलाओं व बच्चों का कल्याण हो सके। अधिकार संपन्नता के अलावा इस कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं में मितव्ययता की प्रवृति को प्रोत्साहन करना है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सके। महिलाओं को आर्थिक स्वावलंबी व आत्मनिर्भर बनाने के लिए अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में लाने के लिए स्वरोजगार के अतिरिक्त अवसर उपलब्ध करवाए जाते हैं। राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले गरीब परिवारों की गर्भवती महिलाओं को प्रथम दो बच्चों के लिए 500 मातृत्व लाभ के लिए दिये जाएंगे।

महिला सशक्तिकरण नीति के अंतर्गत कुछ विशिष्ट तत्वों पर बल देकर उनके विकास की व्यवस्था की गई है ताकि संबंधित क्षेत्र में इन तत्वों को अपनाकर महिलाओं के विकासार्थ उपयोग किया जा सके। ऐसे तत्वों का उद्देश्य एक आदर्श मॉडल की स्थापना करना है ताकि महिलाओं की प्रगति व विकास हेतु एक उचित वातावरण विकसित किया जा सके और विकास के अवसरों की उपलब्धता के द्वारा महिला–पुरूषों के बीच समान भागीदारी स्थापति की जा सके। इसी प्रकार सामाजिक सशक्तीकरण का उद्देश्य समाज में महिलाओं की पारिवारिक व सामाजिक स्थिति को सुधारना है। ताकि वह अपने व्यक्तित्व को पहचानकर जागरूक हो सके। सामाजिक सशक्तिकरण महिलाओं में जागरूकता का विकास करता है। जागरूकता का सबसे सर्वोतम माध्यम शिक्षा है। उन्हें शिक्षा प्रदान किए जाने के लिए व्यापक प्रबंध सरकार द्वारा किए जाने चाहिए। आधुनिक काल में राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना जागृत होने के करण वर्तमान दशा में नारियों की स्थिति में बहुत सुधार हुआ है।

सरकार द्वारा किए गए प्रयासों से आज की नारी पूर्ण रूप से पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप नारी आदर्शों और मान्यताओं को त्याग दिया है। एक पहलू यह भी बन गया है कि महिला आर्थिक रूप से संपन्न होने के कारण, विलसिता की ओर जा रही है। आज वह हर पेशे से जुड़ चुकी है। कोई सफल डॉक्टर है, कोई वकील, पुलिसकर्मी, शिक्षक व राजनेता के रूप में कुशल भूमिका निभा रही है। मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर युग में एक स्थान पर कहा था मानव समाज में 'नारी' शब्द को सामान्य न लिया जाए, उनका स्थान नर से कहीं बढ़कर है। कोमल दृढ़ता ही नहीं अपितु रूप, आकार, शरीर, सौष्ठव जीवनयापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की सर्वोत्तम कल्पना है। नर धर्म से संबंधित होने के करण उसे नारी कहा जता है। ''ऋग्वेद में नारी को मेना कहा है, कारण पुरुष उसे सम्मान देता है''। ''उसमें लज्जा भाव होने के करण उसे स्त्री कहा गया''। नारी के सभी रूपों व गुणों के विषय में प्रसाद जी ने लिखा है :–

वह अमर है, अटल है।'

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत-नग पगतल मे,

पीयुष-स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में''।

इन सब गुणों को देखते हुए क्या हम कह सकते हैं की समाज में नारी सुरक्षित है? हिंसा की शिकार नहीं है? पारिवारिक प्रताड़ना नहीं सहन कर रही? बहुत प्रश्न उभरते हैं भारतीय समाज में। आज भी वह सुरक्षित है कार्यस्थल पर या घर पर? अपने शहर की सड़कों से गुजरते हुए दरिंदगी का शिकार हो रही है। कोलकत्ता के हस्पताल में जूनियर डॉक्टर के साथ हुई हुई दरिंदगी मानव समाज पर कलंक है। महिला आयोग के सदस्य द्वारा यह कहा गया कि महिलाओं के साथ होने वाले दुष्कर्म के लिए पहनावा जिम्मेवार है। सोचने का विषय है की 3 से 7 वर्ष की बालिकाओं के शोषण में किस प्रकार का पहनावा जिम्मेवार है? जो वह अपराधों का शिकार हुई। आधुनिक भारत के महिलाऐं अन्याय नहीं सहती। चाहे वह घर हो या कार्यस्थल। वह दोहरी भूमिका निभा रही है। कामकाजी होने के साथ घर का दायित्व भी सहजता से संभालती है। समाज का विकास नारी के सम्मान के साथ जुड़ा हुआ है। महिला सशक्तिकरण की दिशा में महिला–पुरुष संघर्ष की समाप्ति एक मील का पत्थर साबित हो सकती है। इस संघर्ष की समाप्ति के लिए दोनों वर्गों की सकारात्मक भागीदारी, संघर्ष सुलझाने तथा संघर्ष की समाप्ति पर शांति की स्थापना जैसे विषयों पर लिंग समानता के लिए समन्वित रूप से सक्रिय होकर काम करना अनिवार्य होगा। महिलाओं को उनकी क्षमता विकसित के अवसर देने के लिए पुरुषों को आगे आना

होगा। ताकि स्त्री व पुरुष के बीच लैंगिक समानता को बढ़ाकर स्त्रियों को उनके विकास से संबंधित अधिकार प्रदान किए जा सके। नारी व्यक्तित्व पुरुष से सुरक्षा की अपेक्षा रखता है और वही उसे आगे बढ़ने के संसाधन उपलब्ध करवाता है। नारी सदा से ही पुरुष विमर्श का केंद्र रही है जिसमें पुरुष कभी उसका सहायक रहा है तो कभी विरोधी। यद्यपि शिक्षा से उत्पन्न जागरूकता के कारण विकसित मानसिकता वाले पुरुष महिलाओं के संबंध में सकारात्मक विचार रखते हैं। किंतु परंपराओं की लकीर पकड़े बैठे पुरुष वर्ग पर कुठिंत मानसिकता हावी है। इसलिए वह सशक्तिकरण पर बल नहीं देना चाहते किंतु विकास को बांधा नहीं जा सकता। आधुनिक युग में महिला सशक्तिकरण तथा नारी मुक्ति आंदोलन एक नदी की तरह बन चुका है। जिसकी धरा को पहचानना उचित है। महानगरों में महिलाऐं नौकरी करती हैं क्योंकि किसी एक वेतन से घर नहीं चलता। स्त्री व पुरुष परस्पर पूरक की भूमिका निभाते हैं। मानसिकता में बदलाव आना अधिक जरूरी है। कुछ अपवादों को अनदेखा किया जाए तो विकास के समर्थक पुरुष ने सदा ही नारी जाति को अपना सहयोग दिया है। लैंगिक समानता वाले समाज में स्त्री पुरुष दोनों की उन्नति होगी। ऐसा वातावरण दोनों के परस्पर सहयोग से निर्मित किया जा सकता है ताकि बदले हुए सामाजिक परिवेश में महिलाओं को आगे बढ़ने का अवसर मिले। नारी अपने गर्भ में भविष्य को संजोकर रखती है। यदि नारी शिक्षित, स्वस्थ व जागरूक होगी, तभी भविष्य सशक्त होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सफलता के पीछे पुरुष का हाथ है तथा पुरुष की सफलता के पीछे स्त्री प्रेरणा। इसके अतिरिक्त महिलाओं को प्रेरित करने तथा आगे बढा़ने वाली संस्थागत प्रणाली को मजबूत बनाया जाएगा, जो केन्द्रीय व राज्य स्तरों पर विद्यमान रहती है। नीतियों के परिचालन के लिए नियमित आधार पर राष्ट्रीय व राज्य परिषद का गठन किया जाए। राष्ट्रीय परिषद के अध्यक्ष प्रधानमंत्री व राज्य परिषदों के अध्यक्ष राज्यों के मुख्यमंत्री होंगे। यह परिषदें आकार में काफी बड़ी होंगी जिसमें संबंधित विभागों राष्ट्रीय व राज्य महिला आयोग, समाज कल्याण बोर्ड, महिला संगठन, शिक्षाविद विशेषज्ञ तथा सामाजिक कार्यकर्ता आदि के प्रतिनिधि शामिल होंगे। सूचनाओं, विचारधीन, शोधकर्ता कार्यक्रमों इत्यादि की सूचनाओं संग्रहण व राज्य संसाधन केन्द्रों की स्थापना की जायेगी। यह केंद्र सूचना नेटवर्किंग द्वारा महिला अध्ययन केंद्रों तथा अन्य शोध व शैक्षिक संस्थानों के संपर्क में रहेंगे। इस प्रकार संगठित व मजबूत सरकर द्वारा महिलाओं को मदद मिलेगी व स्वच्छ सरकार का निर्माण होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मनीश कुमार, महिला सशक्तिकरण : दशा और दिशा।
2. आशा कौशिक, नारी सशक्तिकरण।
3. प्रज्ञा शर्मा, महिलाओं के प्रति अपराध।
4. अरविंद जैन, औरत होने की सजा।
5. https://www.drishtiias.com

मोबाईल : 9254100244

ईमेल – rani.janak@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 12–19

कला, शिल्प, संस्कृति एवं लोक पंरपराओं का विश्लेषण : काशी, सारनाथ, अयोध्या, एवं कुशीनगर के सन्दर्भ में

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
परियोजना समन्वयक, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

परिचय :–

भारत के ऐतिहासिक और धार्मिक स्थल हमेशा से कला, शिल्प, संस्कृति, और लोक परंपराओं का महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं। काशी, सारनाथ, अयोध्या और कुशीनगर जैसी महत्वपूर्ण धार्मिक नगरों का इन पहलुओं से गहरा संबंध है। इन स्थलों का सांस्कृतिक और शिल्पकला में योगदान बहुमूल्य है, और उनके माध्यम से हम भारतीय समाज की सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन करते हैं।

काशी (वाराणसी) :–

काशी, जिसे वाराणसी भी कहा जाता है, हिन्दू धर्म का एक प्रमुख तीर्थ स्थल है। यह गंगा नदी के किनारे स्थित है और भारतीय सभ्यता के प्राचीनतम नगरों में से एक मानी जाती है। काशी की कला और संस्कृति का प्रमुख आधार धार्मिक अनुष्ठान और भक्ति है।

कला एवं शिल्प :–

काशी की प्रमुख शिल्पकला में काशी कालीन चूड़ियाँ, ब्रोकेड साड़ी और बुनाई शिल्प, और प्रसिद्ध काशी मठ के मंदिरों के स्थापत्य शिल्प शामिल हैं। काशी के मंदिरों में अद्वितीय वास्तुकला और शिल्प का समावेश देखा जाता है। काशी विश्वनाथ मंदिर, जो शिव का प्रमुख मंदिर है, यहां के स्थापत्य कला का अद्भुत उदाहरण है।

संस्कृति एवं लोक परंपराएँ :–

काशी की लोक परंपराएँ नृत्य, संगीत और धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में प्रकट होती हैं। बनारसी ठुमरी, भजन, और कथक नृत्य काशी के सांस्कृतिक जीवन का हिस्सा हैं। काशी की लोककला में विशेष रूप से चित्रकला और मूर्तिकला का महत्व है।

सारनाथ :–

सारनाथ वह स्थल है जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था, जिसे "धम्मचक्र प्रवर्तन" कहा जाता है। यह स्थल बौद्ध धर्म का एक प्रमुख केंद्र है और यहाँ की कला और संस्कृति बौद्ध परंपराओं से प्रभावित है।

कला एवं शिल्प :–

सारनाथ में स्थित महान बौद्ध स्तूप और मंदिर इस स्थल की ऐतिहासिक और शिल्पकला की महानता

का प्रतीक हैं। सारनाथ के मूर्ति शिल्प में गुप्तकाल की कला शैली स्पष्ट रूप से देखी जाती है। यहाँ की प्रसिद्ध अशोक स्तंभ की मूर्ति और ताम्रपत्र बौद्ध कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

संस्कृति एवं लोक परंपराएँ :-

सारनाथ में बौद्ध संस्कृति की गहरी छाप है। बौद्ध संघ, ध्यान और साधना की परंपरा यहाँ के लोक जीवन में रच–बस गई है। यहाँ के धार्मिक अनुष्ठान, साधना की विधियाँ और तिब्बती बौद्ध धर्म के प्रभाव से जुड़ी लोक परंपराएँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

अयोध्या :-

अयोध्या, राम के जन्म स्थान के रूप में प्रसिद्ध है, और यहाँ की संस्कृति और शिल्पकला मुख्य रूप से रामकथा और हिन्दू धर्म से संबंधित है।

कला एवं शिल्प :-

अयोध्या के मंदिरों में स्थापत्य कला का अद्‌भुत उदाहरण मिलता है, विशेष रूप से राम जन्मभूमि मंदिर के आसपास के निर्माण कार्य में। अयोध्या में प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दू वास्तुकला का मिश्रण देखने को मिलता है। मंदिरों के शिल्प में भव्यता और धार्मिकता का समागम है।

संस्कृति एवं लोक परंपराएँ :-

अयोध्या में रामलीला का आयोजन यहाँ की प्रमुख लोक परंपरा है, जो रामकथा को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ के धार्मिक उत्सवों में दीपावली, राम नवमी और माघ मेला प्रमुख हैं। अयोध्या का संगीत, नृत्य और अन्य कला रूप भी हिन्दू संस्कृति के अभिन्न अंग हैं।

कुशीनगर :-

कुशीनगर बौद्ध धर्म के एक प्रमुख स्थल के रूप में जाना जाता है, जहां भगवान् बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। यह स्थल बौद्ध संस्कृति और कला के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

कला एवं शिल्प :-

कुशीनगर के बौद्ध स्तूप, बौद्ध मठ और अन्य धार्मिक स्थल शिल्पकला के अद्‌भुत उदाहरण हैं। यहां की मूर्तियों में विशेष रूप से भगवान बुद्ध की विश्राम की मुद्रा में चित्रित मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कुशीनगर में बौद्ध स्थापत्य शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

संस्कृति एवं लोक परंपराएँ :-

कुशीनगर में बौद्ध धर्म के अनुयायी बड़ी संख्या में आते हैं, और यहां की संस्कृति बौद्ध सिद्धांतों पर आधारित है। कुशीनगर में बौद्ध अनुष्ठान, ध्यान केंद्र, और धर्म शिक्षा की परंपरा विशेष रूप से प्रचलित हैं। यहाँ के लोक परंपराओं में बौद्ध ध्यान और साधना की महत्ता है।

प्राचीन काशी, सारनाथ, अयोध्या, और कुशीनगर में लोक जीवन का प्रभाव :-

इन ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों में कला, शिल्प, संस्कृति और लोक परंपराओं का प्रभाव न केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित है, बल्कि यह समाज के दैनिक जीवन में भी गहरे रूप से समाहित हैं। इन स्थानों में जो लोक जीवन के पहलू पाए जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

काशी (वाराणसी) में लोक जीवन :–

मंगल गीत और भजन :

काशी के लोक जीवन में धार्मिक गीत, भजन और मंगल गीतों की परंपरा बहुत पुरानी है। काशी के मंदिरों में विशेष रूप से गंगा आरती और भजन गायन का महत्व है, जो यहां के सांस्कृतिक परिवेश को जीवित रखता है।

वृत्तचित्र नृत्य और लोक कला :

काशी में कथक नृत्य का विशेष स्थान है, जो भारतीय लोक कला और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। यह नृत्य कला यहाँ के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में गहरे रूप से समाहित है।

गंगा–जीवन :

काशी के लोग गंगा नदी के साथ अपनी जीवन शैली को जोड़कर उसे पूजा, संस्कार और दैनिक गतिविधियों में एकीकृत करते हैं। यह गंगा के महत्व को दर्शाता है और नदी से जुड़ी लोक परंपराओं को संरक्षित करता है।

सारनाथ में लोक जीवन :–

ध्यान और साधना :

सारनाथ में बौद्ध साधना की परंपराएँ यहाँ के लोक जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। यहाँ के लोग ध्यान और ध्यान केंद्रों में बौद्ध अनुशासन के अनुसार जीवन जीने का प्रयास करते हैं।

धार्मिक स्थल पर श्रद्धा :

सारनाथ में एक महत्वपूर्ण लोक परंपरा है, जिसमें लोग दूर–दूर से आकर बौद्ध धर्म के स्तूपों और मठों में पूजा–अर्चना करते हैं। इन धार्मिक स्थलों के आसपास की शांतिपूर्ण और ध्यान मग्न वातावरण में लोगों की जीवन शैली का गहरा प्रभाव है।

अयोध्या में लोक जीवन :

रामलीला और लोक नृत्य :

अयोध्या में रामलीला न केवल धार्मिक बल्कि एक सांस्कृतिक उत्सव भी है। यह नृत्य, नाट्य, संगीत और अभिनय के माध्यम से रामकथा को जीवित रखता है। रामलीला के आयोजनों के दौरान, लोग इसे धार्मिक श्रद्धा के साथ एक सांस्कृतिक रूप में मनाते हैं।

धार्मिक मेलों और त्योहारों का महत्व :

अयोध्या में राम नवमी, दीपावली और माघ मेला जैसे पर्व विशेष रूप से मनाए जाते हैं। इन मेलों में पारंपरिक लोक नृत्य, गीत और पूजा की प्रक्रियाएँ देखी जाती हैं।

कुशीनगर में लोक जीवन :

बौद्ध धर्म के अनुयायी :

कुशीनगर में बौद्ध धर्म के अनुयायी हर दिन साधना, ध्यान और बौद्ध भिक्षुओं के अनुशासन का पालन करते हैं। यहाँ के लोग साधना के साथ अपने जीवन को शुद्ध और शांति पूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं।

धार्मिक उत्सव और परंपराएँ :

कुशीनगर में विशेष बौद्ध उत्सव मनाए जाते हैं, जैसे बुद्ध जयंती, जो बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए

एक प्रमुख उत्सव होता है। इस प्रकार के उत्सवों में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और परंपराओं को बढ़ावा दिया जाता है।

इन स्थलों का संरक्षण और आधुनिक परिप्रेक्ष्य :

संरक्षण की आवश्यकता :

इन प्राचीन स्थलों की कला, शिल्प और संस्कृति का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इन सांस्कृतिक धरोहरों से जुड़ी रह सकें। काशी के मंदिरों, सारनाथ के स्तूपों, अयोध्या के राम मंदिर और कुशीनगर के बौद्ध स्थल के संरक्षण में सरकारों और स्थानीय समुदायों का योगदान महत्वपूर्ण है।

आधुनिक पर्यटन और सांस्कृतिक आदान-प्रदान :

इन स्थलों की लोकप्रियता के कारण यहाँ पर्यटन में भी वृद्धि हुई है। यह सांस्कृतिक आदान–प्रदान का एक माध्यम बनता है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और परंपराओं का मिलन होता है।

प्राकृतिक और भौगोलिक तत्वों का प्रभाव :

इन ऐतिहासिक स्थलों के सांस्कृतिक और शिल्पकला पर प्राकृतिक और भौगोलिक विशेषताओं का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। इन क्षेत्रों की प्रकृति और भौगोलिक स्थिति ने उनकी संस्कृति, कला और जीवनशैली को आकार दिया है।

काशी (वाराणसी) :

गंगा नदी का प्रभाव : काशी की सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराएँ गंगा नदी से गहरे रूप से जुड़ी हुई हैं। गंगा का पानी यहाँ के लोगों के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। यह नदी न केवल धार्मिक गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि इसने काशी की कला और शिल्प को भी प्रभावित किया है। गंगा आरती, नाव पर पूजा, गंगा घाटों के किनारे स्थित मंदिरों और प्राचीन धार्मिक स्थल यहाँ की संस्कृति के प्रमुख प्रतीक हैं।

सारनाथ :

प्राकृतिक सौंदर्य और शांति : सारनाथ एक शांतिपूर्ण स्थल है, जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य और आध्यात्मिक शांति का अद्वितीय समागम है। यह स्थल उत्तर प्रदेश के बौद्ध क्षेत्र में स्थित है, और यहाँ का वातावरण ध्यान और साधना के लिए उपयुक्त है। इस क्षेत्र का शांति पूर्ण वातावरण बौद्ध धर्म की सादगी और मानसिक शांति के सिद्धांतों को बढ़ावा देता है।

अयोध्या :

सरयू नदी का प्रभाव : अयोध्या सरयू नदी के किनारे स्थित है, जो यहाँ के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में गहरे रूप से शामिल है। सरयू नदी के तट पर होने वाली पूजा और धार्मिक अनुष्ठान, जैसे राम का स्नान और दीपोत्सव, यहाँ के लोक जीवन का हिस्सा हैं। नदी का प्राकृतिक सौंदर्य और धार्मिक महत्व, अयोध्या की सांस्कृतिक पहचान का एक प्रमुख घटक है।

कुशीनगर :

प्राकृतिक शांति और ध्यान के केंद्र : कुशीनगर की भौगोलिक स्थिति और इसके शांति पूर्ण वातावरण ने इसे बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए एक आदर्श स्थल बना दिया है। यहाँ के वृक्ष, बाग़–बगीचे और शांति पूर्ण पर्यावरण ने ध्यान और साधना की परंपराओं को बढ़ावा दिया है।

आधुनिक परिवेश में इन स्थलों का सामाजिक और सांस्कृतिक योगदान :

आधुनिक युग में, इन ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों का सांस्कृतिक और शैक्षिक महत्व और भी बढ़ गया है। इन्हें न केवल तीर्थ यात्रियों और पर्यटकों के लिए आकर्षण के रूप में देखा जाता है, बल्कि वे भारतीय समाज और संस्कृति के विकास के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन चुके हैं।

काशी (वाराणसी) :

शैक्षिक और सांस्कृतिक केन्द्र : काशी को 'ज्ञान की नगरी' भी कहा जाता है। यहाँ के काशी विद्यापीठ और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जैसे शैक्षिक संस्थान भारतीय संस्कृति, साहित्य, और विद्या के महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं। यह स्थल कला, संगीत और नृत्य का एक जीवंत केन्द्र बना हुआ है, जहाँ विश्वभर से कलाकार और छात्र आते हैं।

सारनाथ :

धार्मिक और शैक्षिक अध्ययन का केंद्र : सारनाथ, बौद्ध धर्म के अध्ययन और अनुसंधान के लिए एक प्रमुख केंद्र बन चुका है। यहाँ बौद्ध धर्म के शोध, ध्यान केंद्र, और मंदिरों का प्रबंधन बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। साथ ही, यहाँ के विभिन्न बौद्ध मठों में विश्वभर से छात्र और शोधकर्ता आते हैं।

अयोध्या :

धार्मिक पुनर्निर्माण और सांस्कृतिक उत्सव : अयोध्या में राम मंदिर निर्माण के बाद से, यह स्थल एक सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से केंद्रित हो गया है। यहाँ आयोजित होने वाली राम नवमी और दीपावली जैसी धार्मिक अनुष्ठान और उत्सवों में आधुनिक समय में बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं। इसके अलावा, यहाँ धार्मिक पर्यटन और धार्मिक शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन भी बढ़ा है।

कुशीनगर :

आध्यात्मिक और अंतर्राष्ट्रीय महत्व : कुशीनगर में बुद्ध के महापरिनिर्वाण स्थल के रूप में अंतर्राष्ट्रीय तीर्थ यात्री आते हैं। यहाँ के धार्मिक स्थल बौद्ध अनुयायियों के लिए एक प्रमुख केंद्र बने हैं, और साथ ही यह स्थल धार्मिक और सांस्कृतिक संवाद को प्रोत्साहित करता है। इस स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय ध्यान केंद्र और साधना संस्थान बौद्ध धर्म के व्यापक प्रचार में योगदान दे रहे हैं।

प्राकृतिक और सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण और समकालीन पहलू :-

इन ऐतिहासिक और धार्मिक स्थलों का सांस्कृतिक, शिल्पकला, और लोक परंपराओं के संदर्भ में संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन स्थलों के महत्व को देखते हुए, संरक्षण के विभिन्न पहलू समकालीन समाज में और भी अधिक प्रासंगिक हो गए हैं, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इनका महत्व समझ सकें और इस सांस्कृतिक धरोहर का सही तरीके से सम्मान कर सकें।

काशी (वाराणसी) :

संरक्षण और पुनर्निर्माण कार्य : काशी के प्राचीन मंदिरों और घाटों का संरक्षण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। काशी में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ जैसे संस्थानों का महत्वपूर्ण योगदान है, जो भारतीय सांस्कृतिक विरासत और लोक परंपराओं के संरक्षण के लिए सक्रिय हैं। विशेष रूप से गंगा के घाटों का सौंदर्य और धार्मिक महत्व बनाए रखने के लिए गंगा सफाई मिशन जैसे कार्यक्रमों का संचालन हो रहा है।

धार्मिक और सांस्कृतिक पुनरुद्धार : काशी में समय–समय पर धार्मिक और सांस्कृतिक उत्सवों का आयोजन किया जाता है, जिनमें काशी विश्वनाथ मंदिर की विशेष पूजा, गंगा आरती, और विभिन्न संगीत समारोह शामिल हैं। इस प्रकार के आयोजन न केवल सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करते हैं, बल्कि स्थानीय समाज को भी एकजुट करने का कार्य करते हैं।

सारनाथ :

बौद्ध संस्कृति का संरक्षण : सारनाथ में बौद्ध धर्म से संबंधित महत्वपूर्ण स्थलों जैसे बौद्ध स्तूप, मठ, और बुद्ध की प्रतिमाएँ संरक्षित की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त, बौद्ध धर्म से जुड़ी ऐतिहासिक कृतियों और अवशेषों का संरक्षण भी किया जा रहा है ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इस महान धर्म और उसके योगदान को जान सकें। यहाँ के संग्रहालय और अध्ययन केंद्र बौद्ध धर्म के इतिहास और शिल्प का गहन अध्ययन करने का अवसर प्रदान करते हैं।

आधुनिक पर्यटन और शिक्षा : सारनाथ में शिक्षा और पर्यटन का एक अच्छा संतुलन बना हुआ है। यहाँ आने वाले पर्यटकों के लिए ध्यान केंद्र और साधना केंद्र के साथ–साथ बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

अयोध्या :

राम मंदिर और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण : अयोध्या में राम मंदिर के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया ने इस स्थान के धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व को एक नई दिशा दी है। यह पुनर्निर्माण न केवल धार्मिक श्रद्धा को बढ़ावा देता है, बल्कि यह सांस्कृतिक पुनरुद्धार का भी एक हिस्सा है, जो अयोध्या की प्राचीन भव्यता को पुनः जीवित करता है।

धार्मिक पर्यटन : अयोध्या में पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए, राममंदिर और अन्य प्रमुख स्थल जैसे कनक भवन, हनुमान गढ़ी और राम की पैड़ी पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। धार्मिक उत्सवों और मेले के आयोजन से यहाँ के सांस्कृतिक वातावरण को पुनर्जीवित किया जा रहा है।

कुशीनगर :

बौद्ध स्थलों का संरक्षण और प्रचार : कुशीनगर में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण स्थल के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। यह स्थल बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए अत्यंत पवित्र है और यहाँ बौद्ध धर्म के इतिहास, कला, और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए ध्यान केंद्रों और बौद्ध संस्थाओं का योगदान जारी है। कुशीनगर में बौद्ध धर्म से संबंधित स्मारक और स्थल, जो विशेष रूप से तिब्बती और दक्षिण एशियाई बौद्धों के लिए महत्वपूर्ण हैं, संरक्षित किए जा रहे हैं।

सांस्कृतिक और धार्मिक पर्यटन : कुशीनगर में धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए इंटरनेशनल ध्यान केंद्र और बौद्ध सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं। यहाँ की शांति पूर्ण वातावरण और ऐतिहासिक महत्व, कुशीनगर को एक प्रमुख पर्यटन स्थल बना रहे हैं।

आधुनिक समाज में इन स्थलों का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व :

आधुनिक समय में, इन ऐतिहासिक स्थलों का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व बहुत बढ़ गया है, और यह समाज में अपनी भूमिका निभाने में सक्षम हैं। इन स्थलों का सांस्कृतिक योगदान और धार्मिक पर्यटन का विकास

समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर रहा है।

काशी (वाराणसी) :

धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक : काशी का धार्मिक महत्व न केवल हिन्दू धर्म के अनुयायियों के लिए है, बल्कि यहाँ की सांस्कृतिक परंपराएँ और विविधता भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक एकता का प्रतीक बन चुकी हैं। यहाँ विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और भाषाओं के लोग एक साथ रहते हैं और अपनी धार्मिकता के माध्यम से आपस में जुड़ते हैं।

विश्वविद्यालयों और सांस्कृतिक केंद्रों का योगदान : काशी में मौजूद शिक्षण संस्थान जैसे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ ने भारतीय संस्कृति और शिल्पकला के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सारनाथ :

बौद्ध धर्म का वैश्विक प्रभाव : सारनाथ का वैश्विक प्रभाव बौद्ध धर्म के प्रसार से जुड़ा हुआ है। यह स्थल न केवल भारत, बल्कि विश्वभर के बौद्ध अनुयायियों के लिए एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है। यहाँ आयोजित किए जाने वाले बौद्ध सम्मेलन और ध्यान साधना कार्यक्रम दुनियाभर से लोगों को आकर्षित करते हैं।

अयोध्या :

रामायण और हिन्दू संस्कृति का केंद्र : अयोध्या का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व रामायण से जुड़ा हुआ है। यहाँ राम के जीवन के प्रतीक और उनके जीवन के विभिन्न प्रसंगों को श्रद्धा और सम्मान के साथ मनाया जाता है। अयोध्या ने भारतीय समाज में धार्मिक परंपराओं और सांस्कृतिक उत्सवों की भूमिका को निखारा है।

कुशीनगर :

ध्यान और मानसिक शांति का केंद्र : कुशीनगर, बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए एक प्रमुख स्थल है, जो मानसिक शांति और साधना के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के ध्यान केंद्र और बौद्ध स्थल न केवल भारत, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान और साधना के अभ्यास के लिए लोकप्रिय हैं।

निष्कर्ष :-

काशी, सारनाथ, अयोध्या और कुशीनगर, ये सभी स्थल भारतीय संस्कृति और शिल्पकला के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन स्थलों की कला और शिल्प में धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रभावों का अद्भुत मिश्रण देखने को मिलता है। इन स्थलों की लोक परंपराएँ भी समाज की गहरी धार्मिक और सांस्कृतिक समझ को दर्शाती हैं। इन स्थलों का महत्व न केवल धार्मिक दृष्टि से, बल्कि कला, संस्कृति और लोक परंपराओं के संदर्भ में भी अत्यधिक है।

काशी, सारनाथ, अयोध्या और कुशीनगर जैसे स्थल भारतीय सभ्यता, संस्कृति और शिल्पकला के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन स्थलों का अध्ययन न केवल इतिहास और धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि इनकी लोक परंपराओं, कला और शिल्पकला को समझकर हम भारतीय समाज की विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को और गहन रूप से जानते हैं। इन स्थलों के माध्यम से हम भारतीय समाज की सामूहिक पहचान, सांस्कृतिक एकता, और धार्मिक विविधता की महत्ता को महसूस करते हैं।

काशी, सारनाथ, अयोध्या और कुशीनगर जैसे स्थल न केवल धार्मिक महत्व के केंद्र हैं, बल्कि यहाँ की

कला, शिल्प, संस्कृति और लोक परंपराएँ भारतीय सभ्यता की धरोहर हैं। इन स्थलों में जो सांस्कृतिक, धार्मिक और भौगोलिक तत्व जुड़े हुए हैं, वे भारतीय समाज की गहरी धार्मिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक धारा को प्रकट करते हैं। इन स्थलों का इतिहास, आधुनिक समय में उनके सांस्कृतिक योगदान, और जीवन शैली के हर पहलू पर विचार करते हुए हम भारतीयता की विविधता, समृद्धि और एकता को समझते हैं।

इन चार प्रमुख स्थलों – काशी, सारनाथ, अयोध्या, और कुशीनगर का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व बहुत गहरा है। इन स्थानों की कला, शिल्प, संस्कृति और लोक परंपराएँ भारतीय सभ्यता के विविध पहलुओं को प्रतिबिंबित करती हैं। प्रत्येक स्थल ने अपनी विशेषताएँ और योगदान के माध्यम से भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया है और आधुनिक समय में भी इनका प्रभाव बना हुआ है। इन स्थलों का संरक्षण और समकालीन संदर्भ में उनकी भूमिका समाज के सांस्कृतिक धरोहर और धार्मिक जीवन की एक महत्वपूर्ण धारा को प्रकट करते हैं।

उप समन्वयक :-

डॉ0 ज्योति रानी जायसवाल, डॉ0 गरिमा, डॉ0 श्रुति राय, डॉ0 कौशल किशोंर, डॉ0 चिरंजीव ठाकुर।

अनुदान :-

यह शोध कार्य भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा वित्तपोषित है और यह अध्ययन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली नामक परियोजना के अंतर्गत किया गया है। 'जिसका शीर्षक कला, शिल्प, संस्कृति एवं लोक परंपराओं के संरक्षण व संवर्धन मे पर्यटन/तीर्थाटन की भूमिका (बिहार एवं उत्तरप्रदेश के कुछ चयनित स्थलों का एक तुलनात्मक अध्ययन)

(फाइल नम्बर ICSSR/RPD /RPR /2023-24 /26)

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. Ram Sharan Shrma (2011) Kashi : Culture, History, and Archaeology Varanasi: Banaras Hindu University Press.
2. Dr k.k. Achary (2007) History of Kashi A Modern Approach. New Delhi: S. Chand Publications.
3. Gupta, S. (2014)- Pilgrimage Tourism in India : Impact and Challenges. New Delhi: New Age International Publishers.
4. Kumar, P. (2016). Sustainable Tourism and Cultural Heritage. Varanasi: Banaras Hindu University Press.
5. Yadav, R. (2013). Folk Traditions and Crafts of Bihar and Uttar Pradesh- Patna: Bihar Academy Press.
6. Government of India (2011). The Impact of Tourism on Cultural Heritage and Local Communities. New Delhi : Ministry of Tourism.
7. Rai, M. (2007). Tourism and Pilgrimage : Case Study of Varanasi and Bodh Gaya. Lucknow : Eastern Book House.
8. Bhatt, N. (2019). Conservation of Monuments and Sites : A Modern Approach. New Delhi: S. Chand Publications.
9. Bose, P. (2017). Pilgrimage, Art, and Culture in India : A Comprehensive Study. Delhi : D.K. Publishers.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 20–25

डॉ. नामवर सिंह के व्यक्तित्व में बनारस की भूमिका

लाभ चंद्र धाकड़, शोधार्थी,
प्रो. रमेश चंद मीना, शोध निर्देशक,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बून्दी।

सारांश :–

बनारस हमारे देश का एक अति प्राचीन नगर है जिसकी अपनी अनूठी सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहचान रही है। इस क्षेत्र में समय–समय पर कई महान विभूतियां हुई जिन्होंने इस नगर के सांस्कृतिक परिवेश में रहकर अपना भी विशिष्ट अवदान जोड़ा। कईं दार्शनिकों, कवियों, लेखकों, संतोंऔर संगीतज्ञों का संबंध इस क्षेत्र से रहा है। हिंदी साहित्य से जुड़े हुए प्रमुख नामों में से स्वामी रामानंद, कबीर, रविदास के अलावा जयशंकर प्रसाद, मुंशी प्रेमचंद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे नाम उल्लेखनीय है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस का कुछ अंश यही लिखा था। इसी महान परंपरा से संबंध रखने वाले नगर से आलोचक नामवर सिंह का भी संबंध रहा है। यह इसलिए भी जरूरी हो जाता है क्योंकि प्रत्येक साहित्यकार के व्यक्तित्व निर्माण में उसकी जन्मभूमि, परिवेश एवं प्रारंभिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, इसी भूमि से उसके साहित्यिक लगाव एवं जुड़ाव के बीज खोजे जा सकते हैं। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह भी प्रारंभिक जुड़ाव से अछूते नहीं है। इसलिए उनके साहित्यिक एवं व्यंक्तिगत जीवन में भी बनारस की भूमिका को परखना आवश्यक हो जाता है।

शोध विस्तार :–

नामवर सिंह का जन्म बनारस क्षेत्र के जीयनपुर गांव में हुआ था, जो अब चंदौली जिले में आता है। प्रारंभिक शिक्षा के बाद बनारस में होने वाली साहित्यिक गोष्ठियों में भागीदारी, विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेखों कल्पना व टिप्पणियां, काशी हिन्दूी विश्वविद्यालय में अध्ययन–अध्यापन के साथ ही नामवर सिंह का आलोचकीय व्यक्तित्व निखर कर आता है। नामवर सिंह जीवन की पहली पाठशाला अपनी माँ को ही मानते थे, क्योंकि उनकी माँ उन्हें सामान्य शिक्षा के अलावा लोकगीत एवं लोककथाएं बचपन में सुनाया करती थी, जिन्हें बालक नामवर चमत्कृत होकर सुनते थे। इन लोकगीतों की लय उनकी नस–नस में दौड़ने लगती थी। जब नामवर सिंह अधेड़ उम्र में थे और बनारस में रहे तब भी माँ उनके साथ रहती थी। अपनी माँ के प्रति लगाव को वह कुछ इस प्रकार बयां करते है– ”जब उनकी मृत्यु हुई, मैं 45 बरस का था, माँ बनारस में भी मेरे साथ आकर रहती थीं। मेरे भीतर बसे लोकगीतों में माँ खुशबू की तरह रची–बसी हैं। जीवन का रस, लोकगीतों का लालित्य, लोकगीतों की अद्भुत पंक्तियों में छिपा जीवन, उन धुनों का सौंदर्य माँ से ही जाना। माँ मेरी पहली पाठशाला थी।“[1]

नामवर सिंह अपने गांव से बनारस में जिस स्कूल में पढ़ने गए उसका नाम था 'हीवेटक्षत्रिय स्कूल'। इस विद्यालय में सिर्फ प्रिंसिपल अंग्रेज होता था बाकी सब क्षत्रिय होते थे। इस स्कूल में एक ही तरह के विचारों के लोग होने से नामवर को यहां का वातावरण संकुचित लगता था। आगे चलकर जब एम.ए. फर्स्ट क्लास पास करने के बाद उन्हें व गोरखपुर के महाराणा कॉलेज से नौकरी हेतु बुलावा आया तो उन्होंने पुनः इसी प्रकार के संकुचित परिवेश में जाना स्वीकार नहीं किया। वह बताते हैं कि–"गोरखपुर में महाराणा कॉलेज था। वहां स्थान था, पर क्षत्रियों के साथ पढ़ने में ही मुझे चिढ़–सी हो गई थी। मैं उस कुएं से बाहर निकलना चाहता था। एक ही तरह के लोगों के साथ रहकर आँख तो खुलेगी नहीं, यह बात खटकने लगी। मैंने सोचा, क्षत्रियों के कॉलेज में पढ़ने के बाद पढ़ाने भी चला गया तो गया काम से। वहां से तार आया था, वे मुझे हिंदी के हेड के तौर पर बुला रहे थे, पर मैं गया नहीं।" इससे समझा जा सकता है कि नामवर सिंह शुरू से ही खुले हुए विचारों का स्वा गत करने वालों में एक रहे है, जो कि एक संतुलित और निष्पक्ष आलोचक के लिए जरूरी होता है।

इसके बाद के कालखण्ड में नामवर जी के विभिन्न पत्रिकाओं में कविताओं के बजाय विचारात्मक लेख छपने लगे। इन पत्रिकाओं में काशी विद्यापीठ से छपने वाली 'जनवाणी' पत्रिका थी, इसके अलावा 'आज' पत्र में भी उनके लेख और अन्यव कवियों की कविताओं पर टिप्पणियां छपती थी। बनारस की स्थानीय पत्रिकाओं में 'हंस' था और इसके अलावा कम्यूनिस्ट पार्टी की पत्रिका 'लोकयुद्ध' थी। इन सभी पत्र–पत्रिकाओं में लेख छपना, साहित्यिक वाद–विवाद और सतत अध्ययन से बनारस की पृष्ठभूमि में नामवर जी की आलोचकीय दृष्टि बनने लगी।

उस दौर के बनारस में बहुत–सी साहित्यिक गोष्ठियां होती थी और विभिन्न साहित्यकारों के संग–सत्संग से पूरा परिदृश्य ही जीवंत रहता था। नामवर जी के मित्र रहे रामदरश मिश्र तत्कालीन बनारस के दिनों को याद करते हुए बताते हैं कि– "नोंक–झोंक होती थी, वैचारिक टकराहटें भी होती थीं, किंतु समग्रतः बड़ा ही जीवंत परिदृश्य होता था। अग्रजों (बड़ों) में शंभूनाथ सिंह और त्रिलोचन होते थे, बाद के साहित्यकारों में नामवर जी, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिवप्रसाद सिंह, विष्णु स्वरूप, विश्वनाथ त्रिपाठी, शुकदेव सिंह आदि होते थे। हम साहित्यकारों की बहुत प्यारी दुनिया थी।" इन मित्रों में त्रिलोचन जी ऐसे व्यक्तित्व रहे जिनसे नामवर जी ने सरलता व सादगी सीखी। त्रिलोचन जी लम्बी दूरी तक खुद पैदल चलते थे और अपने साथी नामवर को भी चलाते थें। नामवर ने यह सरलता व सादगी जीवनभर अपने साथ रखी। वें यह स्वीकारते हैं कि मुझे एक लेखक बनने में पहला हाथ जिसका लगा, वह हाथ त्रिलोचन जी का हैं। जीवन में पहली बार किताब जो खरीदी, वह त्रिलोचन जी के कहने पर ही खरीदी थी। यह किताब मैक्सिम गोर्की की 'आवारा की डायरी' नाम से इलाचंद्र जोशी द्वारा अनूदित थी।

नामवर सिंह के व्यक्तित्व निर्माण में बनारस के बहुत से सहयोगियों एवं शिक्षकों का हाथ रहा है, उनमें से एक नाम मार्कंडेय जी का भी है। गद्य के प्रति आकर्षण इन्हीं गुरु की वजह से उनमें पैदा हुआ। हाँ, यह बात अलग है कि नामवर जी के लिए आलोचना की भाषा के आदर्श आचार्य रामचंद्र शुक्ल थे।

सन् 1941 में जब नामवर बनारस में आए, उस समय वहां प्रेमचंद नहीं थे, प्रसाद जी का भी निधन हो चुका था। फिर इसी वर्ष की फरवरी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी नहीं रह गए थे। सभी बड़ी विभूतियां जा चुकी थी मगर नामवर जी को दो महत्वपूर्ण संस्थाओं व अन्य साहित्यकारों का परिवेश मिला। इन दो संस्थाओं में एक

थी 'प्रसाद परिषद', जो जयशंकर प्रसाद के नाम पर बनी थी और दूसरी संस्था थी–'काशी प्रगतिशील लेखक संघ'। इस संघ के अध्यक्ष पंडित नंददुलारे वाजपेयी जी थे। इसी 'प्रगतिशील लेखक संघ' को नामवर सिंह अपनी पहली साहित्यिक पाठशाला कहते रहे हैं। इस लेखक संघ के उपाध्यक्ष पद पर मार्कंडेय सिंह थे जिनसे नामवर जी ने भाषा की सफाई सीखी। शब्दों के वागाडम्बयर से चमचमाता हुआ वाग्जाजल उन्हें कभी पसंद नहीं आता था। यही चीज नामवर जी की भाषा–शैली में भी दिखाई पड़ती है।

जब वह काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ने आए थे तब के अपने दो गुरुओं को नामवर जी बहुत याद करते हैं। एक तो थे– पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जिन्होंने उनको बी.ए. तथा एम.ए. पढ़ाया। विश्वनाथ जी का कविता के प्रति लगाव इतना गहरा था कि उन्हें कविता के एक–एक शब्द के प्रति प्रेम था। इन्हीं के घर पर 'अनामिका' नाम की गोष्ठी होती थी जिसमें अकेली एक–एक कविता पर या दोहे पर दो–दो घंटे तक चर्चा चलती थी। इनसे भी नामवर ने बहुत कुछ जाना और अध्यापन कौशल सीखा और स्वलयं अंत तक उनके शिष्य बने रहे।

दूसरे गुरु थे– आचार्य केशव प्रसाद मिश्र। मिश्र जी भी काव्य के मर्मज्ञ थें। एक–एक वाक्य पर तन्मय होकर रस की वर्षा करते थे, चाहे वे रीतिकाल पढ़ा रहे हो या विषय तुलसी या सूर से संबंधित हो या फिर आधुनिक कविता हो, तन्मयता एवं रससृष्टि में कोई कमी नहीं आती थी। यह बहुत अधिक लिखने वाले यानि लिक्खा लोगों को पसंद नहीं करते थे, शब्दाडंबर की अपेक्षा भावपक्ष एवं गूढ़ार्थ पर अधिक ध्यान देते थे। नामवर सिंह अपने इन गुरु के बारे में बताते हैं कि एक–एक शब्द और वाक्य पर गुरुवर केशव प्रसाद मिश्र की चेतावनी मिलती थी, वाक्य गठा हुआ और लिखित अंश सारग्राही होना चाहिए। केवल लिखने के लिए लिखने वालो के वे सख्त खिलाफ थे। नामवर जी पर हमेशा यह आरोप लगता रहा कि वे लिखते कम हैं, बोलते अधिक हैं। शायद इन्हीं गुरु का प्रभाव उन पर रहा जिसकी वजह से उन्होंने अपने जीवन में कम लिखा और आवश्यमक होने पर ही लिखा। जब तक उन्हें जरूरी हस्तक्षेप नहीं लगा तब तक उन्होंने कोई आलोचनात्मक पुस्तक भी प्रकाशित नहीं करवाई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने अंतिम समय फरवरी सन् 1941 तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष पद पर रहे। जब नामवर सिंह यहां आए तब तक उनका निधन हो चुका था। इसलिए शुक्ल जी के साथ उनका निजी सम्पर्क तो हो न सका, मगर उनके द्वारा लिखित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' उन पुस्तकों में से एक है जिन्हें नामवर सिंह सदैव अपने पास रखते थे क्योंकि उनके अनुसार यह ग्रंथ हिंदी साहित्य की नींव है। उन्हीं के शब्दों में– "आचार्य रामचंद्र शुक्ल की नीवं पर जब तक आप पूरी तरह से खड़े न हो, तब तक आप कुछ कर नहीं सकते। मैं पूजा–पाठ नहीं करता, किसी ग्रंथ का परायण नहीं करता, लेकिन साहित्यिक कृतियों में नित्य परायण, किसी–न–किसी रूप में पूजा–पाठ के रूप में आज भी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का पाठ करता हूं।"[4]

काशी के वातावरण में नामवर सिंह के लिए ताजी हवा का झोंका था– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जिसने नामवरी–वृक्ष का विकास किया था। यदि द्विवेदी जी ना होते तो नामवर सिर्फ बनारसी होकर रह जाते। उनके अंदर जो मार्क्सवाद की जो चिंगारी थी और उनमें जो सामाजिक दृष्टि थी, उसे अधिक मानवतावादी एवं भारतीय परंपरा से जोड़ने का कार्य आचार्य द्विवेदी जी ने किया। इसके अभाव में वे शायद कठमुल्ला मार्क्सवादी

होकर रह जाते। नामवर स्वीकारते हैं कि द्विवेदी जी के बगैर में बड़ा रुखा कम्युनिस्ट होता। गुरु द्विवेदी जी उन्हें कहा करते थें कि मैं तुम्हारे बाँस की नोंके छील दूंगा।

नामवर सिंह एक आलोचक के रूप में तो प्रसिद्ध रहे ही, साथ ही वह एक अच्छे अध्यापक भी रहे। उनके अध्यापन कौशल का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह पूरा क्लास–रूम विद्यार्थियों से भर जाता था, जगह न होने पर खिड़कियों और दरवाजे तक विद्यार्थी बैठे रहते थें। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के परिवेश में द्विवेदी जी की वजह से नामवर जी के कद में तो बढ़ोतरी हुई लेकिन उनके शिष्य कहलाने कि निकटता की वजह से जो लोग द्विवेदी जी के विरोधी थे, वे नामवर जी के भी विरोधी हो गए। उन्हें यहां से हटा देने के उद्देश्य से चरित्र–हनन संबंधी मनगढ़ंत एय्यारी उपन्यासों जैसी श्रृंखलाएं भी जहां–तहां छपनी शुरू हो गई। फिर जब सन् 1959 ई. में कम्युनिस्ट पार्टी के टिकट से चुनाव लड़कर हारे तो विरोधियों को इन्हें यहां से हटाने का अच्छा बहाना मिल गया और अंततः विरोधी सफल हो गए, नामवर इस विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिए गए।

खैर, यह एक विश्वविद्यालय से निकलकर फिर किसी अन्य विश्वविद्यालय में जाने का सिलसिला तो नामवर जी के जीवनपर्यंत चलता ही रहा लेकिन बनारसी परिवेश का प्रभाव जो उन पर छाया, वह जीवन भर बना रहा।

कुछ वर्षों बाद किन्हीं अन्य कारणों से सागर विश्वविद्यालय से भी नामवर सिंह निष्कासित कर दिये गए। इस निष्कासन के बाद वे जून, 1960 से लेकर जनवरी, 1965 ई. तक बनारस में ही रहे। इस घटनाक्रम के बाद भी उनके माथे पर कोई शिकन नहीं थी, न कोई तनाव ही था। उन दिनों की स्मृति को उनके भाई काशीनाथ सिंह कुछ यूं बताते हैं कि उनके लिए फिर वही बनारस था, और वही अस्सी चौराहा, फिर वही अस्सी चौराहा से लेकर गोदौलिया तक की सड़क थी और फिर वही चिर–परिचित लोलार्क कुंड। आशय यही है कि नामवर सिंह बनारस में अपने शुरूआती जीवन जैसी ही दिनचर्या जी रहे थे। बस फर्क यह आ गया था कि अब पहले की तरह नामवर सिंह से मिलने के लिए अब उतने लोग नहीं आते थे मगर इस बदले हुए घटनाक्रम से वे चिंतित नहीं थे। किसी भी प्रकार के तनाव से मुक्त रहकर उन्होंने अपनी बेरोजगारी के पांच वर्ष बनारस में बिताए थे।"[5] वही अस्सीम चौराहे पर केदार की चाय की दूकान, पहले की तरह अस्सीर से गोदौलिया की पदयात्रा, कोई मिला तो मिला, नहीं अकेले, जेब में पैसे नहीं लेकिन गर्व से तना हुआ सिर, आत्मविश्वास इतना की धरती का बड़ा से बड़ा आदमी ठेंगे पर, वही सफेद लकदक कुर्ता–धोती, वही गोदौलिया पर 'दी रेस्टोरेंट' की शाम और पार्टी दफ्तर।" यहां यह उल्लेखनीय है कि लोलार्क कुंड के नजदीक ही नामवर सिंह किराए के मकान में अपने भाई के साथ रहते थे, जहां रहते हुए उन्होंने 'छायावाद' नाम से प्रसिद्ध कृति लिखी थी। बनारस ने नामवर जी को प्यार भी खुब दिया और यहीं से विरोध भी झेलना पड़ा। ऐसा ही विरोध यहां से गोस्वामी तुलसीदास को भी सहना पड़ा तो आचार्य द्विवेदी जी को भी। कहा जाता है कि तुलसी को विरोध इसलिए सहना पड़ा क्योंकि वे लोकभाषा में रघुनाथगाथा लिख रहे थे और संस्कृति के पंडितों को यह बात स्वीकार नहीं थी। काशी के अस्सीन के जिस हिस्सेस से पंडितों ने तुलसी को भगा दिया था, उस हिस्सें का नाम तुलसी ने 'भयदायिनी' रख दिया था, जो आगे चलकर 'भदैनी' कहलाने लगा।"[6] संयोगवश नामवर जिस लोलार्क कुंड के नजदीक रहते थे, वह भी भदैनी इलाके में ही पड़ता था।

नामवर जी के लिए अब बनारस में अनुकूल माहौल नहीं था। वे आर्थिक अभाव से तो गुजर ही रहे थे,

साथ ही उनके लिए अब साहित्यिक मित्रों का भी अभाव था। इसी बदले हुए परिवेश को भारत यायावर ने शब्दबद्ध किया है– "जो आदमी देश–भर में महत्त्वव पा चुका हो, जिसके होने मात्र से सभा–समारोह की रंगत बदल जाती हो, जिसके व्याख्यानों की दूर–दूर तक चर्चा होती हो, वही बनारस में उपेक्षित था। जिस बनारस से उसे बेइन्तहा लगाव था, वही उसे अपनाने से इनकार कर रहा था। इस तरह उनका बनारस से मोह भंग भी हो रहा था।"[7] इन वर्षों में नामवर जी ने बनारस में ही रहकर स्वतंत्र लेखन किया, इसके बाद वे दिल्ली आ गए और जनयुग साप्ताहिक पत्रिका का संपादन किया।

इन्होंने सन् 1952 से 1992 तक अध्यापन किया, इनमें से पांचवर्ष बेरोजगारी के और पांच वर्ष गैर–अकादमिक काम के निकालने पर तीस वर्षों का उनका अध्यापन अनुभव रहा। अध्यापन को उन्होंने पेशे के रूप में चुना था, नौकरी के रूप में नहीं। अध्यापन को वे जीते थे। अपना अनुभव बताते हुए नामवर कहते हैं कि– "काशी हिंदू विश्वविद्यालय में पढ़ाने का अपना आनंद था। शोध–कार्य करते समय ही पढ़ाना शुरू कर दिया था। ...पैदल चलता था। लेकिन मेरे उत्साह में कमी न थी। अध्यापन के वे बेहतरीन अनुभव थे और वैसा सुख जीवन में उसके बाद नहीं मिला।"[8] जब उनकी नौकरी छूट गई तो इसके तत्काल बाद दुख यह नहीं था कि नौकरी चली गई है, बल्कि यह था कि अपने प्यारे विद्यार्थियों को पढ़ाने का जो सुख था, वह छूट गया है। ऐसे थे नामवर, जिन्होंने हिन्दी के अध्यापक बनकर भी अपना दायित्व निभाया और आलोचक बनकर भी।

बनारस की संस्कृति का जिक्र हो और वहां का प्रसिद्ध बनारसी पान अछूता रह जाए, यह कैसे हो सकता है। "डॉ. नामवर सिंह पान को बाबा विश्वनाथ का आशीर्वाद और प्रसाद मानते थे। इसी वजह से वह सदैव पान खाते थे और साथ रखते थे। साफ कहते थें कि पान काशी की सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक है। डॉ. नामवर सिंह ने जीवनपर्यंत काशी और पूर्वांचल की संस्कृति को जिया और इसे खुद को कभी अलग नहीं होने दिया।"[9] साधारण धोती–कुर्ता में दिखना ही उनकी पहचान रही और अपने इस पान के शौक को उन्होंने हमेशा साथ रखा। नामवर सिंह उन लोगों में से एक थे जो मुँह के एक साइड में पान दबाकर चाय पी सकते थे, यह कला पुराने लोगों के साथ ही विलुप्त हो गई।

नामवर जी देश के अनेक स्थानों पर रहे एवं कई उपलब्धियां हासिल की मगर अपनी माटी बनारस के ऋण को कभी नहीं भूले। एक टीवी चैनल के इंटरव्यू में उन्होंने बताया कि– "अंतिम इच्छा है कि एक बार फिर काशी जाऊं। जीवन के विविध रंगों, प्रगति के नए आयामों को महसूस करना चाहता हूं अपने लोगों को देखना और उनसे रूबरू होना चाहता हूं।"[10] मगर अफसोस यही रह गया कि वे अपने अंतिम समय में बनारस जा न सके। यह सच है कि बाद के वर्षों में बनारस के साथ नामवर जी का निकट संबंध नहीं रह गया था मगर दिल्ली में रहते हुए बनारस उनकी यादों में अवश्य बना रहा।

निष्कर्ष :–

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से लेकर आधुनिक भाषाओं के साहित्य को जानने की असाधारण प्रतिभा के धनी नामवर सिंह की 'नामवरियत' बनारस में ही जन्म ले सकती थी। बनारस विविध संस्कृतियों का संगम स्थल है, जहां से जन्मे, पले–बढ़े नामवर सिंह पांडित्य से भरे बिंदास बनारसी थे जिन्होंने अपनी बात को जमाने के सामने मजबूती से रखा। उनके जीवन का अधिकांश कर्म क्षेत्र भले ही दिल्ली रहा मगर भाव क्षेत्र उनका बनारस ही रहा और उनके व्यक्तित्व में बनारस सदैव रचा–बसा हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. जीवन क्या जिया – नामवर सिंह, सं. आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2021, पृष्ठ 28
2. वही, पृष्ठ 033
3. हिंदी के नामवर– गिरीश्वेर मिश्र–कृष्ण कुमार सिंह, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 19
4. जीवन क्या जिया – नामवर सिंह, सं. आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2021, पृष्ठ 54
5. घर का जोगीजोगडा – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति 2015, पृष्ठ 37
6. भारत यायावर– नामवर होने का अर्थ, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 239
7. नामवर के दिल में बसता था बनारस – सयाली मौर्य, अमर उजाला लेख, फरवरी–2019
8. वही, अमर उजाला लेख।
9. हिंदी के नामवर– गिरीश्वर मिश्र –कृष्ण कुमार सिंह, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 52
10. भारत यायावर – नामवर होने का अर्थ, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 229

संपर्क– लाभचंद्र धाकड़ (शोधार्थी)

ईमेल– labhchandra5556@gmail.com

मोबाइल– 9694669465

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 26-31

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के बाल साहित्य की प्रमुख विधाएँ

डॉ. रचना शर्मा
सहायक आचार्या, हिंदी विभाग, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबडेवाला विश्वविद्यालय झुंझुनू, राजस्थान।

परिचय :–

बाल साहित्य बच्चों के मानसिक, नैतिक और शैक्षिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह साहित्य न केवल उन्हें मनोरंजन का साधन प्रदान करता है बल्कि उनके मनोविज्ञान को भी गहराई से प्रभावित करता है। बाल साहित्य में विभिन्न विधाएँ शामिल हैं जैसे कहानियाँ, कविताएँ, नाटक, और लेख। बाल मनोवैज्ञानिक आपके बच्चे के विकास के मील के पत्थर की ओर उसकी प्रगति का निरीक्षण करेंगे ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आपका बच्चा सामान्य रूप से शारीरिक रूप से विकसित हो रहा है। बाल मनोविज्ञान बच्चों के भावनात्मक, संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास के बारे में मूल्यवान जानकारी प्रदान करता है।

बाल साहित्य की प्रमुख विधाएँ :–

1. **कहानी :** कहानियाँ बच्चों के लिए सबसे आकर्षक और प्रभावी विधा होती हैं। वे बच्चों की कल्पनाशीलता को प्रोत्साहित करती हैं और उन्हें नैतिक सबक सिखाती हैं।

उदाहरण : पंचतंत्र की कहानियाँ, जो नैतिक शिक्षा के साथ–साथ बच्चों के मनोरंजन के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

संदर्भ : शर्मा, रामचंद्र. 'पंचतंत्र की कहानियाँ'. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1980।

2. **कविता :** कविताएँ बच्चों के भावनात्मक और भाषाई विकास में सहायक होती हैं। वे संगीतात्मक और सरल भाषा में होती हैं, जो बच्चों को आकर्षित करती हैं।

उदाहरण : सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताएँ, जो बच्चों को प्रेरित और नैतिक शिक्षा प्रदान करती हैं।

संदर्भ : चौहान, सुभद्रा कुमारी. 'बाल कविताएँ'. दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 1965।

3. **नाटक :** नाटक बच्चों को टीमवर्क और संवाद कौशल सिखाते हैं। यह विधा बच्चों के सामाजिक और भावनात्मक विकास में सहायक होती है।

उदाहरण : हरिकृष्ण देवसरे द्वारा लिखे गए बाल नाटक, जो बच्चों के मानसिक और सांस्कृतिक विकास में सहायक हैं।

संदर्भ : देवसरे, हरिकृष्ण. 'बाल नाट्य संग्रह'. मुंबई : साहित्यागार, 1990।

4. **लेख :** बाल साहित्य में लेख विधा के माध्यम से बच्चों को विभिन्न विषयों पर ज्ञान प्रदान किया जाता है। यह विधा बच्चों की जिज्ञासा और ज्ञान की प्यास को संतुष्ट करती है।

उदाहरण : बच्चों के लिए विज्ञान पर लिखे गए लेख, जो उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करते हैं।

संदर्भ : शर्मा, सुरेश. 'बाल विज्ञान लेख संग्रह'. जयपुर : साहित्यागार, 2005।

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के बाल साहित्य की प्रमुख विधाएँ

1. **कविता :**

समर्पण
चाहने से मिलता है,
सदा जो मिलता है,
स्वयं को पूर्ण समर्पित करते हैं,
तभी जाकर समर्पण करते हैं।
आसान नहीं है समर्पण,
करना होता है स्वयं को समर्पित,
जो कहे माना जाता है
स्वयं ही भोगा जाता है,
सदैव विना कुठ करें,
सब कुछ सुनना,
सभी मानना होता है,
तभी जाकर समर्पण,
पूर्ण होता है।
समाज को समर्पण ही पूर्ण करेगा,
तभी मानवता पूर्ण होगी,
जीवन तभी संपूर्ण होगा।[1] (पृष्ठ 80 बोहल की कविताएं)

सन्नाटा

शून्य से शिखर तक,
सन्नाटा से बहुत दूर तक,
आखिरकार लक्ष्य दूर तक।
अंधेरे के मौड़ रास्ते तक सन्नाटा के पार तक,
चेतना है बहुत दूर तक
एक ना एक दिन कभी,
सन्नाटे के दूर कभी,
पार तो होंगे कभी,

क्योंकि विश्वास है हमें,
उस पर, पार तो कर देगा कभी,
सन्नाटे से दूर कभी घोर अंधेरे,
सन्नाटे के बीच, प्रकाश की एक किरण,
सन्नाटों को चीर कर, नये रूप में प्रकट कर,
जीवन की सार्थकता कर,
प्रकट कर ही देगा वो
विराट, अद्भूत, शक्तिमान यो,
सन्नाटा को पार कर को पूर्ण वो।
पूर्णता को पूर्णता में, मिलान कर ही देगा,
सन्नाटे को सदा के लिए समाप्त वो कर ही देगा।

(2. पृष्ठ 83, बोहल की कविताएं)

संस्कार-संस्कृति

नित्य–निय छोड़ते जाओगे संस्कार,
नये युग को क्या दे पाओगे संस्कार,
तुमने न अपनाएं अपने संस्कार,
दूसरे क्या अपनाएंगे अपने संस्कार।
संस्कारों के कारण ही बची है संस्कृति,
सभी मिल–जुलकर अपनाएं अपनी संस्कृति,
संस्कार और संस्कृति समाज में आएगी, तभी तो देश में एकता आएगी।
संस्कृति की धरोहर को सदा आगे बढ़ाएंगे,
संस्कार को भी सदा बढ़ाओ,
तभी तो देश में समृद्धि आएगी,
एकता, समृद्धि, संस्कार, संस्कृति से,
देश को मिलेगी नई प्रगति सब कुछ है,
संस्कार, संस्कृति। (3. पृष्ठ 93, बोहल की कविताएं)

2. लघु कथाएं/कहानियां :

जागरूकता :

महेंद्र जी एक जागरूक और जिम्मेदार बाइक मालिक सहचालक है। आज तक उसने किसी गलती के लिए चालान नहीं भरा है। कम से कम बीस वर्षों से ड्राइविंग के दौरान उसे खरोच नहीं लगी। इस बात का उसे फक्र है। दूसरी और कैलाश सिंह ऐसे पुलिस अधिकारी हैं। जिन्होंने किसी वाहन वाले को हाथ वे दिया, उसे चालान काटे बिना नहीं छोड़ा। पुलिस महकमें में बात बहुचर्चित है। महेंद्र जी जूते और हेलमेट से लैस है।

ओनर बुक, टैक्स टोकन, बी.एल, बीमा पॉलिसी, और प्रदूषण जांच प्रमाण पत्र की कॉपी कैलाश सिंह के सामने प्रस्तुत की। महेंद्र जी की ओर से कोई कमी नहीं ही। उधर कैलाश सिंह की प्रतिष्ठा दांव पर लगी है, मानो दो नामी–गिरामी पहलवान आमने सामने खड़े हों। अंततः दो हजार रुपए का चालान काटा गया। कारण पूछने पर बताया गया कि राज्य में एकल उपयोग पॉलीथिन (Single Use Plastic) का कान बंद है। कानून का उल्लंघन करने वालों के लिए हजार रूपए या तीन माह जेल का प्रावधान है। महेंद्र जी ने अपने सारे कामजाल सिंगल यूज पॉलीथीन बैंग में लपेट कर रखा था। (4. पृष्ठ 36, बोहल की लघु कथाएं)

कमजोरी :

पुलिस सब–इंस्पेक्टर की ट्रेनिंग समाप्त हुई। सभी प्रशिक्षुओं ने अलग–अलग जगह पर योगदान दिया। अगले माह के प्रथम सप्ताह में क्राइम मीटिंग हुई। पुलिस के मुखिया (एस. पी.) ने नए थाना प्रभारियों को चैलेंज स्वीकारने की नसीहत दी। तभी एक महिला ने कहा, 'यह शातिर और खतरनाक अपराधी दाऊद, जिसकी खोज पुलिस को वर्षों से हैं, जिसे पकड़ना चाहती है।

'लेकिन एक नए अधिकारी के लिए ऐसा संकल्प लेना लोहे के चने चबाने के बराबर है।' एसपी ने कहा।

'मुझे एक मौका दिया जाए।'

'तो ठीक है।'

उसे हर जरूरी सुविधाओं से लैस कराया गया। उसने फाइल का अध्ययन गंभीरता से किया, फिर उसके मोबाइल डिटेल को खंगाला, योजना बनाया और अपना काम शुरू कर दिया। लगभग दो माह बाद मोस्ट वांटेड अपराधी पकड़ लिया गया। राज्यभर में धूम मच गई। हर समाचार पत्र का मुख्य समाचार "दाऊद की गिरफ्तारी" है। मीडिया वालों ने उसे घेर रखा है। अपने इंटरव्यू में बताया कि उसने दाऊद की प्रेमिका को पता ठिकाना बताया था। फिर उसके इर्द गिर्द जाल बिछाया गया। कल 1:00 रात में वह प्रेमिका से मिलने आया पकड़ा गया इतना कह कर वह फुर्र हो गई। (5. पृष्ठ 38, बोहल की लघु कथाएं)

सीख :

बसंत पंचमी का दिन। संध्या आरती के पश्चात् भोग प्रकार पंडाल में बैठा था। सामने खड़े एक व्यक्ति को मैं पहचान ना पाया। मैं बगल में बैठे एक मित्र को उसके बारे में पूछा। कुछ दूर खड़े एक तीसरे ही आदमी ने कहा दादा यह रामा है, मुकेशवा तेली का बेटा। पापी है साला, अभी जेल से आया है। शराब बेचने के आरोप में जेल गया था पुलिस आई और उठा ले गई ठीक किया सबको पता है कि शराब घर में रखना बेचना पीना अपराध की श्रेणी में आता है। पैसे कमाने के लिए बहुत उपाय हैं। तभी संध्या गश्ती पर पुलिस आ पहुंची गश्ती दल को देखते ही अपनी बात छोड़कर वह भागा। एक सिपाही ने उसे दौड़ कर पड़ा उसने शराब पी रखी थी। (6. पृष्ठ 37, बोहल की लघु कथाएं)

कर्म का फल :

बहुत समय पहले की बात है, एक गाँव में एक बड़ा बागान था। बागान का मालिक हर साल बाग की देखभाल करता और खूब फल उगाता। लेकिन एक साल उसकी मेहनत विफल हो गई, क्योंकि पूरे साल बेमौसम बारिश होती रही और चागान का अधिकांश हिस्सा खराब हो गया।

गाँव के एक साधू बाबा ने उसे देखा और पूछा, 'तुम इतने परेशान क्यों हो?' बागान मालिक ने कहा,

'बाबा, मैंने अपने बागान की पूरी देखभाल की, लेकिन फिर भी फसल खराब हो गई। अब मुझे समझ नहीं आ रहा कि क्या करूं।'

साधू बाबा मुस्कुराए और बोले, 'तुमने अपना कर्म पूरी ईमानदारी से किया। फसल का खराब होना तुम्हारी मेहनत का परिणाम नहीं है। प्रकृति के अपने नियम हैं, जिनसे हम सब बंधे हैं। तुम निराश मत हो, क्योंकि कर्म का फल हमेशा अच्छे समय में मिलता है, बस उसका समय अलग होता है।'

किसी और साल बागान में अच्छा मौसम हुआ और बाग भरपूर फल से लद गया। बागान मालिक ने समझ लिया कि मेहनत कभी बेकार नहीं जाती, बस उसका फल समय पर मिलता है।

सीख : हमारे कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाते, उनका फल कभी न कभी मिलता जरूर है, बस उसका समय अलग होता है। (7. श्रेष्ठ, बोध कथाएं, पृष्ठ 15)

सच्ची खुशी :

एक बहुत बड़ा राजा था जिसका नाम राजा हरिचंद्र था। वह बहुत ही न्यायप्रिय और दयालु था, लेकिन उसकी एक समस्या थी वह कभी खुश नहीं रहता था। उसे हमेशा लगता था कि कुछ कमी है, जो उसे खुशी नहीं देती।

एक दिन, एक संत ने राजा से पूछा, 'राजन, क्या तुम जानते हो कि सच्ची खुशी कहीं मिलती है?'

राजा ने कहा, 'मेरे पास हर वस्तु है, धन, महल, और सम्मान, फिर भी मैं खुश नहीं हूँ। मुझे सच्ची खुशी का पता नहीं चलता।'

संत ने राजा को एक अनुभव देने का विचार किया। उन्होंने राजा को जंगल में ले जाकर उसे एक छोटे से घर में रहने वाले एक गरीब व्यक्ति से मिलवाया। वह गरीब व्यक्ति हर दिन कड़ी मेहनत करता, लेकिन उसकी आँखों में सच्ची खुशी और संतोष था। संत ने राजा से पूछा, ष्तुमने देखा इस आदमी के जीवन को? क्या तुम समझ पाए कि यह क्यों खुश है?

राजा ने कहा, 'यह आदमी तो बहुत गरीब है, फिर भी खुशी क्यों है?'

संत मुस्कुराए और बोले, 'राजन, खुशी बाहरी बीजों से नहीं आती। यह अंदर से आती है। संतोष और आभार से ही सच्ची खुशी मिलती है। जब हम अपने जीवन के छोटे–छोटे सुखों के लिए आभारी होते हैं, तो खुशी खुद–ब–खुद हमारे जीवन में आ जाती है।'

राजा ने यह समझा और उसने अपनी सोच बदल दी। उसने अपनी सारी दौलत और महल की चमक–दमक को पीछे छोड़ दिया और आंतरिक खुशी की ओर कदम बढ़ाया।

सीख : सच्ची खुशी बाहरी वस्तुओं में नहीं, बल्कि आंतरिक संतोष और आभार में होती है।

(8. श्रेष्ठ बोध कथाएं, पृष्ठ 22)

बाल साहित्य का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभाव :–

बाल साहित्य, बच्चों के मानसिक विकास और भावनाओं को प्रभावित करता है. बाल मनोविज्ञान के सिद्धांतों को समझकर, बच्चों के संवेदनशीलता, भावनाओं, और सोच को समझा जा सकता है। बाल साहित्य, बच्चों के विकास में मदद करता है और उन्हें सही दिशा दिखाता है। बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसमें बच्चों के मानसिक विकास का अध्ययन किया जाता है। यह जन्म से लेकर किशोरावस्था तक के बच्चों

के व्यवहार और दिमाग पर ध्यान केंद्रित करता है।

1. **भावनात्मक विकास :** बाल साहित्य बच्चों को विभिन्न भावनाओं को समझने और व्यक्त करने में मदद करता है। कहानियों और कविताओं के माध्यम से बच्चे खुशी, दुख, डर, साहस आदि भावनाओं को महसूस और पहचान सकते हैं।

2. **सामाजिक और नैतिक शिक्षा :** बाल साहित्य नैतिक और सामाजिक मूल्यों को सिखाने का प्रभावी माध्यम है। कहानियों में सिखाए गए नैतिक सबक बच्चों के व्यवहार और दृष्टिकोण को आकार देते हैं।

3. **रचनात्मकता और कल्पनाशीलता :** बाल साहित्य बच्चों की रचनात्मकता और कल्पनाशीलता को प्रोत्साहित करता है। कहानियों और कविताओं के माध्यम से बच्चे नई दुनियाओं और संभावनाओं का अन्वेषण कर सकते हैं।

4. **भाषाई विकास :** बाल साहित्य बच्चों की भाषा और शब्दावली को समृद्ध करता है। सरल और रोचक भाषा का प्रयोग बच्चों की भाषा समझ और अभिव्यक्ति को बेहतर बनाता है।

निष्कर्ष :-

बाल साहित्य बच्चों के मानसिक, नैतिक, और शैक्षिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके विभिन्न विधाओं के माध्यम से बच्चों में रचनात्मकता, कल्पनाशीलता और नैतिकता का विकास होता है। बाल साहित्यकारों का योगदान अनमोल है और उनके द्वारा रचित साहित्य बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। पुस्तकें प्रत्येक छात्र के जीवन में कल्पना की दुनिया से परिचित कराने, बाहरी दुनिया का ज्ञान प्रदान करने, उनके पढ़ने, लिखने और बोलने के कौशल में सुधार करने के साथ–साथ स्मृति और बुद्धिमत्ता को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। किताबें हमारे जीवन की सबसे अच्छी साथी होती हैं। बच्चों के चतुर्मुखी विकास के लिए विविधतापूर्ण बाल साहित्य अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ–साथ बच्चों के चारित्रिक तथा मानसिक विकास के लिए भी बाल साहित्य अत्यन्त आवश्यक है। बाल साहित्य मनोरंजन के साथ–साथ आदर्श जीवन तथा अन्य संस्कार निहित होते हैं जिस का बाल मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे सचेतन व जागरूक होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. शर्मा, रामचंद्र. 'पंचतंत्र की कहानियाँ'. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1980।
2. चौहान, सुभद्रा कुमारी. 'बाल कविताएँ'. दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 1965।
3. देवसरे, हरिकृष्ण. 'बाल नाट्य संग्रह'. मुंबई : साहित्यागार, 1990।
4. शर्मा, सुरेश. 'बाल विज्ञान लेख संग्रह'. जयपुर : साहित्यागार, 2005।
5. गुप्ता, अम्बिका प्रसाद. 'हिन्दी बाल साहित्य का विकास'. पटना : बाल साहित्य संसाधन केंद्र, 1984
6. सिहाग, डॉ. नरेश 'बोहल की कविताएँ' विकास बुक कम्पनी, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2024
7. सिहाग, डॉ. नरेश 'बोहल की लघुकथाएँ' काम्बोज बुक पब्लिशर्स नई दिल्ली–110030, प्रथम संस्करण 2024
8. सिहाग, डॉ. नरेश, 'श्रेष्ठ बोध कथाएँ' एस. एस. पब्लिकेशन्स दिल्ली–110032, प्रथम संस्करण 2025

मोबाइल नंबर 9729087874, ई–मेल – rachana.rahul.sharma@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 32-37

आंचलिक असमानता एवं विकासशील राजनीति : पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण की प्रभावशीलता का अध्ययन

प्रभात कुमार ओझा
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, सैदाबाद, प्रयागराज।

प्रस्तावना :–

भारत समेत विभिन्न विकासशील देशों में क्षेत्रीय असमानता (आंचलिक असमानता) एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है। देश के कुछ हिस्से तीव्र गति से विकसित हो रहे हैं, वहीं कई क्षेत्र आर्थिक, सामाजिक एवं बुनियादी सुविधाओं के स्तर पर पिछड़े हुए हैं। इस स्थिति में नीति–निर्माण एवं शासन–व्यवस्था का दायित्व यह है कि वह आंचलिक असमानताओं को कम करने के लिए ठोस पहल करे। विकासशील राजनीति (विकास एवं सुशासन की ओर उन्मुख राजनीति) को इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए, ताकि पिछड़े क्षेत्रों की समस्याओं का उचित समाधान निकाला जा सके।

"आंचलिक असमानता एवं विकासशील राजनीति : पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण की प्रभावशीलता का अध्ययन" विषयक यह शोधपत्र क्षेत्रीय विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न आयामों पर केन्द्रित है। इसमें आर्थिक नीतियाँ, सामाजिक संरचना, प्रशासनिक दक्षता और राजनैतिक इच्छाशक्ति जैसे बिंदुओं पर विवेचन किया गया है, जो पिछड़े क्षेत्रों को मुख्यधारा में लाने में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं। यह शोधपत्र नीति–निर्माण के प्रतिमानों का मूल्यांकन करने के साथ–साथ, व्यावहारिक सुझाव भी प्रस्तुत करता है, ताकि नीति–निर्धारकों और राजनैतिक नेतृत्व को आंचलिक विकास की चुनौतियों से निपटने हेतु एक मार्गदर्शक दस्तावेज प्राप्त हो सके।

मुख्य शब्द :– आंचलिक असमानता, विकासशील राजनीति, पिछड़ा क्षेत्र, नीति–निर्माण, विकेंद्रीकरण, सामाजिक न्याय।

परिचय :–

आंचलिक असमानता का अर्थ और प्रासंगिकता :

विकासशील देशों में, विशेषकर भारत जैसे विशाल भू–भाग वाले राष्ट्र में, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विविधता अत्यंत व्यापक है। आंचलिक असमानता का अर्थ है कि एक ही देश या राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में विकास का स्तर समान न हो। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण महानगरों और ग्रामीण इलाकों के बीच देखने को मिलता है, जहाँ महानगरों में बुनियादी सुविधाओं (जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन आदि) की उपलब्धता बेहतर

है, जबकि ग्रामीण एवं दूर–दराज क्षेत्रों में ये सुविधाएँ न्यूनतम स्तर पर रहती हैं।

आंचलिक असमानता सिर्फ आर्थिक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सांस्कृतिक, सामाजिक और संरचनात्मक पहलू भी शामिल हैं। यदि किसी क्षेत्र में बुनियादी ढाँचे (सड़क, बिजली, पानी) का अभाव है, तो उस क्षेत्र में नए उद्योग–धंधे लगाने में निवेशकों की रुचि भी कम होती है, जिससे बेरोजगारी और पलायन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। फलस्वरूप, इन इलाकों में गरीबी का स्तर अधिक रहता है और लोगों की जीवन–गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विकासशील राजनीति और उसका महत्त्व :

विकासशील राजनीति का तात्पर्य उन राजनीतिक नीतियों और कार्यक्रमों से है, जो समस्त समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास करती हैं। एक पारंपरिक राजनीतिक प्रणाली में सत्ता और शक्ति के मुद्दों पर अधिक ध्यान दिया जाता है, जबकि विकासशील राजनीति में सुशासन (गुड गवर्नेंस), समावेश (इनक्लूजन), पारदर्शिता एवं जवाबदेही जैसे सिद्धांतों को प्राथमिकता मिलती है। आंचलिक असमानता के संदर्भ में विकासशील राजनीति का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है, क्योंकि इसके माध्यम से पिछड़े क्षेत्रों के लिए विशेष नीतियाँ और कार्यक्रम लागू किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, पिछड़े जिलों की पहचान कर उन्हें "एस्पिरेशनल डिस्ट्रिक्ट" घोषित करना, वहाँ केंद्र व राज्य सरकार के संयुक्त प्रयासों से तेज विकास सुनिश्चित करना, तथा नीतिगत ढाँचे के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग और रोजगार के अवसरों में सुधार लाना ये सभी विकासशील राजनीति के अंतर्गत आते हैं।

पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण के प्रमुख अवरोध :

पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण को प्रभावी बनाने की राह में कई बाधाएँ होती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हैंः

1. **भौगोलिक एवं बुनियादी ढाँचे की कमी :** पहाड़ी या दुर्गम इलाकों में सड़क, बिजली, इंटरनेट और अन्य बुनियादी सुविधाओं का अभाव रहता है। इससे सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन बाधित होता है।
2. **प्रशासनिक एवं संस्थागत दुर्बलता :** कई पिछड़े इलाकों में नौकरशाही का व्यापक अनुभव नहीं होता, या फिर इन क्षेत्रों को नीति–निर्माण प्रक्रिया में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। इससे जनता की आवश्यकताएँ नीति में सम्मिलित नहीं हो पातीं।
3. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक बाधाएँ :** जातीय, भाषाई या धार्मिक विविधता के कारण एकरूपता लाने में कठिनाई होती है। कुछ जगहों पर सामाजिक कुप्रथाएँ और रूढ़िगत मान्यताएँ भी विकास की गति को बाधित करती हैं।
4. **राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव :** जब राजनीतिक नेतृत्व असमान क्षेत्रों में संतुलित विकास का विजन न रखता हो या केवल सत्ता–लाभ के लिए राजनीति की जाती हो, तो पिछड़े क्षेत्रों के लिए बनाई गई नीतियाँ लागू ही नहीं हो पातीं।
5. **आर्थिक संसाधनों की कमी :** पिछड़े क्षेत्रों में अक्सर पूँजी निवेश, बैंकिंग सुविधाओं और वित्तीय संस्थाओं की पहुँच कम होती है, जिससे उद्यमिता और स्थानीय अर्थव्यवस्था विकसित नहीं हो पाती।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य :

विश्व स्तर पर देखा जाए तो कई देशों ने क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों से आंचलिक असमानता को कम करने

का प्रयास किया है। चीन ने "वेस्टर्न डिवेलपमेंट स्ट्रैटेजी" लागू करके पश्चिमी प्रांतों को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया। ब्राजील में "बोल्सा फैमीलिया" जैसी योजनाओं के माध्यम से गरीब और पिछड़े क्षेत्रों को वित्तीय सहायता दी गई। इन अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों से सीख लेकर भारत भी अपने पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु लक्षित कार्यक्रम चला सकता है, जहाँ सामाजिक सुरक्षा, कौशल विकास, ग्रामीण औद्योगीकरण और बुनियादी ढाँचे के विस्तार पर विशेष ध्यान हो।

शोध प्रविधि :

इस शोध में गुणात्मक विश्लेषण की पद्धति अपनाई गई है। सर्वप्रथम, आंचलिक असमानता विषयक मौजूदा शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों (जैसे संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक) की सूचनाओं का अध्ययन किया गया। तत्पश्चात्, चुने हुए पिछड़े क्षेत्रों में लागू सरकारी नीतियों की प्रगति पर शासकीय दस्तावेजों और फील्ड रिपोर्टों (Field Reports) का विश्लेषण किया गया। अंत में, इन आंकड़ों को प्राचीन और समसामयिक राजनीतिक सिद्धांतों से मिलान कर, विकासशील राजनीति की प्रभावशीलता को समझा गया।

साहित्य समीक्षा :–

आंचलिक असमानता पर पूर्व शोध :

आंचलिक असमानता पर हुए पिछले शोधों में, अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। कुरियन (1978) ने अपने अध्ययन में दर्शाया कि भारत के कुछ राज्यों में भारी औद्योगिकीकरण हुआ, जबकि दूसरे राज्य कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था पर ही निर्भर रहे। इससे राज्यों के भीतर और राज्यों के बीच असमानता बढ़ी। द्रेज और सेन (2013) ने विकास के मानवीय आयामों (शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता) पर जोर देते हुए कहा कि जब नीतियाँ समाज के सबसे कमजोर तबके तक नहीं पहुँचतीं, तब क्षेत्रीय विषमता और अधिक उभरती है। इन शोधों का निष्कर्ष है कि आंचलिक असमानता के मूल में आर्थिक निवेश और शिक्षा–स्वास्थ्य के स्तरों में अंतर शामिल है। लेकिन इसके साथ–साथ सामाजिक संरचना, जातिवाद, लैंगिक भेदभाव आदि भी इसकी जटिलता को बढ़ाते हैं।

विकासशील राजनीति : सिद्धांत और व्याख्याएँ :–

अनेक विद्वानों ने विकासशील राजनीति के विभिन्न सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं :

सैमुअल हंटिंगटन ने राजनीतिक विकास के लिए संस्थागत स्थिरता और वैधता की आवश्यकता बताई है। वे कहते हैं कि यदि राजनीतिक संस्थाएँ मजबूत हैं तो विकास तेजी से किया जा सकता है। गुणनायक (2015) ने अपने शोध में यह दर्शाया कि विकासशील राजनीति में पारदर्शिता, जवाबदेही और आमजन की भागीदारी बढ़ाने से पिछड़े क्षेत्रों को विशेष लाभ मिलता है। पॉल कॉलियर की पुस्तक The Bottom Billion (2007) पिछड़े देशों में विकास की चुनौतियों पर केंद्रित है। हालाँकि, उनका विश्लेषण मुख्यतः अफ्रीकी व लातिन अमेरिकी देशों पर आधारित है, लेकिन कुछ निष्कर्ष भारतीय सन्दर्भ में भी लागू किए जा सकते हैं।

पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण की चुनौतियाँ :–

संस्थागत व्यवस्था की कमी : पूर्व अध्ययनों में अक्सर कहा गया है कि पिछड़े क्षेत्रों में नीतियों का कार्यान्वयन संस्थागत कमजोरियों के कारण प्रभावित होता है।

1. **वित्तीय प्रतिबंध :** सरकार द्वारा घोषित योजनाओं के लिए पर्याप्त वित्तीय आवंटन नहीं हो पाता, जिसके

परिणामस्वरूप योजनाएँ कागजों में ही सीमित रह जाती हैं।

अपर्याप्त आँकड़े : पिछड़े क्षेत्रों में आँकड़ों का अभाव रहता है, जिससे प्रामाणिक नीति–निर्माण कठिन हो जाता है।

सामाजिक न्याय, समावेश और आंचलिक असमानता :–

सामाजिक न्याय और समावेशन के बिना, किसी भी नीति को सफल नहीं कहा जा सकता। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि यदि सामाजिक और आर्थिक समानता को सुनिश्चित नहीं किया जाता, तो राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होगा। अरविंद कुमार (2020) के अनुसार, पिछड़े क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सामाजिक बहिष्करण (Social Exclusion) देखने को मिलता है, विशेषकर दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों के संदर्भ में यह बहिष्करण शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता के मामले में भी दिखता है। ऐसे में, सामाजिक न्याय के आधार पर ही आंचलिक नीतियाँ बनाई जानी चाहिए। यदि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि में भेदभाव या असमानता होती है, तो क्षेत्रीय विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है।

विकेंद्रीकरण और पंचायती राज :–

भारत में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा (73वाँ और 74वाँ संशोधन) देने का मुख्य उद्देश्य था – ग्रामीण व शहरी स्थानीय निकायों को सशक्त करना ताकि क्षेत्रीय असमानता कम की जा सके।

– राजस्थान और आंध्र प्रदेश ने पंचायती राज की शुरुआत करके इस दिशा में पहल की थी।
– केरल में स्थानीय स्वशासन की सफलता इस बात का उदाहरण है कि यदि वित्तीय और प्रशासनिक अधिकार पंचायतों को दिए जाएँ, तो वे अपने क्षेत्र में विकास को प्रभावी ढंग से लागू कर सकती हैं।

हालाँकि, कई राज्यों में पंचायती राज संस्थाएँ केवल नाममात्र की हैं, क्योंकि राजनीतिक इच्छा शक्ति तथा प्रशासनिक सहयोग की कमी रहती है।

तकनीकी साधन और ई–गवर्नेंस :–

– पिछड़े क्षेत्रों में डिजिटल क्रांति का लाभ पहुँचाने के लिए ई–गवर्नेंस एक कारगर माध्यम हो सकता है।
– गाँवों को ऑप्टिकल फाइबर से जोड़ना, सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन उपलब्ध कराना, और डिजिटल साक्षरता बढ़ाना – ये सभी पहलू पिछड़े इलाकों की समस्याओं को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

विश्व बैंक की रिपोर्ट (2019) ने दर्शाया है कि डिजिटल सेवाओं की पहुँच बढ़ने से भ्रष्टाचार में कमी आती है, तथा लोकसेवाओं का वितरण तेज और पारदर्शी होता है।

अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन :–

चीन, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों ने अपने पिछड़े क्षेत्रों में विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) या विशेष प्रोत्साहन नीति अपनाकर औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया है।

यूरोपीय संघ (EU) में 'कोहेजन पॉलिसी' लागू की गई, जिससे कम विकसित क्षेत्रों को कोष (फंड) उपलब्ध कराया गया और उनके आधारभूत ढाँचों को विकसित किया गया।

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट है कि आंचलिक असमानता एक जटिल एवं बहुआयामी समस्या है, जिसका समाधान महज आर्थिक नीतियों से नहीं हो सकता, बल्कि एक व्यापक राजनीतिक–सामाजिक दृष्टिकोण

की आवश्यकता होती है। विकासशील राजनीति, जिसमें सुशासन, पारदर्शिता, विकेंद्रीकरण और समावेशी नीतियों पर बल दिया जाता है, पिछड़े क्षेत्रों को विकास की मुख्यधारा में लाने की क्षमता रखती है। समीक्षा से यह भी स्पष्ट होता है कि कई सफल उदाहरणों के बावजूद, नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन ही वह केंद्रीय बिंदु है जहाँ अक्सर कमियाँ रहती हैं। इसीलिए, अगली कड़ी में हम उन रणनीतियों पर विस्तार से चर्चा करेंगे जो पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण की प्रभावशीलता को वास्तविक रूप में बढ़ा सकती हैं।

निष्कर्ष :–

आंचलिक असमानता किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास में एक गहरी बाधा बनती है। इस शोध पत्र का उद्देश्य यही था कि विकासशील राजनीति के आलोक में यह समझा जाए कि क्यों कुछ क्षेत्र दूसरों से पिछड़ जाते हैं और वहाँ नीति–निर्माण प्रभावी ढंग से क्यों लागू नहीं हो पाता। शोध के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि क्षेत्रीय असमानताओं के निर्माण में सिर्फ आर्थिक कारक ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलू भी गहरे जुड़े हुए हैं।

विकासशील राजनीति का अर्थ है, ऐसे राजनीतिक और प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण करना जो नागरिकों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील हो, तथा आर्थिक व सामाजिक विषमताओं को कम करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। यदि राज्य और केंद्र सरकारें अपनी नीतियों में पिछड़े क्षेत्रों की समस्याओं को प्राथमिकता दें, तो आंचलिक असमानता को दीर्घकाल में काफी हद तक कम किया जा सकता है। इस प्रकार, "आंचलिक असमानता एवं विकासशील राजनीति : पिछड़े क्षेत्रों में नीति–निर्माण की प्रभावशीलता का अध्ययन" हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि सफल विकास की राह के लिए केवल आर्थिक प्रगति ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और संस्थागत कारकों में भी व्यापक परिवर्तन लाना जरूरी है।

संदर्भ सूची :–

1. कुरियन, सी.टी. (1978). Regional Disparities in India. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. भारत सरकार (2018). बुनियादी सुविधाओं पर राष्ट्रीय रिपोर्ट. योजना आयोग (vc NITI Aayog), नई दिल्ली।
3. हंटिंगटन, सैमुअल (1968). Political Order in Changing Societies. येल यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. NITI Aayog (2019). Transforming Aspirational Districts : A Development Approach. भारत सरकार प्रकाशन।
5. विश्व बैंक (2017). Geographical Barriers and Development. वाशिंगटन डी.सी।
6. प्रशासनिक सुधार आयोग (2013). पिछड़े क्षेत्रों में सेवा वितरण का पुनर्निर्धारण. भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. Dreze, J. & Sen, A. (2013). An Uncertain Glory : India and its Contradictions. पेंगुइन बुक्स.
8. नारायण, इ. (2020). "पिछड़े क्षेत्रों में राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव और नीतिगत प्रभाव", भारतीय राजनीति समीक्षा, खंड 15, अंक 2.
9. Collier, P. (2007). The Bottom Billion: Why the Poorest Countries are Failing and What Can Be Done About It. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

10. 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (1992–93). भारत सरकार प्रकाशन।
11. प्रशासनिक सुधार आयोग (2010). ई–गवर्नेंस एवं प्रशासनिक दक्षता पर रिपोर्ट. भारत सरकार, नई दिल्ली।
12. रॉय, एस. (2018). "आदिवासी क्षेत्रों में समावेशी नीति–निर्माण की चुनौतियाँ", जनजातीय अध्ययन पत्रिका, खंड 22, अंक 1.
13. भारतीय रिजर्व बैंक (2021). Regional Financial Inclusion Survey. मुंबई.
14. कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (2019). Skill India : Report and Recommendations. भारत सरकार।
15. गुणनायक, ए. (2015). "विकासशील राजनीति और सुशासन", Political Perspectives, खंड 9, अंक 3.
16. वाल्टर, एम. (2017). "The Role of Political Will in Development Policies", International Journal of Development, खंड 14, अंक 4.
17. वर्ल्ड बैंक (2019). Digital Dividends in Developing Countries. वाशिंगटन डी.सी.
18. सेठ, एम. (2021). "बहुआयामी गरीबी सूचकांक : भारत की स्थिति और चुनौतियाँ", समाज विज्ञान विवेचना, खंड 11, अंक 4.
19. Arvind Kumar (2020). "Social Exclusion and Regional Imbalances in India", Social Science Research Quarterly, vol. 15(2).
20. European Commission (2018). Cohesion Policy and Regional Development. C# से Yl.
21. असमानता शोध संस्थान (2019). भारत में क्षेत्रीय विकास का तुलनात्मक अध्ययन. नई दिल्ली।
22. पंचायती राज मंत्रालय (2020). Panchayati Raj Institutions and Their Impact on Rural Development. भारत सरकार।
23. UNICEF (2021). Data for Policy : Bridging the Gap in Under-Served Areas. न्यूयॉर्क.
24. ड्रेज, जाँ. (2015). "Poverty, Governance, and Development in Rural India", Economic and Political Weekly.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 38–43

शीतयुद्धोत्तर भारत–अमेरिका संबंधों में प्रवासी भारतीयों की भूमिका : एक सांस्कृतिक, आर्थिक और कूटनीतिक विश्लेषण

डॉ. अवधेश कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर,
विजय कुमार, शोधार्थी
राजनीति विभाग, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद।

प्रस्तावना :–

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से, भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका द्विपक्षीय संबंधों में एक तेजी से सहयोगी प्रक्षेप वक्र पर हैं, जो रणनीतिक हितों और मजबूत आर्थिक संबंधों के अभिसरण द्वारा चिह्नित है। इस गतिशीलता में एक महत्वपूर्ण, हालांकि अक्सर कम आंका गया, चर संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय प्रवासियों द्वारा निभाई गई भूमिका है। उच्च शैक्षिक उपलब्धि, उद्यमशीलता की सफलता और बढ़ते राजनीतिक प्रभाव की विशेषता वाले इस प्रवासी ने सांस्कृतिक कूटनीति, आर्थिक जुड़ाव और राजनीतिक पैरवी में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। शोध पत्र में तर्क दिया गया है कि भारतीय प्रवासियों ने अधिक आपसी समझ को सुगम बनाया, व्यापार और निवेश के संदर्भ में आर्थिक संबंधों को मजबूती दी और भारत के प्रति अमेरिकी विदेश नीति को आकार देने में एक ठोस भूमिका निभाई। शोध पत्र द्वितीयक साहित्य, प्रवासी संगठनों की रिपोर्ट, नीति विश्लेषण और ऐतिहासिक डेटा का उपयोग करके यह दर्शाता है कि कैसे भारतीय प्रवासी दोनों देशों के बीच एक शक्तिशाली सेतु के रूप में उभरे और शीत युद्ध के बाद के युग में नीति परिवर्तन के चालक के समकक्ष स्थापित हुए।

मुख्य शब्द :– भारतीय प्रवासी, भारत–अमेरिका संबंध, राजनीतिक प्रभाव, शीत युद्धोत्तर, विदेश नीति, प्रेषण, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण।

परिचय :–

शीत युद्ध की समाप्ति ने वैश्विक शक्ति संरेखण को नया आकार दिया और हर जगह विदेश नीतियों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता महसूस की। जैसे–जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका दुनिया की एकमात्र महाशक्ति के रूप में उभरा, उसने नई साझेदारियों और रणनीतिक संरेखण की तलाश की। भारत के लिए, शीत युद्ध के बाद का दौर गुट निरपेक्षता और पश्चिम के प्रति शीत युद्ध के संदेह के दौर से अलग था, जिसके कारण संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ आर्थिक, राजनीतिक और रणनीतिक संबंध और भी करीब आए।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय प्रवासी एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी बने जिसने इस अधिक सामान्य परिवर्तन के भीतर भारत–अमेरिका संबंधों की एक नई रूपरेखा तैयार की। संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय प्रवासी, जिनकी संख्या 2020 के दशक की शुरुआत में चार मिलियन से अधिक थी, यकीनन संयुक्त राज्य अमेरिका में सबसे अधिक शिक्षित और धनी जातीय समुदायों में से एक है। यह विभिन्न क्षेत्रों में अनुवादित जनसांख्यिकीय सफलता की कहानी है– प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, शिक्षा, उद्यमिता, सार्वजनिक सेवा। यह सांस्कृतिक, आर्थिक और अब राजनीतिक प्रभाव में प्रवाहित हुआ है। प्रवासी समुदाय सांस्कृतिक संबंध बनाकर, द्विपक्षीय व्यापार और निवेश में सहायता करके और कैपिटल हिल से अमेरिकी विदेश नीति को भारत के प्रति अधिक उदार रुख अपनाने के लिए लगातार पैरवी करके अनौपचारिक राजदूतों के रूप में सामने आए हैं।

यह शोध पत्र शीत युद्ध के बाद के भारत–अमेरिका संबंधों को आकार देने में भारतीय प्रवासियों की बहुआयामी भूमिका की जांच करता है। यह ऐतिहासिक भारत–अमेरिका संबंधों और अंतरराष्ट्रीय मामलों में एक ताकत के रूप में भारतीय प्रवासियों के उभरने से शुरू होता है। फिर, यह एक व्यापक साहित्य समीक्षा करता है और उसके बाद इस्तेमाल की गई शोध पद्धति की रूपरेखा तैयार करता है। इसके अलावा, शोध पत्र यह पता लगाता है कि कैसे प्रवासी लोगों की सांस्कृतिक उपस्थिति अंतर–सांस्कृतिक समझ को जन्म देती है, आर्थिक योगदान द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों को मजबूत करता है, और राजनीतिक प्रभाव अमेरिकी नीति को आकार देता है। यह प्रवासी लोगों के प्रभाव से संबंधित चुनौतियों और आलोचनाओं पर चिंतन और अंत में भारत–अमेरिका संबंधों में एक स्थिर और एकीकृत कारक के रूप में इसकी भविष्य की भूमिका पर विचारों के साथ समाप्त होता है।

साहित्य की समीक्षा :–

प्रवासी समुदायों के अध्ययन और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में ऐसे समुदायों की भूमिका ने विद्वानों के स्तर पर महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया है, यह देखते हुए कि प्रवासी समुदाय मेजबान और गृह देशों की नीतियों और प्रवासियों के बारे में धारणाओं में भूमिका निभाते हैं। कैसल्स, डी हास और मिलर (2014) ने अपने काम में इस प्रकाश में प्रवास की उम्र पर चर्चा की। सबसे खास बात यह है कि प्रवासी समुदाय सीमा पार संबंधों के माध्यम से द्विपक्षीय संबंधों को कैसे प्रभावित करते हैं, इसका विशेष रूप से अध्ययन किया गया है।

अनुसंधान क्रिया विधि :–

यह शोध शीत युद्ध के बाद भारत–अमेरिका संबंधों को आकार देने में भारतीय प्रवासियों की भूमिका का पता लगाने के लिए द्वितीयक डेटा विश्लेषण के लिए गुणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करता है। इस शोध के लिए द्वितीयक डेटा स्रोतों को इसलिए चुना गया क्योंकि इसमें महत्वपूर्ण साहित्य, नीतिगत दस्तावेज, प्रवासी संगठनों की रिपोर्ट और ऐतिहासिक अभिलेख उपलब्ध हैं जो विषय वस्तु में व्यापक अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। साहित्य के प्राथमिक स्रोत समीक्षित जर्नल लेख, पुस्तकें और सम्मेलन पत्र हैं जिनमें विदेश नीति पर प्रवासी समुदाय का प्रभाव, आप्रवासी समुदायों का आर्थिक योगदान और सांस्कृतिक कूटनीति शामिल हैं।

ऐतिहासिक संदर्भ : शीत युद्ध की दूरी से लेकर शीत युद्ध के बाद के एकीकरण तक :–

शीत युद्ध के दौरान, भारत–अमेरिका संबंधों में मनमुटाव और पारस्परिक संदेह की स्थिति रही थी। शीत युद्ध के दौरान, भारत–अमेरिका संबंधों में मनमुटाव और पारस्परिक संदेह की स्थिति रही थी। भारत की

गुटनिरपेक्षता की नीति और कुछ नीतिगत मुद्दों पर सोवियत संघ से निकटता ने वाशिंगटन को इसे एक अनिच्छुक सहयोगी के रूप में देखने के मामले में पीछे रखा। बदले में संयुक्त राज्य अमेरिका ने सोवियत प्रभाव के खिलाफ एक अग्रिम पंक्ति के सहयोगी के रूप में पाकिस्तान का समर्थन किया है, और इससे भारत के साथ तनाव पैदा होता देखा गया है। हालाँकि शीत युद्ध की समाप्ति ने फिर से शुरू करने के लिए एक खिड़की खोली। सोवियत संघ के विघटन के साथ, भारत को अब वैचारिक गुटनिरपेक्षता को प्राथमिकता देने की आवश्यकता नहीं थी। उसी समय, अमेरिका को एहसास हुआ कि भारत तेजी से आर्थिक क्षमता और रणनीतिक मूल्य हासिल कर रहा था, खासकर एशिया की तेजी से बदलती भू–राजनीति में।

1990 के दशक के अंत और 2000 के दशक की शुरुआत में भारत–अमेरिका संबंधों में भारी बदलाव आया। भारत के साथ मजबूत साझेदारी बनाने की वाशिंगटन की प्रतिबद्धता 2004 के रणनीतिक साझेदारी में अगले कदम (एनएसएसपी), 2008 के यूएस–भारत असैन्य परमाणु समझौते और बढ़ते रक्षा सहयोग में अभिव्यक्त हुई। इन रणनीतिक इशारों के बीच, अमेरिका में भारतीय प्रवासियों ने एक प्रमुख भूमिका निभानी शुरू कर दी – मजबूत द्विपक्षीय संबंधों के लिए आधार तैयार करना और ऐतिहासिक गलतफहमियों में निहित संदेहों को दूर करना।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय प्रवासियों का विकास :–

अमेरिका में भारतीय प्रवासियों का इतिहास 20वीं सदी की शुरुआत में शुरू हुए प्रवास से जुड़ा है, लेकिन आप्रवास की महत्वपूर्ण लहरें 1965 से शुरू हुई हैं, जब अमेरिकी आव्रजन कानून कुशल आप्रवासियों के पक्ष में थे। शुरुआत में इंजीनियर, डॉक्टर और शिक्षाविद शामिल होने वाले प्रवासी समुदाय की पेशेवर उपलब्धियों को सबसे पहले सिलिकॉन वैली, बड़े विश्वविद्यालयों, न्यूयॉर्क जैसे वित्तीय केंद्रों और देश भर में स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों में देखा गया। 1990 के दशक में जब भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था को खोला, तो इन उच्च–कुशल प्रवासी समुदायों ने खुद को भारत के उभरते बाजारों में अमेरिकी रुचि और विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को आकर्षित करने में भारत की रुचि के केंद्र में पाया।

सहस्राब्दी के अंत तक, दूसरी पीढ़ी के भारतीय अमेरिकी वयस्क हो रहे थे, और प्रवासी समुदाय की सांस्कृतिक पूंजी राजनीतिक और कूटनीतिक पूंजी में तब्दील होने लगी। यू.एस.–इंडिया पॉलिटिकल एक्शन कमेटी (यू.एस.आई.एन.पी.ए.सी.) जैसे संगठन उभरे, जिन्होंने भारत के अनुकूल नीतियों के लिए पैरवी की, जिससे प्रमुख भारतीय अमेरिकी प्रभावशाली पदों पर पहुंचे–चाहे वह प्रमुख निगमों के सीईओ के रूप में हो, शीर्ष–स्तरीय शिक्षाविदों के रूप में हो, या अमेरिकी प्रशासन में नीति सलाहकारों के रूप में स्थापित हो। ये सफलताएँ केवल प्रतीकात्मक नहीं थीं, ये वास्तविक परिवर्तन थे।

सांस्कृतिक संबंध : सांस्कृतिक राजदूत के रूप में प्रवासी समुदाय :–

सांस्कृतिक कूटनीति अक्सर औपचारिक कूटनीतिक जुड़ाव से पहले और उसके आधार पर होती है। अमेरिकी सार्वजनिक जीवन में भारतीय प्रवासियों का प्रतिनिधित्व – जिसमें खेल, फिल्म, संगीत, साहित्य और टेलीविजन शामिल हैं – ने भारत और भारतीय संस्कृति के बारे में अमेरिका की अधिक सूक्ष्म समझ में योगदान दिया है। भारतीय व्यंजनों के प्रसार से लेकर बॉलीवुड फिल्मों, योग और भारतीय आध्यात्मिक प्रथाओं की लोकप्रियता तक, प्रवासी द्वारा सुगम सांस्कृतिक प्रवाह ने अमेरिकी जनता के लिए भारत को मानवीय रूप दिया

है और शीत युद्ध के दौर की रूढ़ियों को नरम किया है।

शैक्षिक आदान-प्रदान और संस्थागत सहयोग :-

भारतीय अमेरिकियों ने शैक्षिक संबंधों को भी मजबूत किया है। अग्रणी अमेरिकी विश्वविद्यालयों में प्रवासी प्रोफेसर शोध परियोजनाओं में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देते हैं, फेलोशिप प्रदान करते हैं, और दोनों देशों के बीच छात्र विनिमय कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करते हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और शिक्षा का अनुभव करने वाले अमेरिकी छात्र आमतौर पर भारत के बारे में अधिक अनुकूल दृष्टिकोण के साथ लौटते हैं। परिणामस्वरूप 'ज्ञान प्रवासी' दीर्घकालिक बौद्धिक और नीतिगत संबंधों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण ट्रैक के रूप में कार्य करता है। भारत की ओर से, भारत में अमेरिकी विश्वविद्यालयों की उपस्थिति, भारतीय संस्थानों के साथ शोध साझेदारी और अमेरिकी कॉलेजों में भारतीय छात्रों के बढ़ते नामांकन ने ज्ञान और अभ्यास के अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क का निर्माण किया है। शोध सहयोग, सम्मेलनों और थिंक-टैंक संवादों के माध्यम से, प्रवासी शिक्षाविद अनौपचारिक कूटनीति के माध्यम के रूप में कार्य करते हैं, जिससे सरकार-से-सरकार संबंधों में सुधार के लिए मंच तैयार होता है।

मीडिया और लोकप्रिय संस्कृति का प्रभाव :-

डिजिटलीकरण के युग में भारत की अंतरराष्ट्रीय छवि बनाने में प्रवासी नेतृत्व वाले मीडिया, यूट्यूब चौनल, पॉडकास्ट और सोशल मीडिया प्रभावितों के लिए जगह है। प्रवासी पत्रकार और मीडिया निर्माता दोनों संस्कृतियों की सूक्ष्म समझ रखते हैं, इसलिए बेहतर रिपोर्टिंग और अधिक संतुलित होती है। इस तरह, भारत और भारतीय अमेरिकियों के बारे में बेहतर आख्यान उन्हें अमेरिकी नीतियों के लिए अधिक अनुकूल बना देंगे जो भारत के साथ आगे के संबंधों को बढ़ावा देते हैं। यानी, सांस्कृतिक आयाम केवल सजावटी नहीं हो सकता। यह मानसिक और भावनात्मक बुनियादी ढांचे को स्थापित करता है जो औपचारिक कूटनीति और आर्थिक बातचीत को बनाता और समर्थन करता है।

आर्थिक आयाम : निवेश, उद्यमिता और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण :-

भारत-अमेरिका संबंधों के आर्थिक क्षेत्र को प्रवासी समुदाय की उद्यमशीलता नेटवर्किंग, पूंजी प्रवाह और तकनीकी विशेषज्ञता से बड़ी गति मिली है। कई भारतीय अमेरिकी सफल उद्यमियों ने भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए चुंबक का काम किया है। भारत-आधारित स्टार्टअप में निवेश करके, भारतीय प्रौद्योगिकी कंपनियों से सेवाएँ प्राप्त करके, या भारत में उपलब्ध बहुत बड़े प्रतिभा पूल का उपयोग करके व्यवसाय संचालन स्थापित करके, प्रवासी समुदाय के नेतृत्व में व्यवसाय ने इन दोनों देशों के बीच आर्थिक निर्भरता को मजबूत और गहरा किया है।

प्रौद्योगिकी और नवाचार संबंध :-

भारतीय अमेरिकियों ने आईटी, जैव प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य सेवा सहित अमेरिकी अर्थव्यवस्था के कुछ सबसे नवीन क्षेत्रों में खुद को स्थापित किया है। कार्यकारी और शोधकर्ता के रूप में, वे अक्सर अपने पेशेवर नेटवर्क और ज्ञान को भारत में वापस लाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, संयुक्त उद्यम और अनुसंधान सहयोग होते हैं। ये नवाचार संबंध भारत की अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लिए महत्वपूर्ण रहे हैं। सेमी कंडक्टर प्रौद्योगिकी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और दवा अनुसंधान के क्षेत्र में, प्रवासी पेशेवर जानकारी के प्रसार में

महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह बदले में, अमेरिकी आर्थिक और रणनीतिक हितों को पूरा करने के लिए भारत की क्षमता का निर्माण करेगा। भारत की आईटी क्षमता और अमेरिकी उद्यमशीलता पारिस्थिति की तंत्र के इस तालमेल ने न केवल भारत की अर्थव्यवस्था के विकास को बढ़ाया है, बल्कि एक पारस्परिक निर्भरता भी बनाई है, जो यह सुनिश्चित करेगी कि दोनों पक्षों को एक स्थिर और मैत्रीपूर्ण द्विपक्षीय संबंध बनाए रखने में रुचि है।

धन प्रेषण और आर्थिक विकास :–

अमेरिकी प्रवासियों से भारत में आने वाले धन विदेशी मुद्रा और आजीविका समर्थन का एक बड़ा स्रोत हैं। हालांकि बड़े निवेश या बहुराष्ट्रीय भागीदारी की तुलना में इस पर कम चर्चा होती है, लेकिन धन प्रेषण भारत की वित्तीय स्थिरता को बढ़ाता है और कुछ क्षेत्रों में गरीबी को कम करता है। इसके अलावा, वे आर्थिक भागीदार के रूप में प्रवासी समुदाय की स्थिति को रेखांकित करते हैं, जिससे भारत के भीतर संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अधिक जुड़ाव के प्रति सकारात्मक भावना बढ़ती है। जमीनी स्तर के वित्तीय प्रवाह और शीर्ष स्तर के कॉर्पोरेट निवेशों का यह परस्पर संबंध एक जटिल लेकिन स्थिर आर्थिक ताना–बाना बुनता है जो दोनों देशों को एक साथ बांधता है।

राजनीतिक और कूटनीतिक भूमिकाएँ : पैरवी, वकालत और नीति निर्माण :–

भारत–अमेरिका संबंधों को बेहतर बनाने में भारतीय प्रवासियों का सबसे प्रत्यक्ष राजनीतिक योगदान एकत्रीकरण रहा है। वाशिंगटन में, प्रवासी समूह और लॉबिस्ट ऐसे विधायी परिणामों की दिशा में काम करने में सफल रहे हैं जो भारत के लिए अनुकूल होंगे। उदाहरण के लिए, अमेरिका–भारत असैन्य परमाणु समझौते पर बातचीत के दौरान, भारतीय अमेरिकी लॉबिस्ट, समुदाय के नेता और व्यवसायी अमेरिकी कांग्रेस के प्रमुख सदस्यों को प्रभावित करने के लिए जुटे। उनके काम ने अप्रसार संबंधी चिंताओं को दूर करने में मदद की और एक ऐतिहासिक समझौते की नींव रखी जो एक बदले हुए रिश्ते का प्रतिनिधित्व करता है।

मानवाधिकार और विदेश नीति के मुद्दों पर वकालत :–

आर्थिक और सामरिक चिंताओं से परे, भारतीय अमेरिकियों ने कभी–कभी अमेरिका–भारत संबंधों में मानवाधिकारों और लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर टिप्पणी की है। प्रवासी समुदाय बड़े पैमाने पर घनिष्ठ संबंधों का समर्थन करता है, लेकिन आंतरिक बहस राजनीतिक राय की विविधता को दर्शाती है। कुछ प्रवासी सदस्य अल्पसंख्यक अधिकारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए भारत पर अमेरिकी दबाव की मांग करते हैं, जो दर्शाता है कि प्रवासी प्रभाव एकतरफा नहीं है और भारत के शासन में जवाबदेही और पारदर्शिता के लिए दबाव डाल सकता है। प्रवासी समूह अमेरिकी नीति निर्माताओं को भारत को अमेरिकी उदार–लोकतांत्रिक आदर्शों के कारण एक रणनीतिक साझेदार के रूप में देखने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

निष्कर्ष :–

शीत युद्ध के बाद के दौर में, संयुक्त राज्य अमेरिका में भारतीय प्रवासी एक परिधीय अभिनेता से भारत–अमेरिका संबंधों के लिए एक केंद्रीय माध्यम के रूप में विकसित हुए। प्रवासी भारत–अमेरिका संबंधों को अपने तीन–आयामी तरीकों से प्रभावित करते हैं : सांस्कृतिक कूटनीति, आर्थिक अंतर्संबंध और राजनीतिक वकालत। इस प्रकार इसने अमेरिकी धारणाओं को अधिक रचनात्मक नीतिगत जुड़ाव की स्थापना के लिए

अधिक अनुकूल बनाने के बीज बोए। उन्होंने दोनों प्रवासी समुदायों को एक–दूसरे की मातृभूमि के साथ मजबूत आर्थिक संबंधों को मजबूत करने में सक्षम बनाया, जिससे उन्हें परस्पर बहुत लाभ हुआ। अमेरिकी नीति क्षेत्रों में प्रवासी लोगों की उपस्थिति और उनकी पैरवी के परिणामस्वरूप प्रमुख समझौते हुए, जिनमें भारत के प्रति अधिक लाभकारी अमेरिकी विदेश नीतियाँ शामिल थीं।

भारत और अमेरिका के बीच रणनीतिक साझेदारी को और मजबूत करने के साथ ही प्रवासी समुदाय की भविष्य की भूमिका का विस्तार होने वाला है। इंडो–पैसिफिक सुरक्षा संरचना, जलवायु परिवर्तन सहयोग और वैश्विक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं जैसे मुद्दों के लिए अभिनव नीतिगत समाधानों की आवश्यकता हो सकती है। भारतीय अमेरिकी, अपनी द्वि–सांस्कृतिक धारा प्रवाहता के साथ, नीतिगत संवाद को सुविधाजनक बनाने, साझा हितों की वकालत करने और गलत फहमियों को कम करने के लिए अच्छी स्थिति में हैं। फिर भी, प्रवासी समुदाय की विविधता और विकसित हो रहा भू–राजनीतिक परिदृश्य ऐसी चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है, जिनका सावधानी पूर्वक समाधान किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ सूची :–

यहां प्रवासी समुदाय से तात्पर्य मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका में रहने वाले भारतीय मूल के प्रवासियों और उनके वंशजों से है, साथ ही वे भारतीय नागरिक भी हैं जो अस्थायी रूप से अमेरिका में काम कर रहे हैं या अध्ययन कर रहे है :–

1. मिस्त्री, डी. (1999). अमेरिका–भारत परमाणु संबंध : सहभागिता के मामले का पुनर्मूल्यांकन. एशियाई सर्वेक्षण, 39(5), 755–772.
2. मोहन, सी.आर. (2006)। भारत और शक्ति संतुलन, 85(4), 17–32।
3. मेलोन, डी. (2011). समकालीन भारतीय विदेश नीति. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. प्रसाद, वी. (2000). द कर्मा ऑफ ब्राउन फोक. यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा प्रेस।
5. नाई, जे.एस. (2004). सॉफ्ट पावररू विश्व राजनीति में सफलता का साधन। पब्लिक अफेयर्स।
6. कपूर, डी., और मैकहेल, जे. (2005)। प्रतिभा की वैश्विक खोज और विकासशील दुनिया पर इसका प्रभाव। वैश्विक विकास केंद्र।
7. राजगोपालन, एस. (2019)। भारतीय–अमेरिकी और उनकी कहानियाँ, साउथ एशियन डायस्पोरा जर्नल, 11(2), 221–238।
8. सैक्सेनियन, ए. (2006). द न्यू अर्गोनॉट्स : रीजनल एडवांटेज इन ए ग्लोबल इकॉनमी. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. वाधवा, वी., सैक्सेनियन, ए., रिस्सिंग, बी., और गेरेफी, जी. (2007). अमेरिका के नए अप्रवासी उद्यमी : भाग I. ड्यूक विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार पेपर।
10. विश्व बैंक. (2020). विश्व बैंक प्रवासन और विकास संक्षिप्त।
11. वरदराजन, एल. (2010). द डोमेस्टिक अब्रॉड : डायस्पोरास इन इंटरनेशनल रिलेशंस. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 44–47

डॉ. नरेश सिहाग की लघु कथाओं के कथा शिल्प की संरचना

डॉ. मीरा चौरसिया
वरिष्ठ सहायक आचार्या, चमनलाल महाविद्यालय, लंढौरा, हरिद्वार उत्तराखंड।

प्रस्तावना :–

भारतीय साहित्य में लघु कथाएँ एक महत्वपूर्ण विधा हैं। ये केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि जीवन के संवेदनशील पहलुओं एवं सामाजिक वास्तविकताओं का संज्ञान लेने का माध्यम भी हैं। डॉ. नरेश सिहाग की बोहल लघु कथाएँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से न केवल लघु कथा की पारंपरिक सीमाओं को विस्तारित किया है, बल्कि उसमें नवीनता और गहराई भी जोड़ी है। यह शोध आलेख डॉ. सिहाग की बोहल लघु कथाओं के कथा शिल्प की संरचना का विस्तृत विश्लेषण करेगा, जिसमें पात्र, कथानक, दृष्टिकोण, वातावरण, और भाषा आदि महत्वपूर्ण तत्वों की चर्चा की जाएगी।

1. डॉ. नरेश सिहाग का साहित्यिक परिचय :–

डॉ. नरेश सिहाग, एक प्रतिष्ठित लेखक और साहित्यकार हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी बोहल लघु कथाएँ उनकी समझदारी, संवेदनशीलता और गहरी सोच का परिणाम हैं। वे भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को अपने कथा साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन, सामाजिक मुद्दे और सांस्कृतिक तत्वों का जीवंत चित्रण मिलता है। इनके लघु कथा साहित्य का समाज स्तरीय अध्ययन उनके लेखन में मौजूद सामाजिक, सांस्कृतिक, और मानवीय संदर्भों की गहन विवेचना को समेटता है। उनकी लघु कथाएँ समाज के विविध पक्षों, विशेषकर ग्रामीण जीवन, सामाजिक विषमता, स्त्री विमर्श, और मानवीय संघर्षों को उजागर करती हैं। यह अध्ययन उनके साहित्य में निहित सामाजिक संरचनाओं, परंपराओं और आधुनिकता के बीच टकराव के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन के पहलुओं का विश्लेषण करता है।

2. कथा शिल्प का महत्व :–

कथा शिल्प साहित्य की एक आधारभूत संरचना है, जो पाठकों को कथा की दुनिया में प्रवेश करने के लिए मार्गदर्शन करती है। यह शिल्प विभिन्न घटकों का समन्वय है, जो मिलकर एक समृद्ध और प्रभावशाली कथा का निर्माण करते हैं। डॉ. सिहाग की बोहल लघु कथाएँ इस शिल्प का उचित उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

3. पात्र :–

3.1. पात्रों का विकास :

डॉ. सिहाग की लघु कथाओं में पात्रों का विकास विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। उनके पात्र सामान्य जीवन के लोग होते हैं, जो दूसरों के साथ जुड़ाव महसूस करते हैं। जैसे कि उनकी कहानी "पैसे की भूख" में, मुख्य पात्र सागर है, जो अपने जीवन की कठिनाईयों का सामना करता है। उसका संघर्ष और विकास कहानी की धारा में गहराई लाते हैं।

"पैसे की भूख" कहानी से उदाहरण द्रष्टव्य है :–

"सागर का बचपन गरीबी में बीता। उसके परिवार ने कौन सी आर्थिक किल्लत नहीं झेली। चारों भाइयों में सागर आठवीं कक्षा तक पढ़ पाया था। फिर काम की तलाश में दिल्ली पहुंच गया। एक बड़े होटल में बर्तन धोने का काम मिला।................उसके ऊपर पैसे कमाने का भूत सवार था। पैसों के पीछे वह पागल था।"[1]

3.2. संवाद :

उनकी कथाओं में संवाद का महत्वपूर्ण स्थान होता है। संवाद पात्रों की मानसिकता और सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करने में मदद करते हैं। डॉ. सिहाग ने संवादों की सरलता और प्रवाह पर ध्यान दिया है, जिससे पाठकों को पात्रों के साथ तुरंत जुड़ाव महसूस होता है। "मैं कौन हूं?" का उदाहरण द्रष्टव्य है :–

> "तुम लोग जानते हो मैं कौन हूं? मैं आज तक किसी लाइन में नहीं लगा।"
>
> उधर से आवाज आई,
>
> "कौन है आप?"
>
> "देश का प्रधानमंत्री है क्या?"
>
> "नहीं जानता आप कौन हैं?"
>
> "जो भी हो, लाइन से आइए।"
>
> "इस तरह जितनी मुंह उतनी बातें।"[2]

4. कथानक :–

4.1. कहानी का प्रवाह :

कथा का प्रवाह डॉ. सिहाग की लघु कथाओं में काफी सुसंगत और स्पष्ट है। उनका कथानक सामान्यतः एक समस्या के इर्द–गिर्द घूमता है, जिसका समाधान कहानी के अंत में प्रस्तुत किया जाता है। "ज्ञान का पिटारा" कहानी में, व्यक्ति के अत्यधिक ज्ञान होने के बारे में बताया गया है और कहां गया है कि अत्यधिक ज्ञान होना भी कभी–कभी मुसीबत की जड़बन जाती है। "प्रदर्शनकारियों के हाथ में तख्ती, झंडा और बैनर है। एक तख्ती में लिखा था, "सीएए वापस लो।" मेरे पति ने तख्ती लेकर चलने वाले को बगल बुलाया और पूछा, "सीएए का मतलब जानते हो?" वह तो बेचारा किराए का टट्टू था, वह क्या जाने सीएए का और एनआरसी। वह हक्का–बक्का हो गया और इनका भाषण शुरू हो गया।.................तत्काल इन्हें हड्डी अस्पताल में भर्ती कराया गया। डॉक्टरों ने कहा कि अब इनका चलना फिरना नामुमकिन है।"[3]

4.2. मोड़ और अप्रत्याशित तत्व :

डॉ. सिहाग की कहानियाँ अप्रत्याशित मोड़ों से भरी होती हैं, जो पाठकों को चौंका देती हैं। जैसे कहानी

"नसीहत" में, अंत में जब पात्र को मानसिक रोग वार्ड में शिफ्ट कर दिया जाता हैं।, तब पाठक के लिए यह एक तेज मोड़ होता है।

5. दृष्टिकोण :–

5.1. कथा की दृष्टि :

डॉ. सिहाग की लघु कथाएँ व्याख्या के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित होती हैं। वे प्रायः तीसरे व्यक्ति की दृष्टि का उपयोग करते हैं, जो कथानक को गहराई और व्यापकता प्रदान करता है।

5.2. भावनात्मक जुड़ाव :

कथा की दृष्टि कई बार पहले व्यक्ति में भी होती है, जिससे पाठक पात्रों की भावनाओं और आंतरिक संघर्षों के साथ अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं। "ऊंचा ख्वाब" कहानी में, पहली व्यक्ति दृष्टिकोण पाठक को पात्र की दुनिया में ले जाता है, जिससे पाठक उसके अनुभव का अनुभव कर पाता है। "एक दिन पति–पत्नी के मन में कुविचार आया। मां को नींद की गोली देकर कोरा कागज पर निशान ले लिया। फिर मकान को ऊंचे दाम में बेचकर मालामाल हो अपने ख्वाब को पूरा करने की दिशा में सोचने लगा। जब मां को इस धोखाधड़ी का पता चला तो उन्होंने सत्याग्रह कर दिया, पोती भी उसके साथ हो गई।.............सभी थू–थू करने लगी। पुलिस चक्कर काटने लगी। दोनों पानी–पानी हो गए और मामले को किसी तरह व्यवस्थित किया।"[4]

6. वातावरण :–

6.1. प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण :

डा़. सिहाग की कहानियों में वातावरण का विस्तृत और जीवंत चित्रण होता है। उनके लघु कथाओं में प्राकृतिक और सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरण का समावेश होता है। जैसे कि, कहानी ''पशु चेतना" में, प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से ग्रामीण जीवन की सच्चाइयों को दर्शाया गया है। पशुचेतना केवल एक भौतिक संवेदना नहीं, बल्कि यह ग्रामीण संस्कृति की आत्मा का प्रतीक है।

"पूस का महीना। कड़ाके की सर्दी। मेरी गाय ने एक बच्चा जना है। चार दिन में ही बछड़ा चहल कदमी करने लगा है भागने लगा है। कई जूट के बोरों को सिलवाकर पिताजी ने मवेशियों के लिए मानों चादर बनवा दिया है। गाय हमेशा बछड़े के इर्द–गिर्द रहती है उसे चाटती है और प्यार करती है।...........वह बछड़े के पास आई और दांत से उठाकर बोरा को पुनः बछड़े के ऊपर रख दिया। पशु चेतना को देखकर मैं अचंभित रह गया।"[5]

6.2. सामाजिक संदर्भ :

सामाजिक वातावरण का चित्रण भी महत्वपूर्ण है। उनके पात्र समाज के विभिन्न वर्गों से आते हैं और उनका संघर्ष सामाजिक असमानताओं को उजागर करता है। 'धार्मिक उन्माद' कहानी में, डॉ. सिहाग ने समाज में वर्ग भेद और आर्थिक चुनौतियों का गहनता से विश्लेषण किया है। इस प्रकार, उनका विशाल सामाजिक दृष्टिकोण कथाओं को अधिक अर्थ पूर्ण बना देता है।

"यह कॉलोनी लगभग सौ वर्षों से है। सचमुच आदर्श कॉलोनी है। आज तक किसी ने यहां असुरक्षित महसूस नहीं किया, हर किसी के बीच भाईचारा का संबंध है। एकाएक सिर्फ मेरे धार्मिक गांव ने धार्मिक उन्माद फैलाया। हिंसक प्रदर्शन प्रदर्शन किया। फिर क्या था, क्या हिंदू क्या मुसलमान, सभी हड कंपित हो गए।"[6]

7. भाषा और शैली :-

7.1. भाषा :

डॉ. सिहाग की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और सजीव है। वे सरल व सहज और स्थानीय बोलियों का मिश्रण करते हैं, जिससे उनकी लघु कथाएँ हिंदी पाठकों के लिए व्यक्तिपरक बन जाती हैं। उनकी भाषा में एक प्राकृतिक लय होती है, जो पाठक को कहानी के साथ जोड़ने में सहायक होती है। "संस्कृति" कहानी में इसका उदाहरण देखा जा सकता है –"राधिका गुनगुनाती है, दुःख भरे दिन गयो रे भैया, सुख भरे दिन आयो रे।"[7]

7.2. शैली :

उनकी विशिष्ट लेखन शैली में गहनता और सूक्ष्मता दोनों का समावेश है। वे संदर्भ के अनुसार शैली को बदलते हैं, जिससे पाठक को हर कहानी में विभिन्न अनुभव मिलते हैं। उनके वर्णनात्मक अंश पाठकों को दृश्य चित्रण के सहारे कहानी में ले जाते हैं, जैसे कि 'प्रेम' कहानी में पात्र की स्थिति को अत्यंत प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया गया है।

8. निष्कर्ष :-

डॉ. नरेश सिहाग की बोहल लघु कथाएँ न केवल जीवन की सच्चाइयों और संवेदनाओं को व्यक्त करती हैं, बल्कि उनके कथा शिल्प की संरचना में गहराई, नवीनता और प्रभावशालीता का समावेश भी है। पात्रों का विकास, संवादों की सरलता, कथानक का प्रवाह, दृष्टिकोण की विविधता, वातावरण का चित्रण, और भाषा की आकर्षण जैसी विशेषताएँ उनकी लघु कथाओं को विशेष बनाती हैं। इस प्रकार, डॉ. सिहाग की लघु कथाएँ न केवल साहित्यिक कृतियाँ हैं, बल्कि वे समाज की जीवंत तस्वीर भी पेश करती हैं। इनकी कहानियों में हम देखते हैं कि कैसे साधारण जीवन की समस्याएँ और संघर्ष गहन मानवीय भावनाओं के साथ जुड़े हुए हैं, जो पाठकों को सिखाते हैं और प्रेरित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ नरेश सिहाग – बोहल की कथाएं – काम्बोज बुक पब्लिशर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2024 'पैसे की भूख' – पृष्ठ संख्या–92
2. वहीं, पृष्ठ संख्या–49
3. वहीं, पृष्ठ संख्या–18
4. वहीं, पृष्ठ संख्या–26
5. वहीं, पृष्ठ संख्या–70
6. वहीं, पृष्ठ संख्या–19
7. वहीं, पृष्ठ संख्या–53

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक SANGAM
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE Vol. 13, Issue 1-2
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL पृष्ठ : 48–56

भारतीय समाज में पर्यावरणीय स्थिरता में महिलाओं का योगदान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अंजनी कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर – समाजशास्त्र, राजकीय महिला महाविद्यालय हरैया, बस्ती, उत्तर प्रदेश।
तनु तिवारी
सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

अमूर्त :–

पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं। मनुष्यों की निकृष्ट गतिविधियों के कारण पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, और इस प्रकार हमारे वातावरण में अनावश्यक विनाशकारी तत्वों का प्रवेश हो रहा है। मानव पृथ्वी और उसके जीवों पर उनके दुष्प्रभावों के बारे में सोचे बिना प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहे हैं। पेड़–पौधों और वनस्पतियों एवं जीव–जंतुओं का मानव जीवन में बहुत महत्व है। ये मानव के जीवन जीने का आधार हैं, लेकिन आज मानव इनके महत्व और उपयोग को नजरअंदाज कर रहा है। थोड़े से लाभ के लिए मनुष्य प्रकृति का अनावश्यक दोहन करता है। जंगल हो या नदियां, पौधे हो या वनस्पतियां मनुष्य अपने लाभ के लिए प्रकृति का अत्यधिक प्रयोग करता है, जिसके कारण हमारे पर्यावरण में अवांछनीय तत्वों का समावेश हो रहा है। इन अवांछनीय तत्वों से पूरा का पूरा वातावरण प्रभावित एवं प्रदूषित हो रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश राज्य के फतेहपुर जनपद के ग्राम पंचायत सांखा का है। इस गांव की केस स्टडी विधि से अध्ययन किया गया है, तथा साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से भारतीय समाज में पर्यावरणीय स्थिरता में महिलाओं का कितना योगदान है, यह जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गई है।

मुख्य शब्द :– महिला, पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भागीदारी, नारीवाद, भारतीय संस्कृति।

परिचय :–

मानव जीवन प्रकृति के बिना संभव नहीं है। इसलिए पर्यावरण को संरक्षित करना बहुत ही आवश्यक है। महिलाएं मिट्टी, पानी, जंगल और ऊर्जा सहित प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन बहुत ही महत्वपूर्ण ढंग से करती है। पर्यावरण मनुष्य जीवन के लिए यदि अभिन्न अंग है तो उसका संरक्षण मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य बन जाता है। पर्यावरण की रक्षा में महिलाओं को शामिल करने से समाजों को मनुष्यों और पृथ्वी के संसाधनों के बीच एक

अच्छा संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक जिम्मेदारी की भावना विकसित करने में मदद मिलेगी।

व्यावहारिक रूप से प्रकृति के नजदीक होने के कारण, महिलाएं हमेशा पर्यावरणीय मुद्दों को बेहतर ढंग से समझने में सक्षम होती हैं। गोंड एवं खरिया जनजाति में स्त्रियां हल तक को नहीं छूती,क्योंकि हमारी संस्कृति में धरती को माता के रूप में पूजा जाता है। इसलिए एक मां दूसरी मां के कोख में प्रहार भला कैसे कर सकती है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी स्त्रियां दूध नहीं फाड़ती और न ही अंडो का सेवन करती है भले ही वह मांसाहारी हो लेकिन अंडे का सेवन नहीं करेंगी, लेकिन इन सब बातों को एक स्त्री जाति ही समझ सकती है। कुछ महान नारीवादी विचारकों के लेख से हमे इस बात की जानकारी मिलती है कि महिला और प्रकृति में कितनी घनिष्ठता है।

Kathryn Miles (Ecofeminism: sociology and environmentalism) : सांस्कृतिक पारिस्थिति की नारीवादियों का तर्क है किमहिलाओं का प्रकृति के साथ अधिक घनिष्ठ संबंध है क्योंकि उनकी लैंगिक भूमिकाएं (जैसे, परिवार का पालन–पोषण करने वाली और भोजन उपलब्ध कराने वाली) और उनकी जीव विज्ञान (जैसे, मासिक धर्म, गर्भावस्था और स्तनपान) हैं। नतीजतन, सांस्कृतिक पारिस्थितिकी नारीवादियों का मानना है कि इस तरह के जुड़ाव महिलाओं को पर्यावरण की पवित्रता और गिरावट के प्रति अधिक संवेदनशील होने की अनुमति देते हैं।[1]

VandnaShiva (The Seed and the Earth : Women, Ecology and Biotechnology', The Ecologist, 1992) – अपने लेख में कहा है कि प्रकृति में समान भूमिका निभाने से प्रकृति और स्त्री के बीच परस्पर संबंध स्थापित होते हैं। स्त्री का मासिक प्रजनन चक्र, गर्भावस्था का सह–अस्तित्व, प्रसव पीड़ा, स्तनपान का आनंद सब कुछ स्त्री की चेतना से जुड़ा है और यह दर्शाया है कि प्रकृति में बीज और भूमि के बिना जन्म, वृद्धि और विकास संभव नहीं है। मिट्टी सभी रचनात्मकता और जीवन का स्रोत है।[2]

पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का योगदान :–

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक पर्यावरण में महिलाओं का योगदान निम्नलिखित है :–

1. **वैदिक काल में पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का योगदान :–**

प्रारंभ से महिला और प्रकृति के बीच प्रगाढ़ संबंध है। तुलसी एवं शमी ऐसे पौधे हैं जिन्हें प्राचीन काल से आज भी प्रतिदिन पूजा जाता है। महिलाएं प्रतिदिन इस पौधे को पानी देती हैं और दीपक जलाती है। अगर बात त्रेता युग की करे तो मां सीता ने धरती मां की कोख से अवतार लिया है एवं मां सीता को पशु–पक्षियों से अत्यधिक लगाव था और उन्हें प्रकृति की भाषा समझ आती थी। जैसे तूफान आने से पहले उन्हें ज्ञात हो जाता था तथा पशु–पक्षियों की भाषा का ज्ञान था। वही सबरी जैसी साध्वी ने भगवान राम के दर्शन के लिए अपनी कुटिया के चारो तरफ फुलवारी और बागवानी तैयार की थी और उन्ही से प्राप्त फल (बेर) श्री राम को अर्पित किए थे। द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण ने भी गायों का पालन कर करके जानवरों के प्रति दया और लगाव की भावना दिखाई एवं यमुना नदी के विषैले जल से कालिया नाग को नाथ कर नदी के पानी को शुद्ध बनाया था। हमारी भारतीय संस्कृति के रीति–रिवाज एवं परंपराओं में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता दिखाई दे रही है। चंद्रमा की पूजा करनी हो या सूर्य को अर्घ्य (जल) देना हो, वनस्पतियों की रक्षा करनी हो या नदियों एवं जलाशयों का संरक्षण करना हो महिलाएं अपने योगदान में आगे ही रही हैं। हमारे देश में ऐसे कई महत्वपूर्ण

त्योहार है जिसमें पर्यावरण संरक्षण की झलक प्रतीत होती है और उनके प्रति श्रद्धा अर्पित की जाती है। जैसे– वट सावित्री पूजा, छठ पूजा, सोमवती अमावस्या (नदी पूजा), कार्तिक पूर्णिमा, गोवस्त द्वादशी, नाग पंचमी एवं हल पुजी (हल एवं पृथ्वी पूजा) और पोला (बैल की पूजा) आदि। वेदों में भी पर्यावरण से संबंधित अन्य लेख–पुश्च **पृथ्वी बहुला न उर्वि भव तोकाय तनय शंयोः।**[3] (अर्थात् – सम्पूर्ण पृथ्वी और समग्र पर्यावरण शुद्ध रहे, नदी, पर्वत वन, उपवन सब स्वस्थ रहे।) **वायुर्मूर्धा प्राणः**[4] (अर्थात् वायु जीवन की शक्ति है, जो सभी जीवों को प्राण देता है।)

2. मुगल काल में पर्यावरण संरक्षण :–

मुगल काल में भी महिलाओं के पर्यावरण के प्रति अद्वितीय योगदान थे। जोधा बाई भी प्रकृति प्रेमी एवं पशु पक्षियों के प्रति दयालु महिला थी। उन्हे अकबर का शिकार करना बिल्कुल पसंद नहीं, एक बार तो उन्होंने अकबर के बंदूक से गोलियां ही निकाल दी थी ताकि शेर का शिकार न हो सके। हालांकि शेर ने जोधा पर ही आक्रमण कर दिया यह देख कर अकबर ने जोधा को तो बचा लिया लेकिन स्वयं क्षतिग्रस्त हो गए थे। जोधा बाई ने ब्रह्मबाद में पुराने जिले के पास एक बगीचे के साथ एक बावली (सीढ़ीदार कुआं) का निर्माण कराया था। हालाँकि अब केवल बावली ही बची है।[5] जोधा ने एक बड़े बगीचे का भी निर्माण करवाया था। कहते है अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसे इस बगीचे में दफनाया भी गया था जिसे आज अकबर के किला के नाम से जानते है। जहांगीर की पेड़ पौधो के बारे में गहन रूचि थी। उन्होंने अपने काल में अनेक बगीचों का निर्माण कराया था। जहांगीर प्रकृति प्रेमी थे और एवं उन्हें तरह–तरह के पेड़–पोधें लगा कर अध्ययन करने एवं पर्यावरण को भी संरक्षित करने में विशेष रुचि थी। इन्होंने अपने शासन काल में फूलो को बड़ी–बड़ी क्यारियों में बगीचो में लगाया गया। सन् 1611 में इम्पीरियल गार्डन ऑफ लाहौर में गुलाब, गैंदा, वाल फलावर, आइरिस एवं अनेक प्रकार के भारतीय एवं विदेशी फूलो को उगाया जाता था। 40 वर्ष बाद औरंगजेब ने ट्रीफोइल (तिपतिय घास) नारसीकस् ट्यूलिप, पीली चमेली व लिली आदि को शालीमार बगीचे में लगवाया गया। ये फूल शहनशाहो को खुशी देने के साथ–साथ साज सज्जा व प्रदर्शन के काम आते थे।[6]

बिश्नोई आंदोलन 1730 :–

बिश्नोई आंदोलन भारत का प्रथम पर्यावरण संरक्षण के लिए राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में हुए आंदोलनों का एक समूह था। अमृता देवी और उनकी बेटियों सहित कई लोगों ने पेड़ों को गले लगाकर उनका विरोध किया और राजा की सेना ने उन्हें रोक दिया। राजा उनसे क्रोधित हो गया और अमृता देवी एवं उसकी बेटी सहित 363 लोगों को मार डाला।

3. स्वतंत्र भारत में पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का अद्वितीय योदगान :–

कहते है जब प्रकृति का ह्रास होता है, तो महिलाओं का नियमित जीवन बाधित और क्षतिग्रस्त हो रहा है। इस खतरे के खिलाफ महिलाओं ने विरोध प्रदर्शन किया। जिनमें से कुछ विशेष महिलाओं एवं उनके द्वारा किए कुछ प्रमुख आंदोलन का उल्लेख किया गया है :–

1. **चिपको आंदोलन (1973) :** उत्तर प्रदेश के चमोली जिले (अब उत्तराखंड) के जंगलों को संरक्षित करने हेतु महिलाओं के सामूहिक एकत्रीकरण के लिये इस आंदोलन को सबसे ज्यादा याद किया जाता है। हालांकि यह आंदोलन उत्तर में गढ़वाल हिमालय से शुरू हुआ था, सुंदरलाल बहुगुणा और चंडी प्रसाद के नेतृत्व में इसमें

ग्रामीण महिलाओं ने ही प्रमुख भूमिका निभाई थी। हजारों महिलाओं ने पेड़ को गले लगाकर उसे बचाने की योजना में भाग लिया, विशेष रूप से गौरा देवी, सरदौन बहन, मीरा बहन, बचनी देवी, सुदेशा देवी, विमला बहुगुणा जैसी राजसी महिलाओं और कई अन्य जिन्होंने आंदोलन का नेतृत्व किया।

2. **वंदना शिवा (नवदान्य आंदोलन–1987) :** यह आंदोलन जैव विविधता संरक्षण, जैविक खेती, और निष्पक्ष व्यापार को बढ़ावा देने के लिए चलाया जाने वाला आंदोलन है। नवधान्य का अर्थ नौ फसल है जो भारत की खाद्य सुरक्षा के सामूहिक स्रोत का प्रतिनिधित्व करता है। नवधान्य जैव विविधता संरक्षण कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य स्थानीय किसानों को सहायता प्रदान करना, विक्रेताओं की ओर से बेचना और संरक्षित करना और उन्हें प्रत्यक्ष विपणन के माध्यम से उपलब्ध कराना है।

3. **मेधा पाटेकर (नर्मदा बचाओ आंदोलन–1985) :** नर्मदा बचाओ आंदोलन भारत में एक सामाजिक आंदोलन है। सन् 1985 में नर्मदा नदी पर कई बड़े बांधों का निर्माण प्रारंभ होना था। नर्मदा बचाव आंदोलन इन बांधो का विरोध करने के लिए शुरू किया गया था। मेधा पाटेकर ने अपने सहयोगियों (बाबा आमटे, अरुंधति रॉय, आमिर खान आदि) के साथ मिलकर इस आंदोलन को आगे बढ़ाया।

अध्ययन का क्षेत्र :–

प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश राज्य के फतेहपुर जनपद के ग्राम पंचायत सांखा का है, जिसका क्षेत्रफल 4.1sq./km. एवं कुल जनसंख्या–7076 पुरुष / महिला है। इस ग्राम में महिलाओं की जनसंख्या को चिन्हित किया गया है, जिसकी संख्या 3326 है, जो कुल जनसंख्या का 47.0% हिस्सा है। वर्तमान में इस गांव की केस स्टडी विधि से अध्ययन किया गया है, तथा साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से भारतीय समाज में पर्यावरणीय स्थिरता में महिलाओं का कितना योगदान है यह जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गई। प्रस्तुत अध्ययन के लिए महिलाओं को तीन श्रेणियों (निम्न, मध्यम और उच्च वर्ग) में विभाजित किया है और फिर उस आधार पर अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला गया है कि सांखा ग्राम में किस वर्ग की महिलाओं का पर्यावरण में कितना प्रतिशत योगदान है।

शोध का उद्देश्य :–

इस शोध अध्ययन के जरिए विकासशील देशों में महिलाओं की भूमिका और पर्यावरण स्थिरता के बीच संबंध को समझना है। जिसके कारण पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भागीदारी और उनके प्रयासों का विश्लेषण हो सके एवं पर्यावरण स्थिरता में महिलाओं के योगदान को पहचाना जा सके। भारत जैसे विकासशील देशों में पर्यावरण नीतियों में महिलाओं की भागीदारी का मूल्यांकन एवं महिलाओं के नेतृत्व में पर्यावरण संरक्षण के सफल उदाहरणों की पहचान हो सके। इस अध्ययन के द्वारा विकासशील देशों में पर्यावरण स्थिरता में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा दिया जा सके एवं उनके लिए सिफारिशें प्रदान की जा सके।

शोध प्रश्न :–

1. निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग एवं उच्च वर्ग की महिलाएं पर्यावरण को लेकर कितनी जागरूक है तथा पर्यावरण संरक्षण में इनका क्या योगदान है?
2. प्रत्येक वर्ग की महिलाओं का जल संरक्षण, वृक्षारोपण, कृषि क्षेत्र एवं पशुपालन में क्या योगदान है?

शोध विधि :-

प्रस्तुत शोध पत्र को व्यवस्थित करने के लिए मात्रात्मक एवं गुणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है एवं इसके अन्तर्गत अन्वेषणात्मक शोध पद्धति तथा व्याख्यात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन को और अधिक प्रासंगिक बनाने के सामुदायिक अध्ययन पद्धति का भी प्रयोग किया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तर प्रदेश जिले के ग्राम सांखा में निवासित 3326 महिलाओं में से 150 महिलाओं का यादृच्छिक निदर्शन किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या :-

इस शोध पत्र में कुल 150 उत्तरदाताओं से साक्षात्कार एवं अनुसूची द्वारा प्रश्नों के उत्तर को संग्रहीत कर के निम्न सारणी के अंतर्गत लेखबद्ध किया गया है।

सारणी संख्या-01

आयु के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

आयु के आधार पर विभाजन	संख्या	प्रतिशत
15–25 वर्ष	30	20%
26–45 वर्ष	75	50%
46–65 वर्ष	45	30%
15–65 वर्ष	150	100%

सारणी संख्या–01 में उत्तरदाताओं की आयु को प्रदर्शित किया गया है। इसके अनुसार 20% महिलाओं की आयु 15–25 वर्ष है। इस आयु सीमा तक की महिलाएं पर्यावरण के प्रति जागरूक हो जाती है। 50% महिलाओं की आयु 26–45 वर्ष तक ली गई है। 30% महिलाएं ऐसी है जिनकी आयु सीमा 46–65 के बीच की है।

सारणी संख्या-02

वर्ग के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

वर्ग के आधार पर महिलाओं का विभाजन	संख्या	प्रतिशत
निम्न वर्ग की महिलाओं का पर्यावरण संरक्षण में योगदान	50	33.33%
मध्यम वर्ग की महिलाओं का पर्यावरण संरक्षण में योगदान	50	33.33%
उच्च वर्ग की महिलाओं का पर्यावरण संरक्षण में योगदान	50	33.33%
	150	100%

सारणी संख्या–02 में उत्तरदाताओं का वर्ग के आधार पर विभाजन किया गया है। तीनों वर्ग की महिलाओं की संख्या समान है। प्रत्येक वर्ग से 50–50 महिलाओं का चयन किया गया है। जिससे प्रस्तुत शोध में महिलाओं का योगदान के प्रतिशत में पक्षपात की संभावना न रहे।

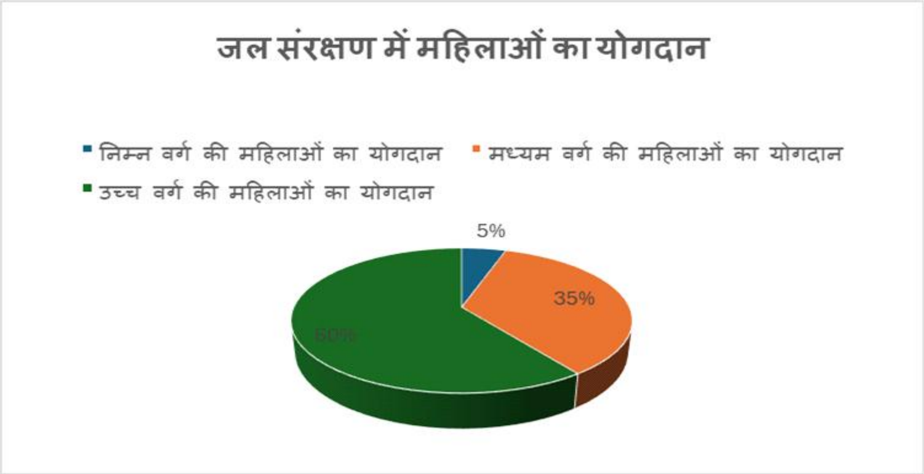

चित्र संख्या– 01

जल के संरक्षण महिलाओं का योगदान (चित्र संख्या–01) – शोध के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई कि जल संरक्षण में उच्च वर्ग की महिलाओं का योगदान 5% एवं मध्यम वर्ग की महिलाओं का योगदान 35% है। निम्न वर्ग की महिलाओं के योगदान सबसे अधिक 60% था। मछली पालन, घर बनाने के लिए मिट्टी की जरूरत हो या मवेशियों के पीने के लिए जल की आवश्यकता की वजह से महिलाएं जलाशयों, नहरों, नदियों की स्वच्छता का विशेष ख्याल रखती है। जलाशयों में और कुंओं में सरकारी कीटनाशक दवाओं का समय समय पर छिड़काव करती है जिससे मछली या कुएं में पीने के पानी में कीड़े न रहे। नदियों एवं नहरों में पानी में रुके हुए अपशिष्ट पदार्थों को तुरंत बाहर निकलती है ताकि पानी के रुकावट में बाधा उत्पन्न न हो। इस गांव में आज भी 5% जनसंख्या कुएं के जल का प्रयोग कर रही है। इस गांव में पानी का पहला स्तर मात्र 90 फीट है। मध्यम वर्ग की महिलाओं का जल संरक्षण में सामान्य योगदान रहा है। जब इन्हे पानी की बहुत ही आवश्यकता होती है, तब यह सार्वजनिक जल संरक्षण में योगदान देती है। यह महिलाएं ज्यादातर निम्न वर्ग की महिलाओं के साथ मिलकर योगदान देती है क्योंकि इन्हें मेहनत कम पड़ेगी। वही उच्च वर्ग की महिलाओं का जल संरक्षण में योगदान नहीं के बराबर था। ये महिलाएं निम्न और मध्यम वर्ग पर पूरी तरह निर्भर रहती है, एवं पैसे देकर जल की सफाई में अपना योगदान देती है। इनका जल संरक्षण में स्वयं का योगदान सिर्फ घर के कामों में पानी का कम खर्च करना होता है।

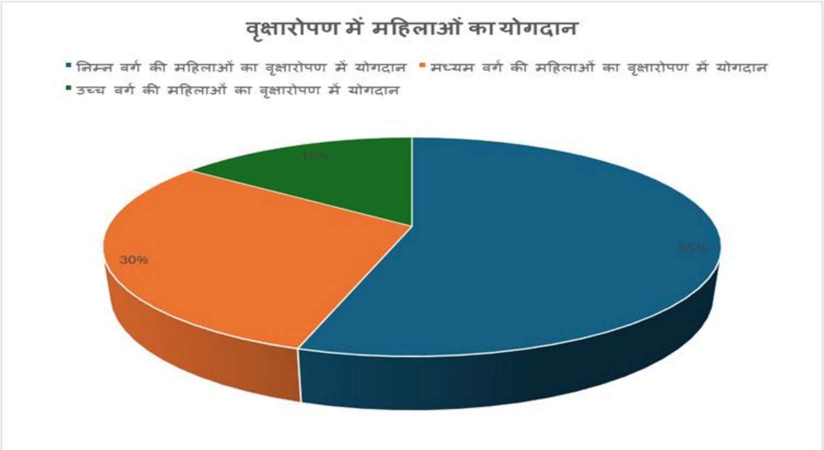

चित्र संख्या– 02

वृक्षारोपण में महिलाओं का योगदान : (चित्र संख्या–02) – प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से निष्कर्ष निकाला गया कि, वृक्षारोपण में भी निम्न वर्ग की महिलाओं ने अपना स्थान ऊपर ही रखा और 55% का योगदान प्रदान किया। जबकि मध्यम वर्ग ने 30% और उच्च वर्ग की महिलाओं ने 15% योगदान देकर अपनी भागीदारी को सुनिश्चित किया है। निम्न वर्ग की महिलाओं ने बताया की वह जंगलों से लकड़ियां लाते है और इसका प्रयोग ईंधन, छप्पर, और घर बनाने में प्रयोग करते है। इनका कहना है कि इनको लकड़ियों की आवश्यकता अन्य वर्गो से अधिक होती है। इसलिए ये लोग वृक्षारोपण में भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेती हैं। चाहे वो पौधो को लगाना हो या अपने आप उगे हुए पौधों (बबूल, नीम, चिरवल एवं गूलर आदि) को निराई–गुड़ाई, एवं पानी दे कर बड़ा करना हो। मध्यम वर्ग की महिलाओं ने भी पेड़ों की रक्षा की और उनकी छटाई करके बड़े पेड़ बनाए और उन पर अपना अधिकार कर लिया। हालांकि फिर भी निम्न वर्ग से इनका योगदान निम्न ही रहा है। उच्च वर्ग की महिलाओं ने वृक्षारोपण में ठीक–ठाक योगदान दिया। इस वर्ग की अधिकतर महिलाएं अपने घर में फुलवारी तैयार करने की काफी शौकीन थी। भिन्न–भिन्न प्रकार के फूलों के पौधे और कुछ फल (अमरूद, आम, नासपाती) घर में तैयार कर के वृक्षारोपण में योगदान किया है। इस वर्ग की महिलाएं अपने खेतों में बाग भी तैयार करवाती है, लेकिन यहां बाग तैयार करने में भी 70% काम पैसे देकर ही करवाती है।

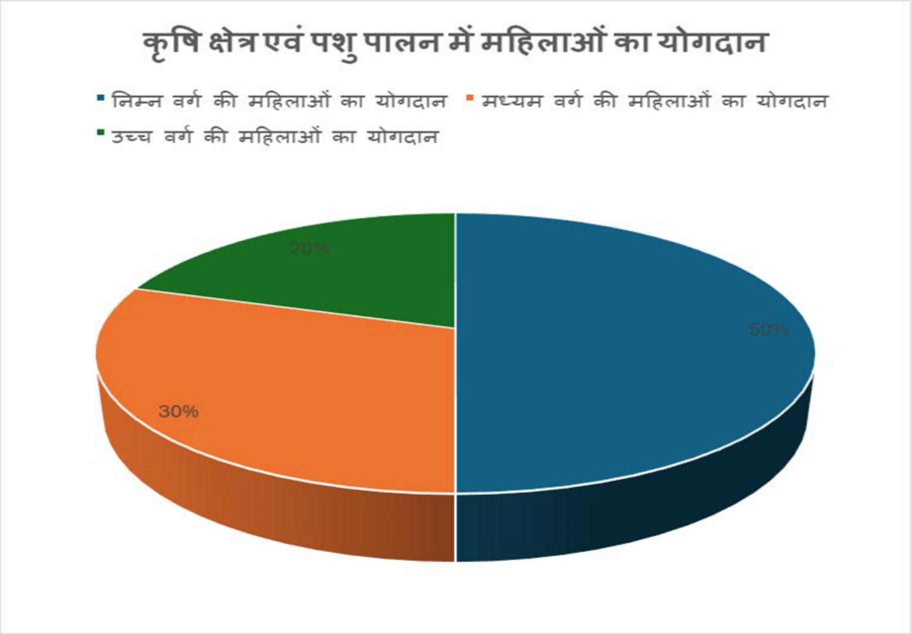

चित्र संख्या–03

कृषि क्षेत्र एवं पशु पालन में महिलाओं का योगदान (चित्र संख्या–03) – कृषि के क्षेत्र में भी उच्च वर्ग की महिलाओं का 20% योगदान प्राप्त हुआ है, वही मध्यम वर्ग की महिलाओं ने 30% एवं निम्न वर्ग की महिलाओं का 50% योगदान रहा है। निम्न वर्ग की महिलाएं अत्यधिक मेहनती एवं काबिल–ए–तारीफ थी। इस वर्ग की अधिकतर महिलाओं के पास भूमि नहीं थी, और कुछ महिलाओं के पास भूमि का एक छोटा सा टुकड़ा ही था जो उनके भरण–पोषण अपर्याप्त था। इसलिए ये महिलाएं दूसरे वर्ग के खेतों में कृषि करके एवं पशुओं का पालन कर के अपना जीविकोपार्जन करती है। इस गांव की केतकी पासी महिला से मुलाकात हुई जो अकेले लगभग 20 बीघे खेती बटाई में लेकर 25 वर्षों से कृषि कर कर रही है। उसने बताया कि उसका पति शराबी एवं आलसी

है, जिसकी वजह से बच्चों के पालन पोषण में बहुत दिक्कत आ रही थी। इसलिए उनसे अपने मायके में आकर बटाई की कृषि करने की शुरुआत की। हालांकि शुरुआत के कई वर्षो तक उसकी रिश्तेदार महिलाओं ने उसकी मदद की थी, लेकिन आज कृषि के विस्तार एवं नए–नए वैज्ञानिक उपकरणों की वजह से उसका काम काफी आसान हो गया है। मध्यम वर्ग की महिलाओं का योगदान भी सराहनीय रहा है। इस वर्ग की अधिकतर महिलाएं अपने खेतों में ही कृषि करने के लिए जाती है। लगभग 20% महिला दूसरे के खेतों में काम करने जाती है। इस वर्ग की महिलाओं के अधिकतर घर में पशुओं का पालन होता है। यहां के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि उच्च वर्ग की महिलाओं का कृषि के क्षेत्र और मवेशियों के पालन में काफी योगदान था। इस गांव की उच्च वर्ग की 20% प्रतिशत महिलाएं अपने ही खेतों में जाती है, एवं कृषि कार्य में हाथ बटातीं है। इस गांव की पुष्पा तिवारी इकलौती ऐसी महिला मिली जो अपनी स्वयं की 15 बीघे जमीन में अपने पति और अपनी 18 वर्षीय पुत्री ज्योति के साथ करती है। इसके साथ ही पशुओं केपालन में भी इनका योगदान काफी महत्पूर्ण था।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :–

इस शोध पत्र के द्वारा पर्यावरण स्थिरता में महिलाओं की भूमिका को समझना है। महिलाओं के अधिकारों और पर्यावरण संरक्षण के बीच संबंध को जानने के लिए इस अध्ययन की आवश्यकता पड़ी। हमारे विकासशील देश भारत में महिलाओं की पर्यावरण संबंधी चुनौतियों को पहचानने के लिए एवं विकासशील देशों में पर्यावरण स्थिरता के लिए प्रभावी रणनीतियों को विकसित करना है। जिससे हमारे भारत जैसे विकासशील देशों में पर्यावरण शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा दिया जा सके। अतः हम कह सकते है कि यह अध्ययन पर्यावरण स्थिरता में महिलाओं की भूमिका को बढ़ावा देने और विकासशील देशों में पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों को मजबूत करने में मदद करेगा। अतः हम कह सकते है कि, पर्यावरण के संरक्षण के लिए महिलाओं को शामिल करने से समाज, मनुष्य एवं पृथ्वी के संसाधनों के बीच एक अच्छा संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक जिम्मेदारी की भावना विकसित करने में मदद मिलेगी।

शोध विधि :–

इस शोध पत्र को व्यवस्थित करने के लिए मात्रात्मक एवं गुणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है एवं इसके अन्तर्गत अन्वेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन को और अधिक प्रासंगिक बनाने के सामुदायिक अध्ययन पद्धति का भी प्रयोग किया है।

तथ्य संकलन की विधियां :–

इस शोधपत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से आंकड़े एकत्रित किए गए है। प्राथमिक आंकड़ों के संकलन हेतु विभिन्न प्रकार के उपकरण जैसे– अवलोकन, सर्वेक्षण, साक्षात्कार, अनुसूची, दैव निदर्शन विधि एवं स्तरीकृत निदर्शन विधि आदि का प्रयोग किया गया है एवं द्वितीयक आंकड़ों के संकलन के लिए पत्रिकाओं एवं पुस्तकों, सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों एवं बेबसाइट्स से प्राप्त आख्याओं से लिया गया है।

निष्कर्ष और भविष्य की संभावनाएं :–

इस शोध के मूल्यांकन से निष्कर्ष निकाला गया कि, महिलाओं का प्राचीन काल से लेकर आज के दौर में क्या योगदान रहा है। किस वर्ग की महिलाएं पर्यावरण के संरक्षण को लेकर कितनी सजग और जागरूक थी। इस अध्ययन के माध्यम से पर्यावरण के सबसे नजदीक निम्न वर्ग की महिलाएं ही शामिल रही है। इन्होंने प्रकृति

की परवरिश अपने बच्चे के भरण पोषण की तरह किया है, और उसके जरूरतों के साथ–साथ उसके दर्द और खुशी को भी महसूस किया। इस वर्ग की महिलाएं अपना कार्य स्वयं करती है और इसके साथ ही साथ पैसे लेकर भी दूसरों का कार्य भी सम्पूर्ण करती है, जिससे पर्यावरण में इनका योगदान उच्चतम रहता है। दूसरा स्थान मध्यम वर्ग की महिलाओं ने हासिल किया और पर्यावरण के प्रति विशेष लगाव को प्रदर्शित किया, इनका कहना है कि, पर्यावरण की रक्षा करने से उनकी आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस वर्ग की 60% महिलाएं अपने सारे कार्य स्वयं करती है और बाकी के कार्य पैसे देकर या पुरुषों से करवाती है। उच्च वर्ग की महिलाएं पर्यावरण संरक्षण में काफी पीछे रह गई। इस वर्ग की महिलाओं को पर्यावरण संरक्षण के विषय में जानकारी सारे वर्गो से कहीं अधिक थी लेकिन इनका योगदान सबसे कम एवं असंतोषजनक ही रहा है। इस वर्ग की महिलाओं के अध्ययन से पता चलता है कि ये महिलाएं अपने अधिकतम कार्य पैसे देकर या पुरुषों के द्वारा ही करवाती है।

संदर्भ सूची :-

1. https://www.britannica.com/topic/ecofeminism
2. Shiva, V. (1992) 'The Seed and the Earth : Women, Ecology and Biotechnology', The Ecologist, 22(1) p. 4-8.
3. ऋग्वेद– 1/189/2
4. (यजुर्वेद 23/12)
5. ए बी सी डी कोच, एब्बा (1990). मुगल वास्तुकला. पृ. 90.
6. बाबरनामा : 494

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 57-59

बोहल की कहानियां – एक समीक्षा

डॉ. सरला जांगिड
सहायक प्रोफेसर, हिन्दुस्तान कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, कोयम्बतूर।

'संतोषः परमं सुखं।'

अर्थ : संतोष ही परम सुख है। यह श्लोक सिखाता है, कि जीवन में सच्चा आनंद और शांति संतोष में ही निहित है। इच्छाओं और लालसाओं से मुक्त होकर संतोष का भाव अपनाने से मनुष्य वास्तविक सुख की प्राप्ति कर सकता है।

समाज में ऐसे व्यक्तित्व विरले होते हैं जो बहुआयामी प्रतिभा के धनी होते हैं। ऐसा ही एक नाम डॉ. नरेश कुमार सिहाग का है। वह व्यक्तित्व, जो लेखक, विचारक और तीन पत्रिकाओं के संपादक हैं। उन्होंने न केवल साहित्य और विचारों के क्षेत्र में अपना योगदान दिया है, बल्कि समाज को जागरूक और शिक्षित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ऐसा व्यक्तित्व समाज के लिए एक मार्गदर्शक और प्रेरणा स्रोत होता है।

उपर्युक्त श्लोक की अनुभूति मुझे डॉक्टर नरेश कुमार सिहाग की पुस्तक 'बोहल की कहानियां' में 'संतोष का फल' से मिलती है। जिसमें साधु बाबा कहते हैं, 'तुम्हारा संतोष ही तुम्हारा सबसे बड़ा खजाना है। संतोष वह वरदान है, जो मनुष्य को शांति और सुख देता है।'

आपकी कहानी 'गढ़ा हुआ धन' से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुई, इसका कारण हमारा पौराणिक इतिहास और भारतीय संस्कृति है। इस कहानी में' धन के सही इस्तेमाल करने का उद्देश्य और मनुष्य का सही खजाना अपने परिवार और आसपास की तरक्की भी है। यह बात सुदामा के जीवन से भी संबंधित है, जहां भगवान विश्वकर्मा सुदामा की पत्नी को उनकी झोपड़ी से महल बनाने के लिए आज्ञा मांगते हैं, तो सुदामा की पत्नी ने कहा, 'कि जब हम गरीब थे, तो इस नगर के लोगों ने हमारे सहायता की और आज जब मैं धनी बन रही हूं, मैं इन्हें कैसे भूल सकती हूं? इसीलिए अगर आप मेरी झोपड़ी को महल बनाना चाहते हैं, तो सबसे पहले उनके घरों को भी आप महल बनाइए।' मनुष्य जीवन का यही उद्देश्य होना चाहिए कि उसे सदा परमार्थ या परहित के बारे में भी विचार करना चाहिए।

'स्वर्ग का अधिकारी' कहानी भी मेरे अंतर्मन को छू गई। आज के संदर्भ में जहाँ मानवीय मूल्य और संस्कार गिर रहे हैं। वहां ऐसी कहानी को लिखना और पाठकों को पढ़ना बहुत जरूरी है। यह कहानी हमारे इतिहास से भी संदर्भित है। इस कहानी के नायक का लड़का अपने पिता हेतु अपना यौवन दे देता है। पिता

के वचनों और आज्ञा पालन को ही सर्वोपरि मानता है, अगर हम इतिहास में पीछे झांके तो पाएंगे कि भगवान राम ने दशरथ की आज्ञा पालन करके चौदह वर्ष वनवास में बिताए।

आपकी कहानियों के पात्र राजा से लेकर जानवर, आम मनुष्य भी है। आपकी कहानियों के पात्र सीमित, संवाद भी छोटे–छोटे हैं, जिसके कारण कहानी को आसानी से समझा जा सकता है। कहानियों का घटनाक्रम ऐतिहासिक, पौराणिक, गांव, शहरी जीवन और जंगल का दृश्य भी है।

आपकी कहानियां 'हारिल पक्षी', पपीरहा और 'चूहे की चतुराई' में मिथकों का प्रयोग किया है। मिथक समाज में प्रचलित वे बातें होती हैं, जिनका आधार पूर्ण सत्य नहीं होता है। मनुष्य व्यावहारिक जीवन में इनका प्रयोग करता है, किसी न किसी घटना से उसका संबंध जोड़कर वर्तमान में उसकी उपस्थिति को सत्य बताता है।

आपकी कहानियां 'राम जन्म कथा', 'अर्जुन के वंशज' और 'होली का दिन' इतिहास का संदर्भ लिए हुए हैं। 'माली और बाग बगीचा' कहानी में आपने दार्शनिकता का पुट भी दिया है।

'ये सारी की सारी धरती एकरंग भूमि है। हर मनुष्य अभिनेता है, वह इस रंगमंच पर अभिनय करने के लिए पैदा हुआ है।"

इसी कहानी में कर्णप्रिय भाषा का प्रयोग करने पर बल दिया है। 'अपनी आवाज बदलो फिर तुम भी सबके प्यारे हो जाओगे।'

आपकी कहानी 'चतुर मौलवी' में एक पात्र मौलवी इलियास ने मुस्कराते हुए कहा, 'देखिए भाई, ज्ञान और बुद्धिमानी का कोई अंत नहीं होता। 'सच्चा ज्ञान' कहानी में अहंकार को त्याग कर गृहस्थी होकर भी बैरागी हो जाना की बात बताई है। आज के युग में सब कुछ छोड़कर वानप्रस्थ और सन्यास में जाना संभव नहीं है, इसीलिए मनुष्य को अपना कर्म करते हुए जीवन में वैराग्य धारण करना चाहिए। वैराग्य का मतलब, 'मनुष्य को केसरिया रंग के कपड़े पहनकर भौतिक सुख के त्याग करने से अर्थ नहीं है। वैराग्य का मतलब है– 'काम' क्रोध' मद, लोभ, मोह और मन की चंचलता पर नियंत्रण करना है। मनुष्य को अपना जीवन संतोषी और आदर्श उच्च रखना है।

कहानियां केवल मनोरंजन का साधन नहीं होतीं, बल्कि वे समाज में नैतिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम होती हैं। कहानियां हमारे समाज की वास्तविकता, परंपराएं और संस्कृति को व्यक्त करती हैं। इनमें जीवन के संघर्ष, नैतिकता, और मानवीय संबंधों के विभिन्न पहलुओं को उकेरा जाता है।

मानवीय मूल्यों जैसे कि सत्य, दया, सहानुभूति, परोपकार, और न्याय की स्थापना, कहानियों के माध्यम से सहजता से की जाती है। हर कहानी में एक संदेश छिपा होता है, जो पाठक या श्रोता को आत्ममंथन करने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए, पंचतंत्र की कहानियां हमें जीवन में बुद्धिमानी और चतुराई का महत्व सिखाती हैं। वहीं, प्रेमचंद की कहानियां ग्रामीण भारत की समस्याओं और उनके समाधान के साथ–साथ मानवता

और सहिष्णुता के गुणों को उजागर करती हैं।

मानवीय मूल्य केवल साहित्यिक कहानियों तक सीमित नहीं हैं। आधुनिक कहानियों, फिल्मों, और नाटकों में भी ये प्रबल रूप से दिखाए जाते हैं। आज की कहानियों में सामाजिक असमानता, पर्यावरण संरक्षण, और महिला सशक्तिकरण जैसे मुद्दों को केंद्र में रखकर मानवीय मूल्यों को प्रकट किया जाता है।

कहानियां मानवीय संवेदनाओं को जागृत करने और समाज को सही दिशा में प्रेरित करने का सशक्त साधन हैं। ये हमें यह अहसास कराती हैं कि मानवीय मूल्य न केवल व्यक्तिगत जीवन को सार्थक बनाते हैं, बल्कि समाज में शांति, प्रेम और समृद्धि भी लाते हैं। कहानियां मानवीय मूल्यों को सहेजने और पीढ़ी–दर–पीढ़ी स्थानांतरित करने का अनमोल माध्यम हैं।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 60-65

साहित्यिक–सांस्कृतिक स्पंदनों का साक्षी 'जब तोप मोकाबिल हो'

राजेश कुमार, शोध छात्र
स्नातकोत्तर भोजपुरी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।
डॉ. उषा रानी, शोध–निर्देशक
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. के. कॉलेज, डुमराँव (बक्सर)
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।

सारांश :–

डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' द्वारा लिखित सम्पादित कृति 'जब तोप मोकाबिल हो' साहित्यिक–सांस्कृतिक हलचलों पर आधारित एक रपट संकलन है। इसे भोजपुरी लेखन में प्रथम रपट संकलन के रूप में जाना जाता है। इसमें प्रकाशित सभी रपटे पहले पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुका था जिसे चुन–बिनकर इकट्ठा कर पाठकों के सामने रपट संकलन के रूप में परोसा गया है। लेखक ने बड़े ही मनोयोग से यह संकलन तैयार किया है, अन्यथा साहित्यिक गतिविधियों का पता हीं नहीं लग पाता। यह कृति एक अक्षय कोश की भाँति भोजपुरी की धरोहर सी बन गई है। स्थायित्व प्रदान करने में इसकी अहम भूमिका है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखक ने खोज–खोज कर भोजपुरी पर की जाने वाली शोध–प्रबन्धों की सूची भी प्रस्तुत की है, जिससे शोधकार्य करने एवं पढ़ने में सुविधा हो सके। लोक–साहित्य पर प्रकाशित पुस्तकें, लोकगीत पर किए गये शोध–प्रबन्ध, लोकगाथा, लोककथा, लोकोक्तियों एवं मुहावरों, लोकनाट्य पर किए गये शोध कार्यों, लोकभाषा एवं बोलियों शोध पर लिखे गये शोधोपाधि हेतु शोध प्रबन्धों की सम्यक सूची प्रस्तुत कर डॉ. भारवि ने सराहनीय कार्य करके भोजपुरी को एक भाषा का स्वरूप प्रदान करने की महती भूमिका प्रस्तुत की है।

बीज शब्द :– साहित्यिक, सांस्कृतिक, फूटकर, चरचा, आलेख, गतिविधियां, रचना, संकलन, मनोयोग, धरोहर, पत्रकारिता, विद्वता।

आलेख :–

भोजपुरी साहित्यकार डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' के 'रचना संसार' पर नजर डालते हुए और मूल्यांकन करते हुए हमने देखा कि कुछ महत्वपूर्ण, संग्रहणीय और यादगार फूटकर रचनाओं के क्रम में भोजपुरी साहित्य में पहला रिपोतार्ज संकलन 'जब तोप मोकाबिल हो' की चरचा प्रमुखता के साथ किया जाता रहा है। इसे भोजपुरी का पहला रपट संकलन माना जाता है जो साहित्यिक–सांस्कृतिक हलचलों पर आधारित है। इसमें सभी 38

साहित्यिक–सांस्कृतिक रपटों को एक पुस्तकाकार में समेटा गया है, जो समय–समय पर तत्कालीन भोजपुरी साहित्य में नामी–गिरामी, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुका है। इसमें सम्पूर्ण रपट साहित्य को चार भागों में बांटा गया है :–

भाग 01 : संध के दम – इसमें विभिन्न संस्थाओं से जुड़े साहित्यिक कार्यक्रम, अधिवेशन आदि की चर्चा किया गया है। इस भाग में 16 आलेख शामिल है जो निम्न प्रकार है– हथिया–हथिया सोर कइले, भोजपुरी ले रहल बा अंगड़ाई, बक्सर के धरती पर विश्वामित्र महोत्सव, आर्या एकेडमी के लागल सोरहवा साल, भोजपुरी साहित्य पर सुनामी के सांसत, भोजपुरी के भिखारी पर प्रलेस भइल उतान, हीरक जयंती के बहाने भोजपुरी साहित्य पर बहस, बक्सर महोत्सव पर तबादला के गाज, होली गीतन पर फुहड़पन के पांकी, भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के बइठक, मंच के सांझि : कवियन के नाम, भोजपुरी पर सार्थक बहस के खोज, रस के बरखा होत रहल रात भर, बक्सर में बहल मारीशस के सरिता, बक्सर में मिलन गोष्ठी और भोजपुरी उपेक्षा के विरोध जैसे प्रमुख रपट शामिल है।

भाग 02 : नाम काम धाम – इसमें भोजपुरी साहित्य जगत से आने वाले चर्चित साहित्यकारों के ऊपर आयोजित कार्यक्रमों से जुड़े 14 रपटों को प्रकाशित किया गया है– प्रथम पुण्यतिथि पर याद कइल गइनी आचार्य किरण, बिना पइसा के वकील प्रणव जी के लागल मूर्ति, राजनीतिक संत के निधन, भोजपुरी कवि जोशी ना रहले, का अब महाकवि किरण नइखीं, मधुप जीना रहनी, भोजपुरी के भीष्म पितामह रहीं विप्रजी, पत्रकार संघ के ओर से डॉ. भारवि सम्मानित, विप्र के बहाने भोजपुरी के बात, कार्तिक सिंह के ना रहला के माने, महाकवि तुलसी के तुलसीगिरी, गिरिजेश भोजपुरी रत्न से सम्मानित, डॉ. आंजनेय के नागरिक अभिनंदन आ थम गइल रेस के घोड़ा जैसे रिपोतार्ज शामिल है।

भाग 03 : साहित्य के बात – इसमें साहित्य की चर्चा की गई है और इसमें 04 आलेख शामिल है– भोजपुरी साहित्य के विकास में बक्सर, भोजपुरी पत्रकारिता आ 'बगसर समाचार', भोजपुरी के मान्यता के सवाल आ भोजपुरी शोध संस्थान बनो।

भाग 04 : चौमुहानी – इसमें भी चार आलेखों को शामिल किया गया है– भोजपुरी के चाही कलकता जाये के गाड़ी, यौन अत्याचार के खिलाफ बुद्धिजीवी भइलन एकजुट, चारोधाम पहुंचला के दास्तान आ अंत में विश्वविद्यालय से स्वीकृत भोजपुरी शोध प्रबन्ध जैसे विभिन्न विषयों से जुड़े आलेख शामिल किए गए हैं जिसमें यात्रा संस्मरण, चारों धाम, शोध प्रबन्ध की सूची सहित इस भाग में जानने को मिल रहा है।

इस पुस्तक में भोजपुरी के नामचीन समालोचक 'महेश्वराचार्य' द्वारा भारवि के ऊपर परिचयात्मक आलेख प्राचार्य डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' शामिल है। महेश्वराचार्य इस आलेख में डॉ. भारवि के बचपन, पालन–पोषण, पढ़ाई–लिखाई, पारिवारिक पृष्ठभूमि सहित 'साहित्य साधना' पर अपनी विचार खुल के व्यक्त किया है। यहाँ तक कहा की भारवि के ऊपर फिल्म बन सकती है, इनकी जो रचना है खासकर भोजपुरी उपन्यासों पर भोजपुरी या हिन्दी फिल्म जरूर बन सकती है।

वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, हिन्दी विभाग से सेवानिवृत डॉ. (प्रो) बलिराज ठाकुर का आलेख 'कलम देखीं कलम के धार देखीं' भी डॉ. भारवि के ऊपर परिचयात्मक आलेख है। भारवि की लेखन और शुरुआती दौर पर अपनी राय देते हुए बलिराज ठाकुर लिखते हैं कि भारवि जब स्नातक में पढ़ते थे तब से हीं, 1967 से

हीं साहित्य लेखन से जुड़े हैं और आज तक साहित्य खास कर भोजपुरी साहित्य का भण्डार भर रहे हैं। आगे बलिराज ठाकुर लिखते हैं कि भारवि एक सफल पत्रकार भी रहे हैं और बक्सर जैसे शहर में 'खोजी पत्रकारिता' की नींव भी इन्होंने हीं रखी। अपनी कलम से इन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, सिंचाई, आबकारी आदि कई विभागों की पड़ताल कर पोल खोलने का काम किया जिसके चलते कितने अधिकारियों के ऊपर निलंबन और बरखास्तगी की गाज तक गिरा है। डॉ. भारवि कलम के धनी एक प्रयोगधर्मी उपन्यासकार भी हैं। भारवि का भोजपुरी साहित्य और उपन्यासों में वही जगह है जो हिन्दी उपन्यास साहित्य में 'प्रेमचन्द' की है। एक पत्रकार की हैसियत से समय–समय पर इनकी कलम से लिखा बक्सर, आरा के साहित्यिक हलचलों की रपट और विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छपे आलेखों को एक जगह इकट्ठा कर, जोड़ कर तैयार कर एक संग्रह का रूप 'जब तोप मोकाबिल हो' में भारवि के कलम की धार देखते बनती है। यह रिपोतार्ज संग्रह को भोजपुरी में पहला रपट संग्रह माना गया है।

रामजी पाण्डेय 'अकेला' का आलेख 'कलम के मजदूर के कलम के बात' इस रपट संग्रह में शामिल किया गया है। रामजी पाण्डेय 'अकेला' इस आलेख में आदिम युग से जोड़ते हुए लिखते हैं :–

'तोप तलवार के मोकाबिल बा कलम से
आदमी–आदमी में युद्ध बा जनम से।
तोपन से ज्यादा ही जोर होला कलम में
घर–घर में झगड़ा बा बीबी अउर बलम में।'

तोप के बारे में विस्तार से समझाते हुए अकेला ने यह व्यंग्य किया है और लिखते हैं कि बहुत जमाने पहले आदिम युग में आदमी–आदमी की लड़ाई शरीर के बल से होती थी बाद में छोटे–मोटे पत्थरों से बने भाला से चला। मानव का विकास जैसे–जैसे होते गया हथियारों का भी इजाफा हुआ जिसमें भाला, तलवार, कटारी, बन्दूक, पिस्तौल तोप तक पहुंच गया। भारत में मुगल साम्राज्य तक सबसे बड़ा हथियार तोप को हीं माना गया। आज टेक्नोलॉजी बढ़ गयी है, वैज्ञानिकों का जमाना है, बैठे–बैठे मिसाइल से लड़ाई को लड़ा जा रहा है। मगर अब तोप का बड़ा महत्व है खासकर बोफोर्स तोप का। कलम भी किसी हथियार से कम नहीं है। डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' कलम के मजदूर हैं, कलम हीं इनकी औजार है, हथियार है। भारवि एक बेजोड़ पत्रकार रहे हैं, इसीलिए बड़ा सोंच समझ कर इस किताब का नाम 'जब तोप मोकाबिल हो' रखा जिसे भोजपुरी में पहला रपट संकलन के रूप में जाना जाता है।

कलमकार अपनी कलम से तोप को भी तोप देता है। तोप से लड़ाई विनाश कर देता है, बाद में खण्डहर छोड़ जाता है लेकिन कलम से तोप चलाने वाला, इतिहास बनाने वाला खत्म कर स्थायित्व दे देता है। बाद में लोग उसे पढ़–पढ़ कर उस समय की जानकारी हासिल करता है, उससे कुछ अच्छा सिख लेता है। गुजरे जमाने को पढ़ कर याद किया जाता है। अपने पूर्वजन के बारे में भी लोग जान पाते हैं।

हिन्दी पत्रिकाओं के बाद डॉ. भारवि की रपट भोजपुरी पत्रिकाओं जैसे– भोजपुरी माटी, भोजपुरी कहानियाँ, भोजपुरी कलम, पाती आदि पत्रिकाओं में आने लगी। इसमें से भोजपुरी माटी पत्रिका कोलकाता से इनकी रपट रेगुलर प्रकाशित होने लगी। ऐसे हीं सभी रपटों को मिलाकर डॉ. भारवि द्वारा एक रपट संकलन तैयार किया गया है। डॉ. भारवि बड़ी मेहनत से इस संकलन को पाठकों के सामने परोसा है। इन सभी रपटों

में नामी–गिरामी साहित्यकारों, कवियों, नेताओं के ऊपर लिखे आलेखों को यादगार संजोने लायक है। जब डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' जैसे दक्ष साहित्यकार अपनी रपट किसी पत्र–पत्रिकाओं में भेजता है तो उस रपटों की साहित्यिक महत्व बढ़ जाती है। कुछ ऐसे हीं रपटों को इस संकलन में संग्रहित किया गया है जिससे इसका महत्व और बढ़ जा रहा है।

'भोजपुरी साहित्य मण्डल, बक्सर' के अध्यक्ष अनिल कुमार त्रिवेदी का आलेख 'भारवि जी कवनों परिचय के मुहताज नइखी' इस रपट संकलन में शामिल है। इस पर अपनी विचार देते हुए अनिल कुमार त्रिवेदी लिखते हैं की डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' की यह किताब बिना भूमिका की छपी है। भूमिका की क्या जरूरत है?

'हाथ कंगन के आरसी का
पढ़ला लिखला के फारसी का।'

भूमिका तो वह होता है जो वह नहीं होता। उसे बढ़ा चढ़ा के बताया या कहा जाए। जैसे साँवले को गोरा, कमजोर को ताकतवर, मुंहदुबर को मुंहजोर, ठग को साधु और चोर को संत। इसीलिए महाकवि तिलक ने कहा है :–

'भूमिका लिखाना तो सोहर गवाना है
कांसे और पीतल को सोना कहाना है।'

आगे अनिल कुमार त्रिवेदी लिखते हैं कि 'जब तोप मोकाबिल हो' भोजपुरी रिपोतार्ज विधा का पहला किताब है। इसमें नया–पुराना, बासी–टटका रपटों को पुराने पत्रिकाओं की फाइलों से चुनकर परोसने का ऐतिहासिक काम हुआ है। 'जब तोप मोकाबिल हो' से बक्सर जिले की साहित्यिक हलचलों को तो उजागर होता हीं है, साथ हीं साथ देश की साहित्यिक गतिविधियों से पर्दा भी उठता है। इस किताब की भूमिका 'अखबार निकालीं' में डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' लिखते हैं की कलम कलम है और तलवार तलवार है। जहाँ पर सुई काम आती है वहाँ पर तलवार बेकार हो जाता है। तलवार सिर्फ काट सकता है, लेकिन सुई जोड़ती है। वैसे हीं तलवार सिर्फ वार करता है। कलम वार भी करता है और बचाव भी करता है। तलवार से साहित्य की ताकत अधिक माना गया है। साहित्य लोगों को, समाज को, देश को जोड़ता है चेतना देता है, आगे बढ़ने के लिए प्रेरित भी करता है, सही राह दिखाता है। चुनौती देने के लिए तलवार कलम से ज्यादा कारगर होता है। इसीलिए कहा गया है '–

'खींचो न कमानो को, न तलवार निकालो
जब तोप मोकाबिल हो अखबार निकालो।'

बिहार प्रगतिशील लेखक संघ के उप महासचिव डॉ. दीपक कुमार राय एवं आदित्य वर्द्धनम अपनी विचार को रखते हुए लिखते हैं कि यह रपट संकलन 'जब तोप मोकाबिल हो' बक्सर कि सांस्कृतिक और साहित्यिक हलचलों का एक सुंदर दस्तावेज है। इस किताब में बक्सर की साहित्यिक दिल से धक–धक सुना जा सकता है, जिससे सुनकर नये पाठकों को भी कुछ–कुछ होने लगेगा। हमें पूरा विश्वास है कि इस तरह का काम भोजपुरी में पहला होगा।

लेखक, सम्पादक डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' बताते हैं कि अखबारों से, भोजपुरी पत्रिकाओं से साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों को समय–समय पर अपनी कलम से लिखे प्रकाशित रपटों को चुन–बिनकर

पाठकों के सामने परोसने की कोशिश किया है। इससे बक्सर और उसके आस–पास के भोजपुरी साहित्य जगत की सांस्कृतिक साहित्यिक हलचलों को देखने, समझने में पाठकों को कुछ मदद मिला तो हम अपनी मेहनत को सफल समझेंगे। इसमें जनता की रपट को शामिल किया गया है, इसमें से ज्यादातर रपट भोजपुरी माटी पत्रिका जो कोलकाता से निकलती थी उसमें छपा है, कुछ रपट भोजपुरी कहानियां वाराणसी से निकला था और कुछ रपट भोजपुरी कलम पत्रिका में और कुछ रपट भोजपुरी पत्रिका पाती में छपा था। जीतने भी रपट इस संकलन में शामिल किया गया है। वह सब में पत्रिका का नाम और दिनांक सहित कहां से छपा है। वह सब देखने को मिल रहा है, जो एक यादगार पल हो सकता है, आज के समय में किसी इतिहास से तनिक भी कम नहीं है।

डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' ने साहित्यिक और सांस्कृतिक हलचलों पर आधारित रपट संकलन 'जब तोप मोकाबिल हो' तैयार की। इसे भोजपुरी साहित्य में पहला 'रपट संकलन' माना गया जो 'अरुणोदय प्रकाशन' बक्सर से 2013 में प्रकाशित हुआ। इसके पहले किसी का भी ध्यान 'रपट संकलन' की ओर नहीं गया था। लेखक ने बड़े हीं मनोयोग से यह संकलन तैयार किया है, अन्यथा साहित्यिक गतिविधियों का पता हीं नहीं लग पाता। यह कृति एक अक्षय कोश की भाँति भोजपुरी की धरोहर बन गई है। स्थायित्व प्रदान करने में इसकी अहम भूमिका है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखक ने खोज–खोजकर भोजपुरी पर की जाने वाली शोध प्रबन्धों की सूची भी प्रस्तुत की है, जिसमें शोधार्थियों एवं भोजपुरी प्रेमियों को शोधकार्य करने एवं पढ़ने में सुविधा हो सके। लोक साहित्य पर प्रकाशित पुस्तकें, लोकगीत पर किये गये शोध–प्रबन्ध, लोकगाथा, लोकोक्तियों एवं मुहावरों, लोकनाट्य पर किये गये शोध कार्यों, लोक भाषा एवं बोलियों पर लिखे गये शोधोपाधि हेतु प्रबन्ध की सम्यक सूची प्रस्तुत कर डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' ने सराहनीय एवं गुरुत्तर कार्य करके भोजपुरी को एक भाषा का स्वरूप प्रदान करने की महती भूमिका प्रस्तुत की है।

हिन्दी के बाद डॉ. अरुण मोहन भारवि की रपट भोजपुरी माटी, भोजपुरी कहानियाँ, भोजपुरी कलम, पाती जैसी विभिन्न भोजपुरी पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी। इनमें से भोजपुरी माटी पत्रिका कोलकाता में इनकी रपट रेगुलर प्रकाशित होने लगी थी। डॉ. भारवि ने बड़ा मेहनत से इस रपट संकलन को पाठकों के सामने परोसा था। इन रपटों में नामी–गिरामी साहित्यकार, कवि, नेताओं के ऊपर आलेख को यादगार सँजोने लायक है। जब भारवि जैसे दक्ष साहित्यकार अपनी रपट को किसी पत्र–पत्रिकाओं में भेजता है तो उन् रपटों का साहित्यिक महत्व बढ़ जाता है। कुछ ऐसे हीं रपट इस संकलन में संग्रहित है। डॉ. अरुण मोहन 'भारवि' की रपटों में विद्वता झलकती है। विद्वतापूर्ण रपट में निबंधो जैसा आनन्द मिलता है। इसकी बानगी देखनी है तो भोजपुरी के विकास में बक्सर, पढ़े तब डॉ. भारवि की कलम की कमाल दिखेगा। दूसरा भोजपुरी पत्रकारिता और बक्सर समाचार, तीसरा भोजपुरियन के चाहीं कलकत्ता जाए के गाड़ी, चौथा चारों धाम पहुंचला के दास्तान, पाँचवा विश्वविद्यालयन से स्वीकृत भोजपुरी शोध–ग्रंथ, छठा एगो श्रद्धांजलि का महाकवि किरण नइखी। सातवाँ राजनीतिक संत के निधन, आठवाँ हथिया हथिया सोर कइले, नया रस के बरखा होत रहल रात भर आदि को पढ़ने के बाद सत्यता मालूम हो जाता है।

निष्कर्ष :–

यह रपट संकलन 'जब तोप मोकाबिल हो' बक्सर की साहित्यिक और सांस्कृतिक हलचलों / स्पंदनों का एक सुंदर गुलदस्ता है। भोजपुरी साहित्य जगत में साहित्यिक सांस्कृतिक हलचलों से पाठकों को भी देखने,

समझने में भी कुछ मदद मिलेगा। शोध प्रबन्धों की प्रस्तुत सुचि जिसमें शोधार्थियों एवं भोजपुरी प्रेमियों को शोधकार्य करने एवं पढ़ने में सुविधा हेतु सराहनीय काम है। लेखक ने बड़े ही मनोयोग से यह संकलन तैयार किया है, अन्यथा साहित्यिक गतिविधियों का पता हीं नहीं लग पाता।

संदर्भ :–

1.	जब तोप मोकाबिल हो–	महेश्वराचार्य–	अरुणोदय प्रकाशन–	08
2.	,,	,,	,,	09
3.	,,	बलिराज ठाकुर	,,	12
4.	,,	,,	,,	13
5.	,,	रामजी पाण्डेय 'अकेला'	,,	15
6.	,,	,,	,,	16
7.	,,	अनिल कुमार त्रिवेदी	,,	18
8.	,,	,,	,,	19
9.	,,	डॉ. अरुण मोहन 'भारवि'	,,	21
10.	त्रिवेनी–	त्रिलोकीनाथ पाण्डेय,	,,	16
11.	गधपूरना, मई–अगस्त 2014–	आदित्य वर्द्धनम	,,	45
12.	गधपूरना, नवम्बर 2019–	नीरज सिंह,	,,	27

पता– ग्राम– बनजरिया, पोस्ट– मुरार, जिला– बक्सर (बिहार) 802127

Email :- adityay330@gmail.com

M. 9798053312, 8789230750

adityay330@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 66–70

भारतेन्दु हरिश्चंद्र रचित 'भारत दुर्दशा' नाटक और नर्मद रचित 'तुलजी वैधव्यचित' नाटक में सम्प्रेषण कौशल

सिमरन कोठारी
शोधार्थी, श्री वनराज आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, धरमपुर।
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत।

प्रस्तावना :–

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य का अर्थ हैं स+हित अर्थात् सबके हित के लिए। इसी साहित्य के कई विधाये हैं। जो लिखित कहानी मंच पर अभिनय करने के लिए होता है, उसे नाटक कहते हैं। यह एक साहित्यिक विधा है। जो रचना श्रवण के साथ साथ दृष्टि से भी दर्शकों के ह्रदय में रसानुभूति कराती हैं, उसे नाटका कहते हैं। सम्प्रेषण का अर्थ हैं : अपने विचारों या संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना। सम्प्रेषण भेजने वाले और सम्प्रेषण प्राप्त करने वाले दोनों को समान लाभ प्राप्त होता हैं।

श्री भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का समय काल ६ सितम्बर १८५० से ६ जनवरी १८८५ तक का है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रथम रचनाकार माने गये हैं। इन्होंने कई अलग–अलग विधाओ में रचना की हैं। भारतेन्दु जी के प्रमुख नाटक है अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चंद्र, श्री चंद्रावली, नील देवी इत्यादि। भारतेन्दु युग को आधुनिक काल के गद्य का प्रवेश द्वार माना जाता हैं। श्री नर्मदशंकर आलशंकर का समय काल २४ अगस्त १८३३ से २६ फरवरी १६८६ का माना गया है। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में आधुनिक के आरंभिक अंश को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा दी जाती हैं, उसी प्रकार गुजराती में नवीन चेतना के प्रथम कालखण्ड को 'नर्मद युग' कहा जाता है। नर्मद युग गुजराती साहित्य के गद्य के प्रवेशद्वार है। नर्मद जी को गुजराती साहित्य के पिता कहा गया है। नर्मद अपने युग के समाज के क्रांतिकारी कवि हैं। नर्मद के प्रमुख नाटक है : सारशाकुंतल, रामजानकी दर्शन, द्रौपदी दर्शन, बालकृष्ण विजय, कृष्णकुमारी, तुलजी वैधव्याचित्र इत्यादि।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने सन् १८७५ में भारत दुर्दशा नाटक की रचना की थी। यह नाटक छः अंकों में विभाजित हैं। इस नाटक के घ्द्वारा भारतेन्दु जी ने समाज को जागृत करने का संकल्प किया था और नई वस्तु के रूप में देश प्रेम का भाव मुखर था। समाज को जागृत करने में नाटक की प्रमुख भूमिका है। नर्मदशंकर दवे जी में सन् १८६३ में तुलजी वैधव्याचित्र नाटक की रचना की थी। यह नाटक सीन अंको और बारह अंशों में विभाजित हैं। इस नाटक द्वारा नर्मद जी में विधवाओं की दुर्दशा और उनके ऊपर किए जाने वाले पापों के बारे

में लोगों को जागरूक करना चाहा हैं। विधवा के पुनर्विवाह शुरु करने का उद्देश्य इस नाटक द्वारा किया गया है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में यह सकते हैं कि साहित्यकार का साहित्य तभी सफल माना जाता है जब वे अपने विचारों और भावों का सम्प्रेषण सफलतापूर्वक दर्शकगण के हृदय तक पहुंचा सकता हैं। अतः बिना कोई दोराहे के हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु जी और नर्मद जी सम्प्रेषण कौशल में निपूर्ण हैं।

प्रस्तावना :-

साहित्य समाज का दर्पण है। Literature is the mirror of the Society. साहित्य का अर्थ हैं स+हित अर्थात सब के हित के लिए। इसी साहित्य के कई विधाये हैं। कुछ गद्य के रूप में तो कुछ पद्य के रूप में। गद्ध के विधाओं में प्रमुख स्थान उपन्यास के बाद नाटक का है। नाटक 'नट' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– सात्विक भावों का अभिनय। नाटक में श्रव्य काव्य से अधिक रमणीयता होती हैं। श्रव्य काव्य के होने के कारण यह लोक चेतना से अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। नाट्यशास्त्र में लोक चेतना के लेखन और मंचन की मूल प्रेरणा मानी गई हैं।

जो लिखित कहानी मंच पर अभिनय करने के लिए होता है, उसे नाटक कहते हैं। यह एक साहित्यिक विधा है। जो रचना श्रवण के साथ साथ दृष्टि से भी दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराती हैं, उसे नाटका कहते हैं।

नाटकों की रचना लगभग सभी भारतीय भाषाओं में हुई हैं। चाहे हिन्दी नाटक हो या बंगला नाटक हो, चाहे अंग्रेजी नाटक हो या गुजराती नाटक हो, सभी भाषाओं के नाटक अपने अपने क्षेत्र में सम्पूर्ण एवम् सर्वश्रेष्ठ हैं। इसी श्रृंखला में हिन्दी नाटक एवम् गुजराती नाटक साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान हैं।

सम्प्रेषण का अर्थ :-

सम्प्रेषण का अर्थ हैं : अपने विचारों या संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना। सम्प्रेषण भेजने वाले और सम्प्रेषण प्राप्त करने वाले दोनों को समान लाभ प्राप्त होता हैं। सम्प्रेषण क्रिया द्विपक्षीय एवम् बहुपक्षीय प्रक्रिया है। जॉन डी. वी. के अनुसार 'सम्प्रेषण अनुभवों के आदान–प्रदान की वह प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप दोनों सहभागियों में परस्पर लाभ के लिए परिवर्तन होता हैं। सम्प्रेषण के छः तत्व होते हैं। सम्प्रेषण में अनुक्रियात्मक, सहायक और बाधक तत्व शामिल है।'

जब नाटक का मंचन रंगमंच पर होता है, तब कथा को दृश्य एवम् श्रव्य माध्यम से दर्शकगण तक पहुँचाया जाता हैं। यह कथा का मंचन दर्शकगण के हृदय को छू जाता हैं, और तब नाटककार के सम्प्रेषण कौशल की अभव्यक्ति होती है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का परिचय :-

श्री भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का समय काल ६ सितम्बर १८५० से ६ जनवरी १८८५ तक का है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रथम रचनाकार माने गये हैं। इन्होंने कई अलग–अलग विधाओ में रचना की हैं। भारतेन्दु जी के प्रमुख नाटक है अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चंद्र, श्री चंद्रावली, नील देवी इत्यादि। हिन्दी नाटक का वास्तविक श्री गणेश भारतेन्दु युग से माना गया है।

भारतेन्दु युग को आधुनिक काल के गद्य का प्रवेश द्वार माना जाता हैं। हिन्दी नाटकों का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से ही होता है। भारतेन्दु हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के प्रवर्तक साहित्यकार हैं। भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों में देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दुर्दशा के प्रति गहरी पीड़ा थी और इस पीड़ा के मूल में था देश प्रेम, देश सेवा एवम् राष्ट्रभाव। भारतेन्दु जी ने काफी संख्या में मौलिक नाटक लिखे और बंग्ला तथा संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया हैं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के पीता माने गए हैं।

नर्मदशंकर दवे जी का परिचय :–

श्री नर्मदशंकर आलशंकर का समय काल २४ अगस्त १८३३ से २६ फरवरी १८८६ का माना गया है। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में आधुनिक के आरंभिक अंश को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा दी जाती हैं, उसी प्रकार गुजराती में नवीन चेतना के प्रथम कालखण्ड को 'नर्मद युग' कहा जाता है। नर्मद युग गुजराती साहित्य के गद्य के प्रवेशद्वार है। नर्मद जी को गुजराती साहित्य के पिता कहा गया है। गुजराती के प्रख्यात साहित्यकार मुंशी में नर्मद को 'अर्वाचीनों में आद्य' कहा है। नर्मद अपने युग के समाज के क्रांतिकारी कवि हैं। नर्मद के प्रमुख नाटक है : सारशाकुंतल, रामजानकी दर्शन, द्रौपदी दर्शन, बालकृष्ण विजय, कृष्णकुमारी, तुलजी वैधव्याचित्र इत्यादि।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र एवम् नर्मद दवे के नाटको में सम्प्रेषण, समहू प्रबन्ध, संगठन, नेतृत्व, समन्वय, सम प्रबंधन, कार्य निस्तारण, रणनीति, जोखिम प्रबंधन, अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा, नव–सृजन कौशलों की अभिव्यक्ति की गई हैं। इन विशेष कौशलों का चित्रण भारतेन्दु और नर्मद के नाटकों में देखने को मिलता है। उपर्युक्त विशेषताओं में से भारतेन्दु रचित भारत दुर्दशा एवम् नर्मद रचित तुलजी वैधवयाचित्र में सम्प्रेषण कौशल की अभिव्यक्ति निम्नलिखित परिच्छेदों में देखने को मिलता है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी रचित भारत दुर्दशा नाटक में सम्प्रेषण कौशल :–

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने सन् १८७५ में भारत दुर्दशा नाटक की रचना की थी। यह नाटक छः अंकों में विभाजित हैं। इस नाटक के द्वारा भारतेन्दु जी ने समाज को जागृत करने का संकल्प किया था और नई वस्तु के रूप में देश प्रेम का भाव मुखर था। समाज को जागृत करने में नाटक की प्रमुख भूमिका है। निराशा से आथा की और से जाने का कार्य भारतेन्दु जी ने नाटकों के माध्यम से किया हैं। भारत दुर्दशा नाटक में भारतेन्दु जी ने भारतवासियों से भारत की दुर्दशा पर रोने और फिर इस दुर्दशा का अन्त करने का प्रयास करने का आह्वान करते हैं। इस नाटक के माध्यम से युगीन समस्याओं को उजगार किया गया है और उसका समाधान निकला गया है। इस नाटक के द्वारा नाटककार ने दर्शकगण के सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वर्तमान लक्ष्यहीन पतन की ओर उन्मुख भारत का वर्णन किया है। यहाँ पर भारतेन्दु जी ने भारतवासियों तक देश प्रेम की भवना को पहुँचते हैं और अपने सम्प्रेषण कौशल की अभिव्यक्ति करते हैं।

नर्मदशंकर दवे जी रचित तुलजी वैधव्याचित्र नाटक में सम्प्रेषण कौशल :–

नर्मदशंकर दवे जी में सन् १८६३ में तुलजी वैधव्याचित्र नाटक की रचना की थी। यह नाटक सीन अंको और बारह अंशों में विभाजित हैं। इस नाटक द्वारा नर्मद जी में विधवाओं की दुर्दशा और उनके ऊपर किए जाने वाले पापों के बारे में लोगों को जागरूक करना चाहा हैं। विधवा के पुनर्विवाह शुरु करने का उद्देश्य इस नाटक द्वारा किया गया है। इस नाटक का कथानक विधवा विवाह की भविष्यवाणी हैं। यह सामाजिक नाटक है। समाज

में बाल विवाह, दुलहन बेचना, सती प्रथा, दहेज प्रथा और जबरन विवाह जैसी प्रथाएं प्रचलित थी । इन सभी बुराड़याँ को दूर करने का उद्देश्य इस नाटक में हैं। कवि विधवाओं के पुनर्विवाह में दृढ विश्वास रखते हैं। नर्मद ने विधवाओं के दुखों और युवा विधवाओं के ऊपर हुए पापी और बुराईयों का उजगार करने का प्रयास किया है। इस प्रकार नाटक की कथा में समाज सुधार की झलक का प्रदर्शन किया गया है। यहाँ विधवाओं की समस्या को उजागर कर उनके समाधान करना ही नर्मद का उद्देश्य हैं, और अपने सम्प्रेषण कौशल की अभिव्यक्ति करते हैं।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष के रूप में यह सकते हैं कि साहित्यकार का साहित्य तभी सफल माना जाता है जब वे अपने विचारों और भावों का सम्प्रेषण सफलतापूर्वक दर्शकगण के हृदय तक पहुंचा सकता हैं। अतः बिना कोई दोराहे के हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु जी और नर्मद जी सम्प्रेषण कौशल में निपूर्ण हैं। भारत दुर्दशा नाटक में नाटककार सोये हुए भारतवासी को देश प्रेम का संदेश देते हैं और तुलजी वैधवयाचित्र में नाटककार ने विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा दिया है। आज के २१वीं सदी के भारत में यह सारे नाटक कालजयी एवम् चिरंजीव हैं। साहित्य समाज का दर्पण है, और इसका उद्देश्य सबके हित के लिए होता है। नाटक 'नट' धातु से बना है, जिसका अर्थ है सात्विक भावों का अभिनय। नाटक श्रव्य और दृश्य माध्यमों से दर्शकों के हृदय में रसानुभूति कराता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850–1885) हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रथम रचनाकार माने जाते हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं : अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा, वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, सत्य हरिश्चंद्र, श्री चंद्रावली, नील देवी आदि। नर्मदशंकर दवे (1833–1886) गुजराती साहित्य के पिता कहे जाते हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं : सारशाकुंतल, रामजानकी दर्शन, द्रौपदी दर्शन, बालकृष्ण विजय, कृष्णकुमारी, तुलजी वैधव्याचित्र आदि। भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' और नर्मद के 'तुलजी वैधव्याचित्र' नाटकों में सम्प्रेषण कौशल की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

संदर्भ :–

संदर्भ में निम्नलिखित पुस्तकें और वेबसाइटें आपके अध्ययन के लिए सहायक हो सकती हैं :

पुस्तकें :–

1. 'भारतेंदु–नाटकावली' : इस पुस्तक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रमुख नाटकों का संग्रह है, जिसमें 'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा', 'सत्य हरिश्चन्द्र' आदि शामिल हैं।
2. 'नर्मदशंकर दवे की रचनाएँ' : इस पुस्तक में नर्मदशंकर दवे के नाटकों का संग्रह है, जिसमें 'सारशाकुंतल', 'रामजानकी दर्शन', 'द्रौपदी दर्शन' आदि शामिल हैं।

वेबसाइटें :–

1. विकिपीडिया पर 'भारतेंदु हरिश्चंद्र' : इस पृष्ठ पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन, कृतियों और योगदान के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है।
2. विकिस्रोत पर 'भारतेंदु–नाटकावली' : यहां आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों को ऑनलाइन पढ़ सकते हैं।
3. वेबदुनिया पर 'भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रमुख रचनाएँ' : इस लेख में उनकी प्रमुख रचनाओं की सूची और

विवरण प्रस्तुत है।

4. भारतकोश पर 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र' : यहां उनके जीवन और साहित्यिक योगदान के बारे में जानकारी मिलती है।

5. हिन्दवी पर 'भारतेंदु हरिश्चंद्र की संपूर्ण रचनाएँ' : इस वेबसाइट पर उनकी कविताओं और अन्य रचनाओं का संग्रह उपलब्ध है।

6. विकिपीडिया पर 'भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक' : इस श्रेणी में उनके नाटकों की सूची दी गई है।

7. फेसबुक पोस्ट 'गद्यकार–कवि नर्मद' : इस पोस्ट में नर्मदशंकर दवे के साहित्यिक योगदान पर चर्चा की गई है।

8. यूट्यूब वीडियो 'भारतेंदु हरिश्चंद्र की एक संक्षिप्त प्रोफाइल' : इस वीडियो में उनके जीवन और कार्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

शोध आलेख :–

1. हिन्दी नाटक का इतिहास।

2. 'कवि वचन सुधा' – भारतेन्दु हरिश्चंद्र की पत्रिका : यह पत्रिका भारतेन्दु जी के सम्प्रेषण कौशल और उनके साहित्यिक दृष्टिकोण को समझने में महत्वपूर्ण है।

3. भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की राष्ट्रवादी दृष्टि : यह आलेख भारतेन्दु जी की राष्ट्रवादी दृष्टि और उनके नाटकों में सम्प्रेषण कौशल की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालता है।

4. हिंदी नाटक एवं एकांकी : यह पाठ्यक्रम सामग्री हिन्दी नाटकों के अध्ययन और उनमें सम्प्रेषण कौशल के विकास पर केंद्रित है।

5. नाटक – विकिपीडिया : यह लेख नाटक की परिभाषा, इतिहास और विशेषताओं के साथ–साथ सम्प्रेषण कौशल के पहलुओं पर भी जानकारी प्रदान करता है।

इन स्रोतों के अध्ययन से शोध आलेख में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और नर्मदशंकर दवे के नाटकों में सम्प्रेषण कौशल की अभिव्यक्ति को और गहराई से समझ सकेंगे।

पता :
सिमरन कोठारी, शोधार्थी
105, Astha Apartment Halar Road, Valsad-396001, Gujarat
Email Id: simrankothari29@gmail.com
Mobile No. 8306858684

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 71-75

वृद्ध मनोभाव का स्वरूप

उमाकान्त
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़, झारखंड।

वृद्ध मनोभाव व्यक्ति के जीवन के उस चरण का वर्णन करता है जब वह वृद्धावस्था में प्रवेश करता है और उम्र बढ़ने के साथ आने वाले शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक परिवर्तनों का अनुभव करता है। यह अवस्था केवल जैविक या शारीरिक परिवर्तनों का परिणाम नहीं है, बल्कि इसके साथ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलुओं का गहरा प्रभाव होता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति की मानसिकता और दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है, जो उसके व्यक्तिगत अनुभवों, सामाजिक स्थिति, पारिवारिक संबंधों और स्वास्थ्य की स्थिति पर निर्भर करता है।

वृद्धावस्था जीवन का वह चरण है जब व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर होने लगता है। इस अवस्था में व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन सबका प्रभाव व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर पड़ता है, जिसे वृद्ध मनोभाव कहा जाता है।

वृद्धावस्था के कारण और लक्षण :-

वृद्धावस्था में प्रवेश के साथ व्यक्ति के जीवन में निम्नलिखित परिवर्तन देखे जा सकते हैं :

1. **शारीरिक परिवर्तन :**
   - त्वचा की लोच में कमी और झुर्रियों का आना।
   - दृष्टि, श्रवण और शारीरिक सहनशक्ति में कमी।
   - मांसपेशियों और हड्डियों की शक्ति में कमी।
   - रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना।
2. **मानसिक परिवर्तन :**
   - स्मरण शक्ति और एकाग्रता में कमी।
   - निर्णय लेने की क्षमता का घट जाना।
   - मानसिक थकावट और अवसाद की प्रवृत्ति।
3. **भावनात्मक परिवर्तन :**
   - अकेलेपन की भावना।
   - परित्यक्त होने का डर।
   - अपने योगदान और अस्तित्व को लेकर असुरक्षा।

4. सामाजिक परिवर्तन :

- सामाजिक भूमिका का सीमित होना।
- पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में बदलाव।
- रिटायरमेंट के बाद की पहचान का संघर्ष।

वृद्ध मनोभाव के प्रकार :–

वृद्ध मनोभाव विभिन्न प्रकार के होते हैं, जो व्यक्ति के अनुभवों, पारिवारिक स्थितिऔर सामाजिक परिवेश पर निर्भर करते हैं। निम्नलिखित प्रकारों पर विस्तार से चर्चा की गई है :

1. सकारात्मक वृद्ध मनोभाव :

यह मनोभाव तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति वृद्धावस्था को एक नए अवसर के रूप में देखता है। इस प्रकार के मनोभाव में व्यक्ति :

- अपनी उपलब्धियों पर गर्व करता है।
- वर्तमान जीवन का आनंद लेने पर ध्यान केंद्रित करता है।
- दूसरों की सहायता करने और ज्ञान साझा करने में रुचि रखता है।

2. नकारात्मक वृद्ध मनोभाव :

- इस प्रकार के मनोभाव में व्यक्ति अपनी उम्र बढ़ने से असंतुष्ट रहता है।
- उसे अपनी क्षमताओं में कमी का आभास होता है।
- वह अक्सर अकेलापन, उदासी, और निराशा महसूस करता है।

3. आध्यात्मिक वृद्ध मनोभाव :

- वृद्धावस्था में व्यक्ति जीवन और मृत्यु के गहन अर्थ को समझने की कोशिश करता है।
- धार्मिक और आध्यात्मिक गतिविधियों में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेता है।
- आत्मनिरीक्षण और मानसिक शांति की खोज करता है।

4. निर्भर वृद्ध मनोभाव :

- यह मनोभाव तब देखने को मिलता है जब व्यक्ति अपनी दैनिक जरूरतों के लिए दूसरों पर निर्भर हो जाता है।
- इस स्थिति में व्यक्ति स्वयं को असहाय और कमजोर महसूस कर सकता है।

5. स्वतंत्र वृद्ध मनोभाव :

- कुछ वृद्ध व्यक्ति स्वतंत्र और आत्मनिर्भर रहना पसंद करते हैं।
- वे अपनी जिम्मेदारियों को स्वयं संभालने का प्रयास करते हैं।
- अपने अनुभवों और आत्मविश्वास के माध्यम से समस्याओं का समाधान करते हैं।

6. सामाजिक वृद्ध मनोभाव :

- इस प्रकार के मनोभाव में व्यक्ति सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित रहता है।
- वह नए रिश्ते बनाने और पुरानी मित्रताओं को बनाए रखने की कोशिश करता है।

वृद्ध मनोभाव को प्रभावित करने वाले कारक :–

वृद्ध मनोभाव को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं, जो जैविक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक हो सकते हैं। इनमें प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं :

1. **स्वास्थ्य की स्थिति :**
   - शारीरिक स्वास्थ्य का वृद्ध मनोभाव पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
   - पुरानी बीमारियां, जैसे हृदय रोग, मधुमेह, और गठिया, मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती हैं।
   - शारीरिक अक्षमता और व्याधियां आत्मनिर्भरता में कमी ला सकती हैं।
2. **पारिवारिक संबंध :**
   - परिवार के साथ मधुर संबंध वृद्धजनों को भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करते हैं।
   - परिवार में उपेक्षा या कलह वृद्ध मनोभाव को नकारात्मक बना सकती है।
   - नाती–पोतों और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ समय बिताने से वृद्धजनों को सुखद अनुभूति होती है।
3. **आर्थिक स्थिति :**
   - आर्थिक निर्भरता वृद्धजनों में असुरक्षा की भावना उत्पन्न कर सकती है।
   - पर्याप्त वित्तीय संसाधन वृद्धावस्था को अधिक सहज और संतोषजनक बना सकते हैं।
   - पेंशन या अन्य आर्थिक सहायता योजनाएं वृद्धजनों को आत्मनिर्भर बना सकती हैं।
4. **सामाजिक समर्थन :**
   - सामाजिक गतिविधियों और समूहों में भागीदारी वृद्ध मनोभाव को सकारात्मक दिशा में प्रभावित करती है।
   - समाज से अलगाव और अकेलापन वृद्धजनों में नकारात्मक भावनाओं को जन्म दे सकता है।
   - सामुदायिक कार्यक्रम और वृद्धाश्रम सहयोग और समर्थन का एक मजबूत माध्यम हो सकते हैं।
5. **मनोवैज्ञानिक कारक :**
   - व्यक्ति का स्वभाव, आत्म–सम्मान, और आत्म–विश्वास वृद्ध मनोभाव को प्रभावित करते हैं।
   - सकारात्मक सोच और जीवन के प्रति उत्साह वृद्धावस्था को सुखद बना सकते हैं।
   - मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं, जैसे अवसाद और चिंता, वृद्ध मनोभाव को प्रभावित कर सकती हैं।
6. **सांस्कृतिक और धार्मिक कारक :**
   - सांस्कृतिक मान्यताओं और परंपराओं का वृद्धजनों के मनोभाव पर गहरा प्रभाव होता है।
   - धार्मिक और आध्यात्मिक गतिविधियों में भागीदारी उन्हें मानसिक शांति प्रदान करती है।
   - मृत्यु और परलोक से संबंधित विचार वृद्धजनों के भावनात्मक संतुलन को प्रभावित कर सकते हैं।

विभिन्न संस्कृतियों में वृद्ध मनोभाव :–

विभिन्न संस्कृतियों में वृद्धजनों के प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार अलग–अलग होते हैं। यह उनके मनोभाव

को गहराई से प्रभावित करता है।

1. **भारतीय संस्कृति :**

   – भारतीय समाज में वृद्धजनों को ज्ञान और अनुभव के प्रतीक के रूप में सम्मानित किया जाता है।
   – संयुक्त परिवार प्रणाली वृद्धजनों को सुरक्षा और भावनात्मक समर्थन प्रदान करती है।
   – धार्मिक और आध्यात्मिक गतिविधियों में वृद्धजनों की सक्रिय भागीदारी देखी जाती है।

2. **पश्चिमी संस्कृति :**

   – पश्चिमी समाज में वृद्धजनों को अधिक स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता की ओर प्रेरित किया जाता है।
   – वृद्धाश्रम और सामुदायिक देखभाल केंद्रों की प्रमुखता है।
   – व्यक्तिगत स्वतंत्रता और गोपनीयता पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

3. **एशियाई संस्कृति :**

   – एशियाई समाजों में वृद्धजनों का परिवार में केंद्रीय स्थान होता है।
   – पारिवारिक सम्मान और उनकी देखभाल को प्राथमिकता दी जाती है।
   – वृद्धजनों के अनुभवों को परिवार के युवा सदस्यों के मार्गदर्शन के लिए उपयोग किया जाता है।

4. **अफ्रीकी संस्कृति :**

   – अफ्रीकी समाजों में वृद्धजनों को सामुदायिक संरक्षक और परंपराओं के संरक्षक के रूप में देखा जाता है।
   – उन्हें सामुदायिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिलता है।
   – वृद्धजनों का सम्मान करना सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा है।

5. **आधुनिक शहरी संस्कृति :**

   – तेजी से बदलती शहरी संस्कृति में वृद्धजनों के लिए चुनौतियां बढ़ रही हैं।
   – एकल परिवारों के बढ़ते चलन से वृद्धजनों का अकेलापन बढ़ा है।
   – आधुनिक समाज में डिजिटल तकनीक और नई आदतों के साथ समायोजन एक प्रमुख चुनौती बन गया है।

वृद्धावस्था में धार्मिक विश्वासों का महत्व :–

धार्मिक विश्वास वृद्धावस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह विश्वास न केवल मानसिक शांति और आत्मसंतोष प्रदान करते हैं, बल्कि व्यक्ति को जीवन के कठिन समय का सामना करने की शक्ति भी देते हैं। धार्मिक विश्वासों के निम्नलिखित पहलू वृद्धावस्था में विशेष महत्व रखते हैं :

1. **आत्मिक शांति :**

   – धार्मिक गतिविधियों और प्रार्थना से वृद्धजनों को आंतरिक शांति मिलती है।
   – यह उनकी चिंताओं और तनाव को कम करने में सहायक होता है।

2. मृत्यु का भय कम करना :

वृद्धावस्था में मृत्यु का विचार अक्सर मानसिक तनाव का कारण बनता है। धार्मिक विश्वास मृत्यु के बाद के जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

3. सामाजिक समर्थन :

– धार्मिक समुदाय वृद्धजनों को सामाजिक संबंध बनाए रखने का अवसर प्रदान करते हैं।

– मंदिर, मस्जिद, चर्च और अन्य धार्मिक स्थानों पर जाना उनके सामाजिक जीवन को सक्रिय बनाए रखता है।

4. आत्मसंतुष्टि :

– धार्मिक विश्वास वृद्धजनों को यह विश्वास दिलाते हैं कि उनका जीवन सार्थक है।

– उन्हें लगता है कि वे अपने कर्तव्यों और धर्म का पालन कर रहे हैं।

5. जीवन में उद्देश्य :

– धार्मिक गतिविधियों और सेवा कार्यों में भागीदारी से वृद्धजनों को जीवन में उद्देश्य का अनुभव होता है।

– यह उनकी मानसिक और शारीरिक सक्रियता को बनाए रखता है।

6. पारिवारिक संबंधों को मजबूत करना :

– धार्मिक गतिविधियों में परिवार के अन्य सदस्यों के साथ समय बिताने का अवसर मिलता है।

– इससे परिवार में एकता और संबंधों में मधुरता आती है।

निष्कर्ष :-

वृद्धावस्था में धार्मिक विश्वासों का महत्व न केवल आत्मिक शांति और मानसिक संतुलन बनाए रखने में है, बल्कि यह सामाजिक और पारिवारिक संबंधों को भी मजबूत करता है। धार्मिक विश्वास वृद्धजनों को जीवन की चुनौतियों का सामना करने का आत्मविश्वास प्रदान करते हैं और उनके जीवन को सार्थक बनाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नेगी, डॉ. सूरज सिंह, सांध्य पथिक, इंडिया नेटबुक्स, नोएडा, 2022
2. खेतान, प्रभा, पीली आंधी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. गणपत, प्रसाद, देवयानी, हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली।
4. गद्दी, इलियास अहमद, फायर एरिया, साहित्य सदन, दिल्ली।
5. प्रसाद, चंद्रमौलेश्वर, वृद्धावस्था, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, 2016
6. सिंह, अरुण कुमार और आशीष कुमार सिंह, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, प्रभात प्रकाशन, 2005 (चतुर्थ संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)
7. सागरिका, वृद्धावस्था विमर्श और हिंदी कहानी, शुभाशंसा प्रकाशन, 2017

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 76-83

धर्मवीर भारती के काव्य में युगबोध एवं यथार्थवादी दृष्टि

निशिम नागर, शोधार्थी : पीएच.डी.(हिंदी)
डॉ. शिवचरण शर्मा, शोध निर्देशक
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

शोध सारांश :–

मानव अपने स्वभाव और आसपास की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करता रहा है। इन विषम परिस्थितियों में मनुष्य के लिए आवश्यक है संतुलित विकास। भारतीय इतिहास में जीवन का संतुलित विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। व्यंग्य समाज की कुरीतियों पर कड़ा प्रहार करके युगो से सुधार का कार्य करता रहा है। सामाजिक बुराइयों सांप्रदायिक भेदभाव राजनैतिक भ्रष्टाचार आर्थिक शोषण आदि को उजागर करने में व्यंग्य अहम भूमिका निभाता है। कवि मानव जीवन की विभीषिकाओं कुरीतियों आदि को अपनी कविता के माध्यम से वर्णन करके पाठ को तक पहुंचाने का कार्य करता है तथा अपने काव्य में व्यंग्य द्वारा सीधे पाठकों को प्रभावित करता है। भारती के कवि ने जागरूक नागरिक तथा समाज सुधारक की तरह अपने परिवेश बोध के द्वारा अभिव्यक्ति दी है। भारती का कवि शोषण दासता की जंजीरों का भली–भांति अर्थ समझता है, जिसका आपने काव्य में यथार्थवादी दृष्टि से वर्णन किया है।

मूल शब्द :– यथार्थवादी दृष्टि, आर्थिक शोषण, बोद्धिक और वैज्ञानिक परिवेश, जटिल स्थिति।

प्रस्तावना :–

भारती मूलतः प्रणय के कवि है, उनका कवि हृदय मांसल उपभोग का समर्थक रहा है, किंतु उनकी रचनाओं में जटिल स्थितियों को समझने या जी सकने की जो अनवरत कोशिश है वह कहीं भी रचना प्रक्रिया के लिए अनिवार्य है प्रकृति गत मांगों की उपेक्षा नहीं करती।'' कवि भारती ने यथार्थवादी दृष्टि से चिंतन प्रधान कविताएं लिखी तथा उनमें जीवन के इस संदर्भ को व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। बौद्धिक और वैज्ञानिक परिवेश में पुली पुली नई कविता में केवल भावुकता से ओत–प्रोत नहीं है बल्कि कवि ने यथार्थ आस्तिकता, नास्तिकता तथा निराकार परमेश्वर के अस्तित्व पर कई प्रश्न चिन्ह उपस्थित किए हैं।

''तुम चलते हो बिना चरण
सुनते हो बिना श्रवण
देखते हो बिना नयन
ढूंढते हैं तुमको
सब संत और साधक जन
पाकर ले आते तुम्हें

मेले में ठेले से
हॉट मे नूमाइशो में
तंबू गाड़ करते हैं
तुम्हारा प्रदर्शन
भोंपू पर कहते हैं
एक है अजूबा।''[1]

इस प्रकार उपयुक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि ने अंधी आस्तिकता का रोजगार करने वालों तथा उन पर विश्वास करने वाले आंखों के अंधो की विडंबना को अभिव्यक्ति दी है। स्वार्थी प्रवृत्ति के लोग तमाम सुख–सुविधाओं का उपभोग तो करते हैं लेकिन स्वयं संघर्ष नहीं करना चाहते और ना ही संघर्ष को समर्थन देते हैं। भारती के कवि ने आज की नागरिकता पर सार्थक व्यंग्य किया है कि :–

''अग्नि नहीं थी जब
तब हमने नहीं कहा
कि जाओ अग्नि लाओ तुम
और अग्नि जब आई
हमने नहीं कहा कि अग्नि नहीं
लेंगे हम।'' [2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की राजनीति व्यस्त हो गई। नेताओं का कार्य जनकल्याण का नौकर केवल भ्रष्टाचार करना और अपनी कुर्सी को सुरक्षित रखने के लिए दूसरों से लिखवाए गए भाषणों को जनता के सामने पढ़ना सहायता के नाम पर उनका आर्थिक शोषण करना रह गया। नेता अगर इस प्रकार का समाज सुधार करते रहेंगे तो देश की प्रगति कैसे होगी? भारती का कवि नेताओं की इस स्वार्थी प्रवृत्ति से चिंतित है तथा इस बीमारी को जड़ से नष्ट करने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय से अपील करता है कि :–

''वे जो उन्माद ग्रस्त रोगी से
मंचों पर जाकर चिल्लाते हैं
बकते हैं
भीड़ में भटकते हैं
वात पित्त कफ के बाद
चौथे दोष अहम से पीड़ित है
बस्ती बस्ती में
नए अहम के अस्पताल खुलवाओ
वे सब बीमार है
डरो मत तरस खाओ।,'[3]

सदियों से भारत को विदेशों से संघर्ष करना पड़ा है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन योजनाओं तथा संधियों के माध्यम से एक–दूसरे पर राज करना चाहते हैं। कभी व्यापार करने

के जरिए तथा कभी संस्कृति का आदान प्रदान करने के माध्यम से गुलाब बनाने का सरल तरीका है। का एकमात्र उद्देश्य है भारत पर राज करना। कवि भारती ने नए ढंग से भारत को गुलामी पेश करने वाले विदेशियों पर व्यंग्य करते हुए कहा है।

''ढंग है नया
लेकिन बात यह पुरानी है
घोड़ों पर रखकर या थैली में भरकर
या रोटी से ढक कर या फिल्मों में रंग कर
वे जजीरे केवल जंजीरे ही लाए हैं
और भी पहले वे कई बार आए हैं।''[4]

भारती कवि ने पौराणिक चरित्रों संस्कृति के माध्यम से आधुनिक मानव की विसंगतियों पर मार्मिक ढंग से व्यंग्य किया है। कवि ने बाणभट्ट के माध्यम से समसामयिक परिस्थितियों, विघटित जीवन मूल्य तथा आधुनिक मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति धन लोलुपता पर तीखा व्यंग्य किया है :—

''सत्य है राजा हर्षवर्धन के
हाथों से मिला हुआ
पान का सुगंधित एक लघु बीड़ा
चाहे वह जूठा हो
यह पर उस पर लगा हुआ वर्क दार
सोना था। ''[5]

कवि भारती ने अपने कर्तव्य एवं संघर्ष से विमुख होते हुए आधुनिक मानव का व्यंग्य के माध्यम से वर्णन किया है कि किस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने स्वार्थ के कारण धोखा देता है। तथा उसे अपनी वास्तविकता को छुपाए रखता है :—

'' मैं जुहू नृपति विराट का
विश्वस्त दास
नृत्य गीत कविताओं कलाओं
का ज्ञाता
किंतु हरदम भया क्रांत
मेरा अज्ञातवास खुल न जाए। ''[6]

भारती ने वर्णन किया है कि अज्ञातवास के भय से किस प्रकार अर्जुन की शक्ति कायरता में बदल गई थी। अर्जुन का गांडीव धनुष शाखा पर लगा रहा और वह विश्वास दास बने रहे ठीक यही स्थिति आज के बुद्धिजीवियों एवं कवियों की है जो अपनी प्रसिद्धि की आकांक्षा रखते हुए मूर्खों से गिरे रहते हैं। इतना ही नहीं राजनीतिक स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। भारती ने वर्णन किया है कि :—

''व्यास यह लिखेंगे कि
अन्याय दुर्योधन ने जब हमला बोला था

विराट नगरी पर
मैंने भी प्रदर्शित किया था शौर्य
कैसा लगेगा तुम्हें
तब तुम यह जानोगे
कि यह तो लिख आया था मैंने ही
पावों पड़ पड़ बूढ़े व्यास के।'' [7]

वर्तमान समाज में सत्य को कितना महत्व है? अथवा नई पीढ़ी के लिए सत्य की क्या उपयोगिता है? सत्य की अपेक्षा झूठे युद्ध में विश्वास करने वाले तथा धोखे से जीतकर अभिमान करने वाली नई पीढ़ी पर कवि भारती ने व्यंग्य किया है :–

''दो हमको फिर झूठे युद्ध
दो हमको फिर झूठे ध्येय
हारेगें फिर यह है तय
फिर उसको मानेंगे हम प्रभु की हार
अपने को मानेंगे फिर अपराजेय।'' [8]

शासन करने के लिए एक–दूसरे देश आपस में युद्ध करते हैं। देश की संस्कृति राख हो चुकी है प्रहरी आंख बंद करके तथा विवेक शुद्ध होकर आदेशों का पालन करते हैं। देश जीत का दावा करता है। लेकिन भारती कवि ने वर्णित किया है कि बाहर से जीता राष्ट्र अंदर से इतना खोखला होता है कि उनके पास सब कुछ रक्षित करने के बाद कुछ नहीं बचता। कवि का कहना है कि यह युद्ध क्यों? क्या वैज्ञानिक शक्तियां वन का बोझ हल्का कर सकती है? हिंसा के द्वारा क्या कभी अपने व परायों को जीता जा सकता है?

'' भाले हमारे ये
ढाले हमारी ये
निरर्थक पड़ी रही
अंगों पर बोझ बनी
रक्षक थे हम केवल
लेकिन आरक्षण है कुछ भी नहीं था।''[9]

हिंसा के द्वारा कभी जीत हासिल नहीं की जा सकती। हिंसा हमेशा अंधी होती है। जिस प्रकार महाभारत का युद्ध भी अंधा था। उसी प्रकार यदि दो राष्ट्र अपनी मर्यादा छोड़कर युद्ध करते हैं तो वह अपने अहम में इतने अंधे हो जाते हैं कि उन्हें सत्ता एवं शासन के अलावा कुछ दिखाई नहीं देता।

'' देखेंगे कैसे वे
अंधे है
कुछ भी क्या देख सके
अब तक
वे ? ''

आधुनिक समय में शासन तंत्र की अराजकता फैली हुई है। कवि इस व्यवस्था से अत्यंत क्षुब्ध है तथा इस अराजकता पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि :–

''हम जैसे पहले थे वैसे अभी है
शासक बदले
स्थितियां बिलकुल वैसी है
इससे तो पहले के ही शासक अच्छे थे
अंधे थे
लेकिन वे शासन तो करते थे।''[10]

अंत में कवि स्पष्ट करना चाहता है कि आगे आने वाली हर शासन व्यवस्था पिछली शासन व्यवस्था से हीन होती जा रही है। क्योंकि नया बना शासक अपने कर्तव्यों का निर्वाह न करके पिछली शासन व्यवस्था में कमियां निकाल कर दोषारोपण करता है तथा अपनी कुर्सी को संभालते हुए स्वयं के स्वार्थों को ही पूरा करता है। कवि ने अंधा युग के माध्यम से आधुनिक शासन व्यवस्था की समस्या को व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति दी है।

''पर वह संसार
स्वत है मेरे अंधेपन से उपजा था
मैंने अपने व्यक्तिक संवेदन से जो जाना था
गौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे
वे थे अंतिम सत्य।''[11]

इस प्रकार कवि भारती ने अंधा युग के प्रहरीयों की व्यक्तिक पीड़ा नहीं है अपितु आधुनिक स्वतंत्र देश के प्रत्येक व्यक्ति की पीड़ा है। अंधा युग में सक्रांति युगीन तिथियों पर व्यंग्य करता हुआ कवि कहता है। ''इसके अंतराल में व्यंग्य की अंतर ध्वनि धारा प्रवाहित है। जिसके माध्यम से इसमें आगत मूल्यों का आभास मिलता है। किस प्रकार भारती ने अपने संपूर्ण काव्य में आज की विसंगतियों के विघटन को अभिव्यक्ति दी है। भारती की रचनाओं में चिंतनशीलता के साथ–साथ प्रेम संबंधों बेबी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। यह प्रेम संबंध बिछड़ने की स्थिति आने से अधिक मार्मिक बन गई है। कवि की प्रिया का हृदय इतना कोमल है कि वह पत्र में लिखे ह्रास को भी सह नहीं पाती। कवि ने कोमलता के साथ हृदय की कठोरता को व्यंग्य द्वारा व्यक्त किया है।

''अरे पर जाने क्या क्या आज
भूल लिख गया तुम्हारे पास
मृदुल तुम किसलिय सी अनमोल
न सह पाओगी मेरा ह्रास।'

युगीन परिस्थितियों वास्तविकताओं के सामने प्रेम का कोई मूल्य नहीं रह जाता। कवि ने कनुप्रिया में राधा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है जब राधा श्रीकृष्ण के युद्धायोजन पर व्यंग्य करती है।

''क्या यह सब सार्थक है?
चारों दिशाओं से उत्तर को
उड़ कर जाते हुए

गिद्धों को क्या तुम बुलाते हो?

(जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायों को)?''[12]

कवि ने एक ग्रुप प्रिया के माध्यम से कृष्ण के युद्ध में इतिहास निर्माण की अनुमति घटनाओं पर राधा के माध्यम से तीखा व्यंग्य किया है कि :–

''कर्म स्वधर्म निर्णय दायित्व

मैंने भी गली–गली सूर्य है यह शब्द

अर्जुन ने इनमें चाहे कुछ भी पाया हो

मैं इन्हें सुनकर कुछ भी नहीं पाती प्रिय।''[13]

इस प्रकार इन पंक्तियों में राधा का कनु से यह प्रश्न करना की सार्थकता क्या है? तथा दूसरी पंक्ति का गली गली व्यंग्य की ऐसी सटीक अभिव्यक्ति करते हैं जिसकी अंर्तध्वनी बहुत दूर तक सुनाई देती है। इस प्रकार भारती कवि ने कनुप्रिया में राधा की भोली भावुक एवं सहज स्थिति के माध्यम से तीखे चुटीले एवं सशक्त व्यंग्य किये है।– ''यह आधुनिक मनुष्य की बहिर्मुखी प्रवृत्ति पर व्यंग्य है। जिसके कारण वह आतम प्रवचना का शिकार हो रहा है।'' भारती कवि ने वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक स्थिति एवं सत्ता के दुरुपयोग पर बड़े ही तीखे मार्मिक व्यंग किए हैं। पुराणिक प्रतीकों के माध्यम से कवि ने अपने व्यंग्यों को इतना सशक्त बना दिया है कि पाठक पढ़कर सोचने तथा उसमें सुधार करने के लिए प्रेरित होता है। यही भारती के काव्य का मूल उद्देश्य है कि वह अपने काव्य के माध्यम से इन दूषित स्थितियों में सुधार कर सके। भारती की कविताओं में व्यंग्य एक उपकरण के माध्यम से प्रयुक्त हुआ है। जैसे युग की कुंठा घुटन उत्साह आचरण हीनता। प्राचीन प्रसिद्ध कथानक एवं चरित्रों के माध्यम से वर्तमान दूषित स्थितियों विडंबना कुरीतियों पर ऐसे मार्मिक करुणा किए हैं जिसमें हास्य लेश मात्र भी नहीं है। कवि ने यथार्थ के धरातल पर उतर कर व्यंग्य प्रधान रचनाओं को अभिव्यक्ति दी है। जिन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि ने स्वयं इन युगीन विषमताओं को जिया है। इस प्रकार भारती कवि की व्यंग्य प्रधान रचनाएं उनकी संवेदनशीलता एवं यथार्थता का परिचय देती है।

भारती की कविता के महत्व को बताती हैं कि जीवन का प्रतिक्षण महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार सागर की लहरों से उतरी प्रत्येक बूंद सूर्य की लालिमा क्षण भर के लिए अनुरंजित हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य के अस्तित्व का प्रत्येक छोटे से छोटा क्षण महत्वपूर्ण होता है। अनुभूति का स्तर जीवन की छोटी–छोटी अनुभूति और उसमें निहित सत्य के प्रति जागरूक रहने की प्रेरणा देता है।

भारती की कविता में बोध का विकास हुआ है। कवि ने प्रत्येक क्षण को महत्व दिया है। ''मनुष्य क्षणों की पृथकता में उन सभी को अपनाता है जो ग्राह्य भी हैं और अग्राह्य भी। परिणाम यह होता है कि वह प्रत्येक क्षण को भोगने के लिए लालायित रहता है। वह मानता है कि यह क्षण जिस रूप में सामने हैं दोबारा उसी रूप में सामने नहीं आ सकता। व्यक्ति की यही भावना उसे क्षणवा दी करार दे देती है। बुद्ध दर्शन का क्षणीकवाद भी यही कहता है। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु आनित्य और क्षणभंगुर है। इसी आधार पर कोई भी दो क्षण एक जैसे नहीं होते। यह क्षणवादी भावना वर्तमान को समग्रता से जीने की भावना के निकट है।'' इस प्रकार क्षण वादी विचारधारा के अनुसार क्षण जिंदगी का एक महत्वपूर्ण अंग है जो व्यक्ति को सुख एवं तृप्ति प्रदान करता है। भारती की कविताओं में शरद को गहराई के साथ देख सकते हैं। सौंदर्यवादी विचारधारा कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित करती है। भारती कवि ने सृजन के क्षण को विघटन के क्षण से

बिल्कुल अलग माना है। एक स्थान पर कवि भारती लिखते हैं कि–''वे ही क्षण अर्थवान है आत्म उपलब्धि के क्षण है। आत्म उपलब्धि के क्योंकि उसी में हम अपने को पाते हैं–अर्थात अर्थहीन शून्यता या अयथार्थ मुलक अस्तित्व से युक्त होकर अपने को सार्थक पाते हैं।' इस प्रकार भारती कवि ने अपनी समस्त रचना में क्षण की मेहता को प्रतिपादित किया है। उन्होंने कनुप्रिया कि राधा के माध्यम से ऐसे आधुनिक व्यक्ति के प्रति अपना आग्रह प्रकट किया है, जिसमें रोमांटिक बोध की अपेक्षा अस्तित्व बौद्ध को अधिक महत्व दिया है।

कनुप्रिया धर्मवीर भारती ने राधा के माध्यम से नारी के अंतर्मन की एक–एक परत खोलकर देखी है। इस रचना में धर्मवीर भारती ने नारी के मन की संवेदनाओं और प्यार के नैसर्गिक सौंदर्य का अप्रीतम चित्रण है। कवि भारती ने जिन दिनों कनुप्रिया की रचना कि उन दिनों वह विशेष प्रकार के चिंतनीय दायित्व बोध में लीन था।–''फ्रिज अंकेक्षण को हम एक संगति एक अर्थ एक कर्म प्रदान करते हैं। झूठी शाश्वतता और निश्चय आत्मकथा के अंधविश्वास पूर्ण क्षणों का तिरस्कार कर हम मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा और मानव मूल्यों की खोज और उन्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया द्वारा क्षण को अर्थवान बनाते हैं।'' कवि कनुप्रिया की राधा के प्रश्न के क्षण बोध को अभिव्यक्ति देते हुए कहता है कि :–

''अर्जुन की तरह कभी
मुझे भी समझा दो
सार्थकता है क्या बंधु
मान लो मेरी तन मेहता के गहरे क्षण
रंगे हुए अर्थहीन आकर्षक शब्द थे
तो सार्थक फिर क्या है कनु?''[14]

निष्कर्ष :–

भारती की रचनाओं में क्षण बोध को गहराई के साथ देखा जा सकता है। इन्होंने सृजन के क्षण को रिक्त था विघटन विच्छिन्नता के क्षण से बिल्कुल पृथक माना है। नई कविता में व्याप्त क्षणवादी भावनाओं के दो परिणाम है एक वर्तमान के प्रति ममत्व और दूसरी भोग वादी प्रवृत्ति। यहां भारती ने कनुप्रिया राधा के समय अचूक धनुर्धर से तब तक प्रतीक्षित रहने के लिए कहती है जब तक वह है अपने लक्ष्य को भेद न दे। कवि को केवल भोग बाद में ही नहीं अपितु पीड़ा दर्द चिंतन के हर क्षण के प्रति गहरा लगाव है। कवि अपने दिए गए हर लमहे जो एकांत में बीते तथा जिसमें कवि का ह्दय किसी की प्रतीक्षा में व्याकुल रहा उसका भी जीवन में विशेष महत्व माना है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय की रचनाओं में क्षण बोध को गहराई के साथ देखा जा सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षण का महत्व है और प्रत्येक छोटे से छोटे क्षण को उसकी समग्रता में अनुभूत करते चलना समसाम यिकता का पहला संदर्भ है। अनुभूति का आधुनिक स्तर जीवन की छोटी–छोटी अनुभूतियों और उनमें निहित सत्य के प्रति जागरूक रहने की बात कहता है।

नई कविता में शोध का विकास भी अस्तित्ववादी दर्शन के परिपार्शव में हुआ है। इस दर्शन के आधार पर प्रत्येक क्षण की स्वतंत्र सत्ता है। कवि का मानना है कि क्षणवादी विचारधारा के अनुसार जिंदगी का एक क्षण जो व्यक्ति को सुख एवं तृप्ति प्रदान करता है वह से सारे जीवन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वह अपने में इतना पूर्ण समग्र वह संतुष्टि देने वाला है कि उसे भोग लेने के बाद और भी अधिक आशा रखना मूर्खता है। यही क्षण वादी विचारधारा कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित करती है।

संदर्भ सूची :-

1. रघुवंश साहित्य का नया परिपेक्ष्य, पृष्ठ 187
2. धर्मवीर भारती, ठंडा लोहा, पृष्ठ 37
3. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, पृष्ठ 68
4. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, पृष्ठ 70
5. सिद्धेश्वर प्रसाद छायावादोत्तर काव्य, पृष्ठ 238
6. हरिचरण शर्मा, नई कविता नई धरातल, पृष्ठ 134
7. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ 35
8. धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृष्ठ 9
9. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, पृष्ठ 6
10. हुकुमचंद राजपाल कृति और मूल्यांकन, पृष्ठ 45
11. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ 35
12. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, पृष्ठ 69
13. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, पृष्ठ 54
14. धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृष्ठ 25
15. डॉ. यश गुलाटी, हिंदी के श्रेष्ठ कार्यों का मूल्यांकन, पृष्ठ 716

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 84-89

माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाओं में नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का अध्ययन

डॉ. विष्णु कुमार
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं।

शोध सांराश :-

इस शोध अध्ययन के आधार पर शोधार्थी ने यह निष्कर्ष निकाला शहरी क्षेत्र के सरकारी विद्यालय के अध्यापक व अध्यापिका एवं शहरी क्षेत्र के निजी विद्यालय के अध्यापक एवं अध्यापिका के मध्य नैतिक मूल्यों को विकसित करने में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है, और चारित्रिक मूल्यों को विकसित करने में भी कोई सार्थक अंतर नहीं देखा गया है। ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी विद्यालय के अध्यापक व अध्यापिका एवं ग्रामीण क्षेत्र के निजी विद्यालय के अध्यापक व अध्यापिका के मध्य नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर पाया जाता है, जबकि चारित्रिक मूल्यों को विकसित करने में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। विद्यार्थियों को उच्च आदर्शों से युक्त वातावरण प्रदान किया जाना चाहिये तथा बालकों की सृजनात्मकता को पहचानकर उनको सही दिशा की ओर मोडा जाना चाहिये। वर्तमान में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी अनेक समस्याओं से ग्रसित रहते है। सोशल मीडिया के माध्यम से अश्लील वीडियों देखते रहते है, जो उन्हें अपराध प्रवृति की ओर धकेलता है, जो उनके चरित्र पतन का कारण बनता है। यह एक शोचनीय विषय है। जिसे समय रहते रोका जाना आवश्यक है। माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से सम्बन्धित विषयों को जोड़ा जाये अध्यापकों के द्वारा मैत्री एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार के माध्यम से विद्यार्थियों में मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिये, क्योंकि अध्यापक एवं विद्यार्थी दोनों ही राष्ट्र के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। विद्यार्थियों के अन्दर सकारात्मक चिन्तन के साथ सृजन क्षमता का विकास होना भी आवश्यक है। विद्यार्थियों को उच्च नैतिक मूल्यों का वाहक बनाने में अध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यावहारिक ज्ञान और निपुणता, मूल्य एवं कर्तव्यनिष्ठा ही किसी राष्ट्र और मानवता की पूंजी है और अध्यापक इसके सशक्त पुल है।

प्रस्तावना :-

नैतिक एवं चारित्रिक मूल्य वह सिद्धांत है जिस पर किसी राष्ट्र राज्य व समाज की नींव डाली जाती है। हमारे जीवन को सुखमय बनाने में मूल्यों की आवश्यकता है। आज की भौतिक परिवर्तनशील जीवन शैली में मूल्यों की नगण्यता देखने को मिलती है। व्यक्ति अपने प्रयासों से समस्त सुख सुविधाओं को प्राप्त करता जा रहा है लेकिन अपने नैतिक मूल्यों को छोड़ता जा रहा है। जिससे उसका लगातार चारित्रिक पतन हो रहा है। एक सभ्य

एवं सुसंस्कृत समाज कहीं नजर ही नहीं आ रहा है सभ्य समाज मात्र एक सपना रह गया है। रामायण में कहा गया है कि ब्राह्मण का कोई विशेष गुण नहीं होता है जिसका चरित्र उत्तम है वही ब्राह्मण है। चरित्र की महानता किसी एक जाति विशेष के लिए निर्धारित नहीं है। एक उत्तम चरित्र किसी का भी हो सकता है लेकिन आज व्यक्ति एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ में अपने नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों को भूलता जा रहा है हमारे नैतिक मूल्यों का ह्रास दिन–प्रतिदिन हमारे कार्यो में दिखाई दे रहा है।

वर्तमान में यह एक ज्वलन्त एंव चिंता का विषय बनता जा रहा है। मूल्यों के विकास को बनाये रखना आज का मुख्य विषय हो गया है। इसके लिए अध्यापकों को प्रयासरत होना होगा। बच्चों के विकास से पहले उन सभी मूल्यों को अध्यापकों को अपने व्यवहार में समाहित करना पड़ेगा तब ही दूसरो के व्यवहार को परिवर्तित कर पायेगें। आज का युवा वर्ग पथभ्रष्ट होता जा रहा है। वर्तमान में समाज में प्रतिदिन शर्मसार करने वाली घटनाऐं देखने को मिलती है, ऐसे समाज को ऊँचा उठाने का प्रयास बहुत जरूरी है, और इसकी शुरूवात शैशवावस्था से ही परिवार के द्वारा कर देनी चाहिए जिसे आगे एक शिक्षक उस बीज रूपी पौधे को पेड़ बनाने में अपना योगदान दे सके जिस पर पुष्प रूपी मूल्य खिल सके। नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों की शिक्षा का दायित्व विद्यालय के सभी अध्यापकों का होता है। केवल एक अध्यापक का नहीं, अध्यापक विद्यार्थियों के लिए आदर्श स्वरूप होता है। अध्यापक को स्वयं नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों से सम्पृक्त होना चाहिये, क्योंकि अध्यापक अपने जीवन मूल्यों के आधार पर नयी पौध में नैतिक शिक्षा का स्फुरण कर सकता है।

अध्यापक के व्यक्तित्व में मधुरता, विनम्रता, शिष्टाचार, आत्मविश्वास, सहयोग, निष्पक्षता, सौहार्द, कर्मशीलता, सहानुभूति, स्वच्छता और सादगी आदि गुण होने चाहिये। अध्यापक बालक के विकास में ही नहीं समाज एवं राष्ट्र निर्माण के विकास में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अध्यापक एक ऐसे विश्वास का नाम है जिस पर समाज के सभी सदस्य भरोसा करते है। हम विद्यालय के अन्तर्गत अपने बच्चों को अध्यापक के भरोसे छोड़कर सुनिश्चित हो जाते है कि अपना बच्चा सुरक्षित है। अध्यापक ही अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से विद्यालय व्यवस्था कायम करता है। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर तक बालक अपने माता–पिता से भी अधिक अध्यापक से प्रभावित होते है। विद्यालय केवल अध्यापन की दुकान हीं नहीं है, अपितु मूल्यों और अभिवृत्तियों के सम्प्रेषण का स्थान है। बालक जब घर से विद्यालय में प्रवेश करता है तब वह परिवार के कुछ मूल्य लेकर प्रवेश करता है। उन मूल्यों का विद्यालय के मूल्यों से तालमेल बैठाने का कार्य अध्यापक के द्वारा किया जाता है। बालक में नये मूल्यों का विकास किया जाता है। अध्यापक अपने आचरण के प्रभाव से बालकों को उत्प्रेरित कर सकता है। उन्हें सीखने के लिये तैयार कर सकता है। उन्हें यह भी सीखना होगा कि परिवार एवं समाज नैतिक एवं चारित्रिक व्यवहार का मानक स्वीकार करती है, क्योंकि वहीं समाज है, जो नैतिकता के प्रति निष्ठावान है। नैतिक मूल्यों के विकास में विद्यालयों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यह माध्यमिक शिक्षा आयोग भी कहता है।

शोध समस्या का औचित्य :–

मानव को अपनी सफलता प्राप्ति हेतु कोई न कोई लक्ष्य निर्धारित करना पड़ता है और उस लक्ष्य प्राप्ति हेतु किये गये कार्य को करने से पहले उसका औचित्य ध्यान में रखना आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में किसी शोध कार्य को किये जाना शैक्षिक जगत के लिए महत्वपूर्ण प्रयास है और शिक्षा जगत को प्रभावित करने वाले परिणामों को प्रस्तुत करना ही हमारे शोध का उद्देश्य होना चाहिए। किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कुछ

नियमों, संयमों तथा नैतिक नियमों, मूल्यों का पालन करना चाहिए। इस अध्ययन से सम्बन्धित जो भी साहित्य उपलब्ध हुआ, उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों के विकास में शिक्षकों की भूमिका बालकों के भविष्य निर्माण के लिये एक अच्छा एवं नवीन शोध विषय हो सकता है, जो एक उत्तम एवं चरित्रवान नागरिक का निर्माण एक देश के लिये कर सके। शिक्षा के इतिहास में आज तक एक शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। शिक्षक को भगवान का रूप माना गया है। बालक को व्यवहारशील एवं नैतिक गुणों से युक्त बनाया जाता है, अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षो से ही वह मूल्यों को सीखता है, लेकिन जैसे जैसे समाज के सम्पर्क में आता है तो उसका आचरण एवं नैतिकता पीछे छूटती जाती है जो बालक के पतन का कारण बनती है। वर्तमान में भारतीय शिक्षा प्रणाली के द्वारा बालकों को समायोजन के माध्यम से सही रास्ते की और अग्रसर किया जाता है। शिक्षा प्राप्त करने लिए के लिए जब बालक विद्यालय में प्रवेश लेता है तो हमारी भारतीय संस्कृति में सर्वप्रथम बालक को नैतिक गुणों एवं चरित्र की शुद्धता के बारे में ही सिखाया जाता है। गुरूकुल प्रणाली जो हमारे शिक्षा जगत की नींव है जो सनातन काल से चली आ रही है, जो गुरू अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते थे वे स्वयं नैतिकता एवं चरित्रता के प्रतीक होते थे स्वयं के प्रयासों से वे अपने शिष्यों को आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करते थे। लेकिन आज वर्तमान की शिक्षा प्रणाली मे ना ऐसे गुरू है और ना ही ऐसे शिष्य है। इसलिए एक शिक्षक के माध्यम से ही नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का विकास करके विद्यार्थियो में जो नकारात्मकता देखने को मिलती है तथा जो लगातार मूल्यों, नैतिकता एवं चारित्रिकता का ह्रास हो रहा है उसे रोका जा सकेगा।

शोध समस्या कथन :-

''माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका में नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का अध्ययन।''

शोध की परिकल्पनाएँ :-

- **परिकल्पना संख्या :- 1** माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका के मध्य नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।
- **परिकल्पना संख्या :- 2** माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका के मध्य के मध्य चारित्रिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही पाया जाता है।

शोध विधि :-

जयपुर जिले के माध्यमिक स्तर के अध्यापकों में नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों के अध्ययन करने के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध का न्यादर्श :-

जयपुर जिले के 240 अध्यापक व अध्यापिकाओं को इस शोध कार्य की जनसंख्या में शामिल किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण :-

प्रस्तुत शोध में अध्यापकों के नैतिक व चारित्रिक मूल्यों पर आधारित स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

शोध परिकल्पनाओं के आधार पर निष्कर्ष :-

परिकल्पना संख्या :- 1. माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका के मध्य नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

सारणी संख्या-1

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	मध्यमान का अंतर	टी मूल्य	परिकल्पना का परिणाम
शहरी क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका	120	92.20	6.513	0.595	0.933	1.045	स्वीकृत
ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका	120	93.13	7.298	0.666			

(d.f.=(N_1+N_2-2)=238 table value for t=1.97 at .05 level)

(d.f.=(N_1+N_2-2)=238 table value for t=2.61 at .01 level)

विश्लेषण एवं व्याख्या :-

उपरोक्त सारणी 1 के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर शहरी क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका का नैतिक मूल्यों का मध्यमान 92.20, मानक विचलन 6.513, मानक त्रुटि 0.595 पाया गया और ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका का मध्यमान 93.13, मानक विचलन 7.298, मानक त्रुटि 0.666 पाया गया है। दोंनों समूह में मध्यमान का अंतर 0.933 प्राप्त हुआ है। इन प्राप्त प्राप्तांकों से टी का मूल्य 1.045 रहा, जो 238 के 0.05 एवम् 0.01 स्तर पर टी के प्राप्त मूल्य से कम है। अतः सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका के मध्य नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है। अतः शून्य परिकल्पना संख्या 1 स्वीकृत की जाती है।

शोधकर्त्री द्वारा सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन के दौरान यह पाया गया है कि सिंह ममता (2021) द्वारा किये गये अध्ययन "उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का उनके सामाजिक, आर्थिक स्तर एवं विद्यालयी वातावरण के संदर्भ में अध्ययन" में भी देखा गया है कि विद्यालय वातावरण का प्रभाव विद्यार्थियों के नैतिकता को प्रभावित करते है।

परिकल्पना संख्या :- 2 माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका के मध्य के मध्य चारित्रिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही पाया जाता है।

सारणी संख्या-2

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	मध्यमान का अंतर	टी मूल्य	परिकल्पना का परिणाम
शहरी क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका	120	54.38	3.602	0.329	1.292	2.316	0.05 स्तर पर अस्वीकृत
ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका	120	53.09	4.933	0.450			0.01 स्तर पर स्वीकृत

(d.f.=(N_1+N_2-2)=238 table value for t=1.97 at .05 level)
(d.f.=(N_1+N_2-2)=238 table value for t=2.61 at .01 level)

विश्लेषण एवं व्याख्या :-

उपरोक्त सारणी 2 के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के शहरी अध्यापक व अध्यापिका का चारित्रिक मूल्यों का मध्यमान 54.38, मानक विचलन 3.602, मानक त्रुटि 0.329 पाया गया और ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिका का मध्यमान 53.09, मानक विचलन 4.933, मानक त्रुटि 0.450 पाया गया है। दोंनों समूह में मध्यमान का अंतर 1.292 प्राप्त हुआ है। इन प्राप्त प्राप्तांकों से टी का मूल्य 2.316 रहा, जो 238 के 0.05 स्तर पर टी के प्राप्त मूल्य से अधिक है। सार्थक अन्तर पाया गया है अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है, तथा 238 के 0.01 स्तर पर टी के प्राप्त मूल्य से कम है। अतः सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। अतः 0.01 स्तर पर परिकल्पना स्वीकृत होती है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी – शोध में मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, और टी टेस्ट परीक्षण का प्रयोग किया।

समस्या का परिसीमन :-

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन को जयपुर जिले तक ही सीमित रखा गया है। जिले की सीमितता होने के कारण न्यादर्श का विश्लेषण आसानी से किया गया।
2. प्रस्तुत शोध में 9 वीं एवं 10 वीं में सरकारी एवं निजी माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाने वाले अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को लिया गया है।
3. शोध में न्यादर्श की संख्या 240 निर्धारित की गई है।
4. प्रस्तुत शोध में शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को लिया गया है।

भावी शोध हेुत सुझाव :-

1. प्रस्तुत शोध केवल राजस्थान के जयपुर क्षेत्र तक ही सीमित है। अतः भावी शोध को वृहद स्तर पर सीकर, नागौर, अजमेर आदि क्षेत्र में किया जा सकता है।
2. प्रस्तुत अध्ययन अध्यापकों पर किया गया है। भावी शोध अभिभावकों, विशिष्ट बालकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों पर भी किया जा सकता है।
3. प्रस्तुत शोध के लिये न्यादर्श 240 लिया गया है। भावी शोध में न्यादर्श को बढ़ाया जा सकता है।

उपसंहार :-

वर्तमान में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी अनेक समस्याओं से ग्रसित रहते है। सोशल मीडिया के माध्यम से अश्लील वीडियों देखते रहते है, जो उन्हें अपराध प्रवृति की ओर धकेलता है, जो उनके चरित्र पतन का कारण बनता है। यह एक शोचनीय विषय है। जिसे समय रहते रोका जाना आवश्यक है। माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से सम्बन्धित विषयों को जोड़ा जाये अध्यापकों के द्वारा मैत्री एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार के माध्यम से विद्यार्थियों में मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिये, क्योंकि अध्यापक एवं विद्यार्थी दोनों ही राष्ट्र के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। विद्यार्थियो के अन्दर सकारात्मक चिन्तन के साथ सृजन क्षमता का विकास होना भी आवश्यक है। विद्यार्थियों को उच्च नैतिक मूल्यों का वाहक बनाने में अध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। व्यावहारिक ज्ञान और निपुणता, मूल्य एवं कर्तव्यनिष्ठा ही किसी राष्ट्र और मानवता की पूंजी है और

अध्यापक इसके सशक्त पुल है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. आहूजा राम (2007) : ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन, दिल्ली।
2. भण्डारी, डी.आर. (1992) ''अनुसंधान पद्धति की विवेचना'', राजस्थनी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 134.
3. भार्गव, महेश (1997) ''मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन'', हरप्रसाद भागर्व बुक हाउस, शैक्षिक प्रकाशन, आगरा।
4. भटनागर, ए.बी. भटनागर, मीनाक्षी (2006) ''भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास'', आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।
5. बोगार्ड (1982)'' शैक्षिक अनुसंधान का विधि शास्त्र'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी'', जयपुर।
6. कपिल, एच.के. (2003) ''अनुसंधान विधियाँ (व्यवहारपरक विज्ञानों में)", एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा, पृ. 441.
7. कुलश्रेष्ठ एस.पी. (2008) '' शिक्षा मनोविज्ञान'', आर लाल बुक डिपो।
8. लोढ़ा, महावीर मल ''नैतिक शिक्षा विविध आयाम'', जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 2007, पृ. 297.
9. रामगिढ़िया, निर्मल सिंह (2006) ''मूल्यपरक शिक्षा'', गुरूजी बुक कम्पनी, जयपुर।
10. सुखिया, एस.पी., महरोतरा, पी.वी, महरोतरा, आर.एन. (1990) ''शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व'', विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
11. सैनी, धर्मपाल (2005) ''मानव – मूल्यपरक शब्दवाली का विश्वकोश'', स्वरूप एण्ड सन्स, दिल्ली।
12. सिंह, अरूण कुमार एवं सिंह, आशीष कुमार (2004) ''व्यक्तित्व का मनोविज्ञान'', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली पृ. 521

संबंधित पत्र-पत्रिकाएँ :-

1. कुशवाहा, उमाशंकर (जनवरी 2023) : में International Journal of Applied Research, Page No. 21-24.
3. प्राथमिक शिक्षक : ''शैक्षिक संवाद की पत्रिका (2020)'', राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, त्रैमासिक पत्रिका, दिल्ली।
3. अग्रवाल कमला (जुलाई सितम्बर 2016) में शिक्षक शिक्षा शोध पत्रिका त्रैमासिक वॉल्यूम 10, पृ.स. 19–23.
4.. टाके मनीषा (अप्रैल जून 2016) Dvs International Journal of Multi Disciplinary Research Vol.1.

Dr.Vishnu Kumar, Asst. Prof.
Department of Education Jain Vishva Bharati Institute Ladnun, Raj.
0946052946
kumarvishnu1975@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 90–99

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में साहित्येतर वर्गों की भूमिका

राजू नंदन साहा
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, सि. का. मु. वि. वि. दुमका (झारखंड)

प्रस्तावना :-

हिन्दी भाषा भारत की मुख्य भाषाओं में से एक है, और इसका प्रचार–प्रसार विभिन्न साहित्येतर वर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका के बिना संभव नहीं है। साहित्येतर वर्गों का तात्पर्य उन क्षेत्रों से है जो साहित्यिक गतिविधियों से सीधे जुड़े नहीं होते, लेकिन हिन्दी भाषा की वृद्धि और विकास में योगदान करते हैं। साहित्येतर वर्ग साहित्यकारों के पूरक हैं। वे साहित्य को जनता के बीच ले जाते हैं और इसे और अधिक लोकप्रिय बनाते हैं। इनके प्रयासों से हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार होता है और यह हमारी सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करती है। इनमें मीडिया, शिक्षा, तकनीकी क्षेत्र, और सामाजिक संगठनों का समावेश होता है। हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार सिर्फ साहित्यकारों तक ही सीमित नहीं है। साहित्येतर वर्ग, जैसे कि मीडिया, शिक्षाविद, राजनेता, उद्योगपति और आम जनता भी इस काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार पर विभिन्न गैर–साहित्यिक समूहों का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। आइए इनकी भूमिका को विस्तार से समझते हैं :–

हिंदी के प्रचार-प्रसार में साहित्येतर वर्गों का योगदान :-

1) **हिंदी के विस्तार एवं प्रसार में प्रवासी मजदूर वर्ग का योगदान :** हिंदी भाषा का विस्तार और प्रसार भारत की सीमाओं से बहुत दूर तक हुआ है और इसमें प्रवासी मजदूर वर्ग का अहम योगदान रहा है। ये वे लोग हैं जिन्होंने अपनी मातृभूमि से दूर जाकर भी हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार किया है।

2) **प्रवासी मजदूर वर्ग का हिंदी के प्रसार में योगदान :-**

क) गिरमिटिया मजदूर : 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन के दौरान हजारों भारतीयों को गिरमिटिया मजदूर के रूप में कैरिबियन, फिजी, मॉरीशस आदि देशों में भेजा गया था। इन्होंने इन देशों में हिंदी भाषा को पहुंचाया और वहां हिंदी भाषी समुदायों का विकास किया।

ख) खाड़ी देशों में मजदूर : 20वीं सदी के उत्तरार्ध में बड़ी संख्या में भारतीय मजदूर खाड़ी देशों में गए। इन्होंने भी वहां हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार किया।

ग) अफ्रीका में मजदूर : दक्षिण अफ्रीका और अन्य अफ्रीकी देशों में भी भारतीय मजदूर गए और वहां हिंदी भाषा का प्रसार किया।

घ) दक्षिण पूर्व एशिया में मजदूर : मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में भी भारतीय मजदूर गए और हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार किया।

ङ) समुदायों का निर्माण : प्रवासी मजदूरों ने जहां–जहां गए, वहां उन्होंने हिंदी भाषी समुदायों का निर्माण किया।

च) स्कूल और कॉलेज : इन समुदायों ने हिंदी भाषा के स्कूल और कॉलेज स्थापित किए।

प्रवासी मजदूर वर्ग ने हिंदी भाषा के विस्तार और प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी हिंदी भाषा को जीवित रखा और उसे विश्व स्तर पर पहुंचाया।

2. हिंदी के विकास में निम्नवर्गीय, मध्यमवर्गीय समाज की भूमिका :-

हिंदी भाषा का विकास एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया रही है जिसमें विभिन्न सामाजिक वर्गों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निम्नवर्गीय और मध्यमवर्गीय समाजों ने हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने में विशेष भूमिका निभाई है।

निम्नवर्गीय समाज का योगदान :-

1) **बोलचाल की भाषा :** निम्नवर्गीय समाज हिंदी भाषा का प्राथमिक उपयोगकर्ता रहा है। उन्होंने अपनी बोलचाल की भाषा के माध्यम से हिंदी को जीवंतता प्रदान की है।
2) **लोक साहित्य :** लोकगीत, लोककथाएं, मुहावरे आदि हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने में निम्नवर्गीय समाज का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
3) **क्षेत्रीय बोलियों का समावेश :** निम्नवर्गीय समाज ने क्षेत्रीय बोलियों को हिंदी में समाहित कर उसे अधिक लोकप्रिय बनाया है।

मध्यमवर्गीय समाज का योगदान :-

1) **शिक्षा और साहित्य :** मध्यमवर्गीय समाज ने शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने हिंदी साहित्य को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया है।
2) **मानकीकरण :** मध्यमवर्गीय समाज ने हिंदी भाषा के मानकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
3) **भाषा आंदोलन :** मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों ने हिंदी भाषा के विकास के लिए कई भाषा आंदोलन चलाए।

दोनों वर्गों का संयुक्त योगदान :-

1) **सांस्कृतिक विरासत :** दोनों वर्गों ने मिलकर हिंदी भाषा को एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत प्रदान की है।
2) **राष्ट्रीय एकता :** हिंदी भाषा ने भारत की विभिन्न जातियों और धर्मों को एक सूत्र में बांधा है, जिसमें दोनों वर्गों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
3) **आधुनिकीकरण :** हिंदी भाषा ने आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करते हुए खुद को विकसित किया है, जिसमें दोनों वर्गों ने अपनी भूमिका निभाई है।

हिंदी भाषा का विकास एक सतत प्रक्रिया है जिसमें निम्नवर्गीय और मध्यमवर्गीय समाजों का महत्वपूर्ण

योगदान रहा है। दोनों वर्गों ने मिलकर हिंदी को भारत की राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिलाया है।

3) हिंदी के प्रचार प्रसार में साधु संतों, समाज सुधारकों की भूमिका :-

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में भावनात्मक संदर्भ की क्रांति शुरू हुई। उस समय देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो चुकी थी। देश में होने वाले आन्दोलनों से जन–जीवन प्रभावित हो रहा था। भारत की राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक भाषा की आवश्यकता सामने आई।

i) लोकमान्य तिलक जी के विचार :- लोकमान्य तिलक जीवन भर हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगे हुए थे। उन्होने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए बार–बार आग्रह किया था। प्रारंभ में परम विनम्र नेता थे। परिस्थितियों ने उन्हें ओजस्वी नेता बना दिया। "स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" का नारा देने वाले तिलक 'स्वदेशी' के प्रबल समर्थक थे। उनकी मान्यता थी कि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा की पदाधिकारी है। हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सकती है मेरी समझ में हिन्दी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए, यानी समस्त हिन्दुस्तान में बोली जाने वाली भाषा होनी चाहिए।"लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उन्होंने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 'हिन्दी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। हिन्दी का यह पत्र पर्याप्त लोकप्रिय हुआ।

ii) महात्मा गाँधी जी के विचार :- सन् 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में हिन्दी–प्रेम प्रकट करते हुए आह्वान किया था। आप हिन्दी को भारत का राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य–पालन करना चाहिए।" भारत वर्ष में शिक्षा के माध्यम पर दो–टूक चर्चा करते हए गाँधी जी ने 2 सितम्बर, 1921 को कहा था–अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए हमारे लड़के–लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ।" गाँधी जी की दृष्टि में हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में आदर्श भूमिका निभा सकती है।

iii) काका कालेलकर जी के विचार : इन्होंने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में समर्पित होकर कार्य किया हैं उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़कर और गुजरात में रहकर हिन्दी–प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अहिंदी भाषियों का नाम गौरव से लिया जाता है। ऐसे हिन्दी–प्रेमियों में काका कालेलकर का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता है। उन्होंने कभी अंग्रेजी का विरोध नहीं किया, किन्तु प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दुस्तानी के प्रबल हिमायती थे। यह निर्विवाद सत्य है कि काका कालेलकर 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे। उस समय हिन्दुस्तानी का अर्थ था – हिंदी और उर्दू का मिश्रित रूप। अंग्रेजों के शासन और अंग्रेजी के शासन और अंग्रेजी के प्रभाव में 'हिन्दुस्तान' के प्रसार से हिंदी को ही लाभ हुआ है। इससे जन सामान्य में हिंदी के प्रति अनुराग विकसित हुआ है। गाँधी जी के अनुयायी काका कालेलकर का नाम हिंदी–आंदोलन के संदर्भ में सदा याद किया जाएगा।

iv) लाला लाजपतराय जी के विचार :- पंजाब में हिन्दी प्रचार–प्रसार में लाला लाजपतराय की बलवती भूमिका थी। उन्होंने सन् 1911 में पंजाब शिक्षा संघ की स्थापना की। शिक्षा में हिन्दी को समुचित स्थान

दिलाने का सराहनीय प्रयास किया। सन् 1886 में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो–वैदिक कॉलेज की स्थापना की गई। इससे हिन्दी प्रसार का सुदृढ़ आधार मिला। इस कॉलेज में सभी विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ने की अनिवार्यता थी। लाला लाजपतराय के प्रयास से पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी को सम्मानीय स्थान मिला। उन्हीं का प्रयास था कि पंजाब विश्वविद्यालय में रत्न और प्रभाकर के माध्यम से हिन्दी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला।

v) **आर्य समाज :–** भारतवर्ष के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों में आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। आर्य समाज की स्थापना 1875 ई. में, बम्बई में स्वामी दयानन्द द्वारा समाजोत्थान के लिए की गई थी। आर्य समाज द्वारा पूरे देश में स्वराज, धर्म और हिंदी भाषा के लिए आन्दोलन किया गया। आर्य समाज के आन्दोलनकारी हिंदी को 'आर्यभाषा' नाम से संबोधित कर अपना सारा कार्य इसमें ही करते थे। आर्य समाज के 28 नियमों में पाँचवां नियम हिंदी पढ़ना था। आर्य समाज के बढ़ते कदम लाहौर पहुँचे और 24 जनवरी, 1877 को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में ही होता था। इसलिए हिंदी–प्रसार को सुन्दर आधार मिला।

vi) **सनातन धर्म :–** सभा के माध्यम से देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षण संस्थाएँ शुरू हो गई। इनमें हिन्दी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। उत्तर भारत क्षेत्र में इस को आशातीत सफलता मिली। पं. मदन मोहन मालवीय के प्रिय शिष्य गास्वामी गणेश दत्त इस सभा के कर्णधार थे। उन्होंने सर्वप्रथम लायलपुर में एक गुरुकुल की स्थापना की। इसमें संस्कृत–हिंदी अध्ययन–अध्यापन व्यवस्था थी। इसके पश्चात् सैंकड़ों संस्थाएँ खुली। इससे पंजाब में हिंदी का व्यापक प्रचार हुआ। गोस्वामी गणेश दत्त के साथ हिंदी–प्रसार में योगदान देने वालों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम विशेष आदर से लिया जाता है।

4) हिन्दी के विकास में खेल और खिलाड़ियों का योगदान :–

खेल और खिलाड़ियों का हिन्दी भाषा के विकास में कई तरह से योगदान रहा है। यह योगदान भाषा के प्रचार–प्रसार से लेकर नए शब्दों और मुहावरों के चलन तक फैला हुआ है।

भाषा का प्रचार-प्रसार :–

i) **खेलों का विवरण :** विभिन्न खेलों के समाचार, लेख, और विवरण हिन्दी में प्रकाशित होते हैं, जिससे भाषा का व्यापक प्रचार होता है। क्रिकेट, फुटबॉल, टेनिस जैसे लोकप्रिय खेलों पर हिन्दी में कमेंट्री और विश्लेषण भी भाषा को लोकप्रिय बनाते हैं।

ii) **खिलाड़ियों के साक्षात्कार :** खिलाड़ियों के साक्षात्कार और जीवन कहानियाँ हिन्दी पत्रिकाओं और वेबसाइटों में छपती हैं, जिन्हें पढ़कर लोग भाषा से जुड़ते हैं।

iii) **खेल साहित्य :** हिन्दी में खेल साहित्य की रचना हो रही है, जिसमें खेल आधारित उपन्यास, कहानियाँ, और कविताएँ शामिल हैं। यह साहित्य भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नए शब्दों और मुहावरों का चलन :–

i) **खेल शब्दावली :** खेलों ने हिन्दी भाषा को कई नए शब्द दिए हैं, जैसे कि 'गोल', 'चौका', 'छक्का', 'पेनाल्टी', आदि। ये शब्द अब आम बोलचाल की भाषा में भी इस्तेमाल होते हैं।

iii) **मुहावरे और लोकोक्तियाँ :** खेलों से जुड़े कई मुहावरे और लोकोक्तियाँ हिन्दी में प्रचलित हैं, जैसे कि 'मैदान मारना', 'खेल बिगाड़ना', आदि। ये भाषा को जीवंत और रोचक बनाते हैं।

भाषा का सरलीकरण :-

i) **आम बोलचाल की भाषा :** खेलों की भाषा आम बोलचाल की भाषा के करीब होती है, जिससे यह आसानी से समझ में आती है। इससे हिन्दी भाषा को और अधिक समावेशी बनाने में मदद मिलती है।

राष्ट्रीय एकता का प्रतीक :-

i) **खेलों का आयोजन :** राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के खेलों का आयोजन हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी होता है, जिससे भाषा को बढ़ावा मिलता है।

ii) **खिलाड़ियों का योगदान :** विभिन्न क्षेत्रों के खिलाड़ी हिन्दी में बातचीत करते हैं, जिससे भाषा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बनती है।

उदाहरण :-

– क्रिकेट की हिन्दी कमेंट्री ने भाषा को घर–घर तक पहुँचाया है।

– खिलाड़ियों के साक्षात्कार और प्रेस कॉन्फ्रेंस हिन्दी में होने से भाषा का प्रचार होता है।

– 'चक दे इंडिया' जैसी खेल आधारित फिल्मों ने हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाया है।

इस प्रकार, खेल और खिलाड़ियों ने हिन्दी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह योगदान भाषा के प्रचार–प्रसार, नए शब्दों और मुहावरों के चलन, भाषा के सरलीकरण, और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में देखा जा सकता है।

5) हिन्दी का प्रसार और भारतीय सिनेमा :-

भारतीय सिनेमा का हिन्दी भाषा के प्रसार में बहुत बड़ा योगदान रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सिनेमा ने हिन्दी को भारत के कोने–कोने तक ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी पहुँचाया है।

सिनेमा का हिन्दी के प्रसार में योगदान :-

i) **लोकप्रियता :** हिन्दी फिल्में भारत में मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय साधन हैं। ये फिल्में देश के हर हिस्से में देखी जाती हैं, जिससे हिन्दी भाषा का स्वाभाविक रूप से प्रसार होता है।

ii) **व्यापक पहुँच :** सिनेमा की व्यापक पहुँच ने हिन्दी को उन क्षेत्रों तक भी पहुँचाया है जहाँ यह भाषा आम बोलचाल में इस्तेमाल नहीं होती थी।

iii) **सरल भाषा :** हिन्दी फिल्मों में इस्तेमाल होने वाली भाषा अक्सर सरल और आम बोलचाल की भाषा होती है, जिससे इसे समझना और सीखना आसान होता है।

iv) **गीत और संगीत :** हिन्दी फिल्मों के गीत और संगीत भी बहुत लोकप्रिय हैं। ये गीत न केवल मनोरंजन करते हैं, बल्कि भाषा को भी लोकप्रिय बनाते हैं।

v) **संवाद :** फिल्मों के प्रभावशाली संवाद लोगों के दिलों में उतर जाते हैं और उन्हें भाषा से जोड़ते हैं। कई संवाद तो लोगों की जुबान पर चढ़ जाते हैं और रोजमर्रा की बातचीत में इस्तेमाल होने लगते हैं।

vi) **वैश्विक पहुँच :** भारतीय सिनेमा की लोकप्रियता विदेशों में भी बढ़ रही है। इससे हिन्दी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली है।

vii) **क्षेत्रीय भाषाओं पर प्रभाव :** हिन्दी फिल्मों का प्रभाव क्षेत्रीय भाषाओं पर भी पड़ा है। कई क्षेत्रीय फिल्मों में भी हिन्दी के शब्दों और संवादों का इस्तेमाल होता है।

उदाहरण :-

– 'शोले', 'मुगल–ए–आजम', 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएँगे' जैसी फिल्मों ने हिन्दी को देशव्यापी लोकप्रियता दिलाई।
– आजकल 'बाहुबली', 'पठान', 'RRR' जैसी फिल्में भी हिन्दी में डब होकर पूरे देश में देखी जा रही हैं, जिससे हिन्दी का प्रसार हो रहा है।
– भारतीय सिनेमा ने हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह भाषा और संस्कृति का भी वाहक है। इसने हिन्दी को एक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने में मदद की है।

6) हिन्दी के विकास में मीडिया का योगदान :-

हिन्दी के विकास में मीडिया का बहुत बड़ा योगदान रहा है। मीडिया के विभिन्न रूपों – जैसे समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा, और अब इंटरनेट और सोशल मीडिया – ने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में अपना योगदान दिया है। मीडिया का क्षेत्र हिन्दी के प्रचार–प्रसार में एक प्रमुख भूमिका निभाता है।

मीडिया के विभिन्न रूपों का योगदान :-

i) **समाचार पत्र और पत्रिकाएँ :** इन्होंने हिन्दी को एक साहित्यिक भाषा से जनभाषा बनाने में मदद की। इन्होंने लोगों को समाचारों और विचारों से अवगत कराया और हिन्दी में पढ़ने और लिखने की रुचि पैदा की।

ii) **रेडियो :** रेडियो ने हिन्दी को दूर–दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाया, जहाँ समाचार पत्र और पत्रिकाएँ नहीं पहुँच पाते थे। रेडियो ने हिन्दी में मनोरंजन और शिक्षा के कार्यक्रम प्रसारित किए, जिससे हिन्दी की लोकप्रियता बढ़ी।

iii) **दूरदर्शन :** दूरदर्शन ने हिन्दी को एक दृश्य माध्यम दिया, जिससे हिन्दी और भी आकर्षक और प्रभावी बन गई। दूरदर्शन ने हिन्दी में धारावाहिक, फिल्में, और अन्य कार्यक्रम प्रसारित किए, जिससे हिन्दी की लोकप्रियता और भी बढ़ी।

iv) **विज्ञापन :** विज्ञापन हिन्दी भाषा को आम जनता के बीच लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

v) **सिनेमा :** हिन्दी सिनेमा ने हिन्दी को भारत की सबसे लोकप्रिय भाषाओं में से एक बना दिया है। हिन्दी फिल्में भारत के अलावा विदेशों में भी देखी जाती हैं, जिससे हिन्दी का प्रचार और प्रसार होता है।

vi) **इंटरनेट और सोशल मीडिया :** इंटरनेट और सोशल मीडिया ने हिन्दी को एक नया मंच दिया

है, जहाँ लोग हिन्दी में लिख सकते हैं, पढ़ सकते हैं, और संवाद कर सकते हैं। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने हिन्दी को विश्व स्तर पर पहुँचाया है।

मीडिया के योगदान के कुछ उदाहरण :-

- मीडिया ने हिन्दी में समाचारों और विचारों का प्रसार करके लोगों को जागरूक बनाया है।
- मीडिया ने हिन्दी में मनोरंजन और शिक्षा के कार्यक्रम प्रसारित करके लोगों का मनोरंजन किया है और उन्हें शिक्षित किया है।
- मीडिया ने हिन्दी में फिल्में और गाने बनाकर हिन्दी को लोकप्रिय बनाया है।
- मीडिया ने हिन्दी में वेबसाइट और ब्लॉग बनाकर हिन्दी को इंटरनेट पर उपलब्ध कराया है।
- मीडिया ने सोशल मीडिया पर हिन्दी में संवाद को बढ़ावा देकर हिन्दी को और भी लोकप्रिय बनाया है।

हाल के वर्षों में डिजिटल मीडिया का उपयोग बढ़ा है, कई ऐसे यूट्यूब चौनल और वेबसाइट्स सामने आई हैं जो युवा पीढ़ी को हिन्दी में शैक्षिक सामग्री, मनोरंजन, और ज्ञानवर्धक बातें उपलब्ध कराते हैं। यह हिन्दी के प्रति लोगों की रुचि को बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार, मीडिया ने हिन्दी के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीडिया के विभिन्न रूपों ने हिन्दी को जन–जन तक पहुँचाया है, इसे लोकप्रिय बनाया है, और इसे एक आधुनिक भाषा बनाया है।

7) हिन्दी के विकास में भारतीय सेना का योगदान :-

भारतीय सेना ने भी हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यद्यपि सेना की प्राथमिक भूमिका देश की रक्षा करना है, लेकिन इसने कई तरीकों से हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में सहायता की है :–

क) राष्ट्रीय एकता का माध्यम :

भारतीय सेना में विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं और संस्कृतियों के सैनिक शामिल होते हैं। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो विभिन्न क्षेत्रों के सैनिकों के बीच संवाद स्थापित करने में मदद करती है। इसने सेना में एक साझा भाषा और राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा दिया है। सेना के प्रशिक्षण संस्थानों में भी हिन्दी का उपयोग होता है, जिससे विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि के सैनिकों को एक ही भाषा में प्रशिक्षण प्राप्त करने में सुविधा होती है।

ख) प्रशासनिक और संचार माध्यम :

सेना के आंतरिक कामकाज में हिन्दी का उपयोग होता है, जैसे कि पत्राचार, आदेश, और रिपोर्ट आदि। इससे हिन्दी भाषा का प्रशासनिक स्तर पर प्रयोग बढ़ा है। सेना के संचार माध्यमों, जैसे कि रेडियो और टेलीविजन, में भी हिन्दी का उपयोग होता है, जिससे हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार होता है।

ग) साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान :

कई सैनिक और पूर्व सैनिक हिन्दी में लेखन करते हैं, जिससे हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है। उनकी रचनाओं में देशभक्ति, वीरता, और सेना के जीवन का चित्रण होता है। सेना द्वारा आयोजित विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी हिन्दी का उपयोग होता है, जिससे हिन्दी भाषा को बढ़ावा मिलता है।

घ) शिक्षा और जागरूकता :

सेना द्वारा चलाए जाने वाले विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों में भी हिन्दी का उपयोग होता है, जैसे कि शिक्षा

और जागरूकता अभियान। इससे हिन्दी भाषा का ग्रामीण और दूर–दराज के क्षेत्रों में भी प्रसार होता है।

उदाहरण :

– सेना में 'रोमन हिन्दी' का उपयोग किया जाता है, जिसमें हिन्दी शब्दों को अंग्रेजी अक्षरों में लिखा जाता है। इससे उन सैनिकों को भी हिन्दी समझने में मदद मिलती है जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है।

– सेना द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं और पुस्तकों में भी हिन्दी का उपयोग होता है।

इस प्रकार, भारतीय सेना ने विभिन्न तरीकों से हिन्दी भाषा के विकास में योगदान दिया है। इसने हिन्दी को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक सूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

8) हिन्दी के प्रसार में भारतीय रेलवे का योगदान :–

भारतीय रेलवे ने हिन्दी के प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह न केवल देश का सबसे बड़ा परिवहन नेटवर्क है, बल्कि इसने हिन्दी को देश के कोने–कोने तक पहुँचाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विभिन्न तरीकों से भारतीय रेलवे ने हिन्दी के प्रचार और प्रसार में सहायता की है :

क) राष्ट्रीय एकता का माध्यम :

भारतीय रेलवे पूरे देश को जोड़ता है, जिससे विभिन्न भाषा–भाषी लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। रेलवे स्टेशनों और ट्रेनों में हिन्दी का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक दूसरे से संवाद स्थापित करने में मदद करता है, जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा मिलता है। रेलवे कर्मचारियों में भी विभिन्न क्षेत्रों के लोग शामिल होते हैं, जिनके बीच संवाद का माध्यम हिन्दी बनती है।

ख) सूचना और संचार का माध्यम :

रेलवे स्टेशनों पर सूचनाएँ, जैसे कि समय सारणी, प्लेटफार्म संख्या, और गंतव्य आदि, हिन्दी में प्रदर्शित की जाती हैं। इससे हिन्दी भाषी यात्रियों को सुविधा होती है और गैर–हिन्दी भाषी लोग भी हिन्दी से परिचित होते हैं। ट्रेनों में भी घोषणाएँ हिन्दी में की जाती हैं, जिससे यात्रियों को आवश्यक जानकारी मिलती है। रेलवे द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं, और अन्य सामग्रियों में भी हिन्दी का उपयोग होता है, जिससे हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार होता है।

ग) रोजगार का माध्यम :

भारतीय रेलवे में लाखों कर्मचारी कार्यरत हैं, जिनमें से कई पदों के लिए हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है। इससे हिन्दी भाषियों के लिए रोजगार के अवसर पैदा होते हैं और गैर–हिन्दी भाषी लोग भी रोजगार के लिए हिन्दी सीखते हैं।

घ) सांस्कृतिक आदान-प्रदान का माध्यम :

रेल यात्रा के दौरान विभिन्न क्षेत्रों के लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं, जिससे सांस्कृतिक आदान–प्रदान होता है। हिन्दी इस आदान–प्रदान का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनती है।

ङ) राजभाषा के रूप में प्रोत्साहन :

भारतीय रेलवे भारत सरकार की राजभाषा नीति का पालन करता है, जिसके तहत सरकारी कामकाज में हिन्दी का उपयोग अनिवार्य है। रेलवे के कार्यालयों, पत्राचार, और अन्य दस्तावेजों में हिन्दी का उपयोग होता है, जिससे हिन्दी भाषा को बढ़ावा मिलता है।

उदाहरण :–

– आपने देखा होगा कि रेलवे स्टेशनों के नाम, सूचना पट्ट, और अन्य जानकारियाँ हिन्दी, अंग्रेजी और स्थानीय भाषा में लिखी होती हैं। इससे हिन्दी का प्रचार और प्रसार होता है।

– रेलवे की वेबसाइट और ऑनलाइन टिकट बुकिंग प्रणाली में भी हिन्दी का विकल्प उपलब्ध है।

इस प्रकार, भारतीय रेलवे ने विभिन्न तरीकों से हिन्दी के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने हिन्दी को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक सूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

हिंदी के प्रचार–प्रसार का महत्व :–

हिंदी, भारत की राजभाषा होने के साथ–साथ देश की एकता और अखंडता का प्रतीक भी है। इसके प्रचार–प्रसार का महत्व निम्नलिखित कारणों से है :

1. **भारतीयों की पहचान :** हिंदी भाषा भारतीयों की पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई है।
2. **राष्ट्रीय एकता :** हिंदी, भारत की विभिन्न भाषाओं को जोड़ने का काम करती है और राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाती है।
3. **भारतीय संस्कृति का प्रसार :** हिंदी, भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का वाहक है। इसके प्रचार से हम अपनी संस्कृति को जीवंत रख सकते हैं। हिंदी भाषा के साथ–साथ भारतीय संस्कृति का भी प्रसार हुआ है।
4. **हिंदी का वैश्विक स्तर पर प्रसार :** आज हिंदी विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। इसके प्रचार–प्रसार से भारत का ग्लोबल स्तर पर प्रभाव बढ़ेगा। हिंदी भाषा अब भारत की सीमाओं से बहुत दूर तक फैल गई है।
5. **संपर्क भाषा बनने हेतु हिन्दी को योगदान :** राष्ट्रीय भावना जगाने हेतु हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया गया। विभिन्न व्यक्तियों और संस्थानों द्वारा हिंन्दी–प्रयोग हेतु आन्दोलन के रूप में कार्य किया गया। बिहार ने सबसे पहले अपनाई थी हिंदी को, बनाई थी राज्य की अधिकारिक भाषा बिहार देश का पहला ऐसा राज्य है, जिसने सबसे पहले हिंदी को अपनी अधिकारिक भाषा माना है।
6. **शिक्षा और रोजगार :** हिंदी के माध्यम से शिक्षा और रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं।
7. **संचार का माध्यम :** हिंदी, भारत के अधिकांश लोगों के लिए संचार का प्राथमिक माध्यम है।
8. हिंदी के प्रचार–प्रसार से न केवल भारत बल्कि पूरी दुनिया को लाभ होगा। हमें मिलकर हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए प्रयास करने चाहिए।

निष्कर्ष :-

अंत में, यह स्पष्ट है कि साहित्येतर वर्गों की भूमिका हिन्दी के प्रचार–प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये वर्ग साहित्यकारों के विचारों को जन–जन तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं। वे विभिन्न माध्यमों जैसे कि फिल्म, संगीत, नाटक, टेलीविजन, और अब डिजिटल मंचों के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य को आम लोगों के जीवन में उतारते हैं। मीडिया, शिक्षा, तकनीकी क्षेत्र, और सामाजिक संगठन मिलकर हिन्दी भाषा को एक नया जीवन देने का कार्य कर रहे हैं। ये समूह हिंदी के व्यापक प्रसार में योगदान करते हैं। नतीजतन, हिंदी के लिए बहुमुखी समर्थन न केवल भाषा को संरक्षित करता है बल्कि भारत की सांस्कृतिक ताने–बाने को भी समृद्ध करता है। नतीजतन, इन विविध संस्थाओं के सहयोगी प्रयास हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार में सामूहिक कार्रवाई के महत्व को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार, हिन्दी भाषा का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है, और इसमें साहित्येतर वर्गों का योगदान अविस्मरणीय है।

संदर्भ :-

1. हिन्दी के प्रचार–प्रसार में संस्थाओं का योगदान – *f* https://www.youtube.com/watch\v/uWluuWDVJl0
2. 'विश्व भाषा और हिंदी के बढ़ते कदम' – राकेश शर्मा निशिथ।
3. हिंदी के प्रचार प्रसार में मीडिया का योगदान – पूजा रानी, (सहायक प्रवक्ता हिन्दी)।
4. हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में सिनेमा और वेब मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका–लेखक विजय गर्ग सेवानिवृत्त प्रिंसिपल शैक्षिक स्तंभकार।
5. हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु विभिन्न व्यक्तियों, धार्मिक, साहित्यिक संस्थाओं का योगदान – https://www.youtube.com/watch\v/3_B3p1PtYMY

Mob – 8084818282

EMail : rajunandansaha@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 100-103

हिंदी भाषा और ई–शिक्षा

डॉ. लीना गोयल
हिंदी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, अंबाला छावनी।

सारांश :–

भाषा में तकनीक एवं कौशल शिक्षा की परिवर्तनकारी गतिशीलता विषय वर्तमान में बहुत सार्थक एवं उपयोगी है। भाषा के प्रति सभी देशवासियों का प्रेम सहज एवं स्वाभाविक है। कई चुनौतियों का सामना करते हुए आज प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, कंप्यूटर आदि में भी हिंदी अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है। हम सभी जानते हैं कि हम एक हिंदी भाषी देश भारत के निवासी है। आधुनिक युग में शिक्षा को ग्रहण करने या देने में यदि हम आधुनिकता को ग्रहण नहीं करेंगे अथवा तकनीक और कौशल शिक्षा को नहीं अपनाएंगे तो हम दुनिया की दौड़ में पिछड़ जाएंगे। इसलिए हमें तकनीक से जुड़ना होगा और तकनीकी शिक्षा को अपनाना होगा। जब आधुनिकतम प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। तब हिंदी शिक्षण में नवीनता लाना भी स्वाभाविक हो जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भाषा सीखने की परंपरागत विधियों त्याज्य है अब तक परंपरागत विधियों अपनी कारगरता सिद्ध करती आ रही है। आवश्यक है प्राचीन और आधुनिक वीधियो के बीच एक मधुर सामंजस्य स्थापित किया जाए कंप्यूटर, वेब, मीडिया, इंटरनेट जैसे आधुनिक तकनीकी माध्यमों के उपयोग से हिंदी साहित्य एवं भाषा पर विश्व का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए यह जरूरी है कि हिंदी केवल साहित्य की पारंपरिक विधाओं में सिमट कर ना रह जाए बल्कि इसका प्रयोग हर विषय जैसे विज्ञान, राजनीति, टेक्नोलॉजी, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान अर्थशास्त्र इत्यादि में भी हो सके इसके लिए हमें हिंदी की तकनीक और कौशल शिक्षा की परिवर्तनकारी गतिशीलता को अपनाना होगा।

हिंदी भाषा का फलक विराट एवं अपरिमेय है। हम सभी जानते हैं कि हिंदी हमारी मातृभाषा है जो माता के दाय के रूप में हमें मिलती है। उसे मातृभाषा कहते है। हमें गौरव है कि यह पदवी और उपाधि हिंदी को प्राप्त है। कवि गुरु गुरुदेव श्री रविंद्रनाथ टैगोर ने बड़े सुंदर शब्दों में कहा था कि :—

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी :–

अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की राजभाषा, संपर्क भाषा एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की भूमिका भारत के बढ़ते कद के साथ निरंतर समृद्ध हो रही है। हिंदी भाषा की जीवंतता का रहस्य उसकी व्यापकता में निहित है। विश्वभर में स्थित कोई भी भारतीय या तो हिंदी या अपनी मातृभाषा में ही सोचता समझता और बोलता है और वह हिंदी से किसी न किसी रूप में जरूर परिचित है।[1] हिंदी एवं भारतीय संस्कृति विदेशों में रहने वाले भारतीय भी अपने बच्चों को भारतीय संस्कृति से जोड़ना चाहते हैं। उनके लिए सबसे बड़ा आधार हिंदी ही है।

इसका अन्य कारण उदारीकरण तथा निजीकरण भी है। अन्य देशों के साथ भारत के बढ़ते व्यापारिक संबंधों ने एक दूसरे के देशों की भाषाओं को सीखने की आवश्यकता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। तकनीकी रूप से यह सिद्ध हो चुका है कि हिंदी भाषा अपनी लिपि और उच्चारण में सबसे शुद्ध और विज्ञान सम्मत भाषा है। इसलिए वैश्विक स्तर पर कई देशों ने भारतीय अध्ययनों को बढ़ावा देते हुए अपने देशों में हिंदी सिखाने के लिए अनेक संस्थान स्थापित किए हैं। विश्व के 40 से अधिक देशों में 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी की शिक्षा दी जा रही है। दुनिया के सबसे ताकतवर देश अमेरिका हो या रूसी विद्वान या फिर एशियाई देश जापान आदि विभिन्न देशों में हिंदी भाषा को विशेष सम्मान प्राप्त है। इन देशों का भारतीय भाषा हिंदी से जुड़ना स्पष्ट करता है कि वह दिन दूर नहीं जब हिंदी विश्व की भाषा कहलाएगी।

वर्तमान युग तकनीक का युग है। शिक्षा में तकनीक का प्रयोग ई शिक्षा कहलाता है। जिसे ई लर्निंग के नाम से जाना जाता है।

हमारे आसपास के वातावरण में देखे तो हमारे आसपास ई–शिक्षा के कितने ही साधन उपलब्ध हैं जैसे मोबाइल फोन, कम्प्यूटर, स्मार्ट क्लास, पोर्टल, वेबसाइट इत्यादि कौन होगा जो इन माध्यमों को नहीं जानता या प्रयोग नहीं करता। शायद आज की दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति इन साधनों के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर रहा है। यहां तक कि शैशव अवस्था से ही यह सभी माध्यम एक बालक के जीवन में खिलौने के रूप में आकर उसका ज्ञान वर्धन कर रहे हैं। ई–शिक्षा के यह सभी साधन उसके खिलौने पुस्तके,गुरुकुल, विद्यालय माता पिता की भूमिका निभा रहे हैं। यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि आज की दुनिया यही है। तथा आज की जरूरत भी। इसलिए हमें वर्तमान में इन्हें अपनाना ही होगा।

यदि हम शिक्षा देने या ग्रहण करने में इन्हें नहीं अपनाएंगे तो हम आधुनिकता की दौड़ में पिछड़ जाएंगे। इसलिए हमें तकनीक से जुड़ना होगा ई–शिक्षा को अपनाना होगा। हमें इस तकनीक को अपनाने में संकोच भी नहीं करना चाहिए क्योंकि यह तकनीक हमारी शिक्षा को रोचक एवं प्रभावशाली बनाती है।

ई–शिक्षा का संबंध दृश्य श्रव्य तकनीक से जुड़ा हुआ है। देखकर और सुनकर प्राप्त शिक्षा व्यक्ति के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ती है। हमारे पास दृश्य श्रव्य तकनीक के अनेक साधन उपलब्ध है जैसे पीपीटी श्रव्य रिकॉर्डिंग, चलचित्र, रिकॉर्डिंग, प्रवाह सचित्र, टंकण सामग्री स इन्हीं के प्रयोग से शिक्षा शाश्वत बनती है। विश्लेषण करना आसान हो जाता है।

हिंदी भाषा में ई–शिक्षा का प्रयोग हिंदी भाषा को वैश्विक स्तर पर विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इसी तकनीक के कारण वर्तमान में वेब, मीडिया, विज्ञापन संगीत बाजार कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं बचा। जहां हिंदी अब अपने पांव न पसार रही हो। विदेशी लोग भी हिंदी सीखने के लिए अपने–अपने देशों में ई–शिक्षण के प्रयोग पर जोर लगा रहे हैं।

कहा जाता है कि इंटरनेट पर हिंदी का पहला प्रकाशन 1996 से प्रकाशित हो रहा है। 1997 में जब इसका वेब संस्करण उपलब्ध कराया गया तब यह इंटरनेट पर विश्व का पहला हिंदी प्रकाशन कहलाया।[2]

दिलचस्प बात यह है कि सन 2000 तक भारत से हिंदी वेब प्रकाशन ना होकर न्यूजीलैंड अमेरिका से प्रकाशन हुआ। यह कहा जा सकता है कि हिंदी वेबसाइट विदेश से आरंभ हुई तथा अब यह भारत में भी लोकप्रिय हो रही है। इस प्रकार गूगल ने भी हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ई–शिक्षा की नवीन प्रणालियां शैक्षणिक संस्थानों में विशेषता विदेशी–भाषा साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन ला रही है। आधुनिक तकनीकी प्रगति तथा बढ़ती प्रौद्योगिकी के अनुकूल हिंदी भाषा साहित्य के वास्तविक स्वरूप तथा सूक्ष्म तत्वों और आकर्षक पहलुओं को छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने में अत्यंत सफलता भी प्राप्त हो रही है। इसके फलस्वरूप शिक्षा संस्थानों में हिंदी भाषा साहित्य का पठन–पाठन अधिक रुचिकर एवं आकर्षक बन गया है। ई–शिक्षा के कारण ही भारत में ही नहीं विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में इंटरएक्टिव वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग तकनीक अर्थात एक ही समय पर भिन्न–भिन्न परिसरों में बैठे हुए विद्यार्थियों को हिंदी सिखाना, जहां हम उनको देख भी सकते हैं, उनसे बातचीत भी कर सकते हैं और वह भी बहुत वही वे भी वही सब कुछ कर सकते हैं, का प्रयोग किया जा रहा है।

आधुनिक युग के विद्यार्थी कंप्यूटर से लेकर वीडियो, मूवी, डीवीडी, इंटरनेट, ईमेल, सोशल मीडिया, टेक्स्ट मैसेजिंग और अनेकों एप्स जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकियों में बहुत निपुण है। उनके पास डिजिटल दुनिया के माध्यम से 24 घंटे अपनी उंगलियों के जादू से दुनियाभर की खबरों का खजाना खोलने की क्षमता मौजूद है। किसी भी भाषा का ज्ञान हासिल करने से पहले वे उस भाषा में उपलब्ध भाषिक एवं सांस्कृतिक तत्वों तथा स्त्रोतों को नई तकनीक में कितना उपलब्ध हो सकता है उसकी जांच पड़ताल करते हैं।

अमेरिका के शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों को इन्हीं जरूरतों को ध्यान में रखते हुए नॉर्थ कैरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी यूनिवर्सिटी में वर्चुअल रियलिटी, 360 डिग्री विजुअलाइजेशन, ग्रीन स्क्रीन और 3–डी प्रिंटिंग जैसी नई प्रौद्योगिकियों का हिंदी भाषा साहित्य के शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया में प्रयोग कर नई पीढ़ी के विद्यार्थियों में नई उमंग एवं आकर्षण पैदा किया गया है।[3]

भाषा साहित्य के प्राध्यापकों को हमेशा यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि आधुनिक विद्यार्थियों की भाषा साहित्य में रुचि किस प्रकार बनाई जा सकती है। वर्तमान विद्यार्थी के पास पठन–पाठन की भरमार सामग्री है तथा अनगिनत क्षेत्र भी है लेकिन भाषा साहित्य में उनकी रुचि को बनाए रखने अथवा विकसित करने के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग आवश्यक है जिस पर अधिकांशतः महत्व नहीं दिया जाता। ई–शिक्षा के माध्यम से हिंदी के विद्यार्थियों को हिंदी भाषा के रचनात्मक तत्वों जैसे ध्वनि और अर्थ, भाषा विज्ञान की क्षमता, वाक्यांश, वाक्यों का निर्माण, अनुच्छेद, कथोपकथन, प्रश्नोत्तरी, भारत की संस्कृति, रीति–रिवाज संस्कार–परंपराएं, धर्म, त्योहार, चिंतन–मनन निष्पक्ष दृष्टिकोण के विषय में अनुभव प्रदान करवाया जा सकता है जिससे एक हिंदी भाषी विद्यार्थी भविष्य में विश्व के समक्ष आत्मविश्वास के साथ स्वयं को प्रस्तुत कर पाए। वैसे भी हिंदी विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है जिसकी यात्रा श्रुति, भोज पत्रों, ताड–पत्रों भित्ति–चित्रों, शिलालेखों, ताम्रपत्र आदि के रास्ते से होते हुए आज के डिजिटल युग में प्रवेश कर सतत प्रवाह मान रही है। हिंदी की लिपि देवनागरी है। देवनागरी लिपि के वर्णों का वर्गीकरण भी पूर्णतः तकनीकी दृष्टिकोण के साथ ही किया गया है। लीना मेहंदले ने इसी विषय में कहा था कि भारतीय मनीषियों ने पहचाना की वर्णमाला में विज्ञान हैं। ध्वनि के उच्चारण में शरीर के विभिन्न अवयवों का व्यवहार होता है। इस बात को पहचान कर शरीर विज्ञान के अनुरूप भारतीय वर्णमाला बनी और उसकी वर्गवारी भी तय हुई।[4]

यह वैज्ञानिकता आधुनिक तकनीकों से जुड़ी हुई है। वर्तमान में कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जहां आधुनिक तकनीकों का प्रयोग ना किया जा रहा हो। नई तकनीकों का प्रयोग जहां किसी क्षेत्र की उपलब्धियों का

परिचायक है, वही नई और पुरानी तकनीकों का समन्वय उस क्षेत्र के विकास एवं व्यापकता को भी सिद्ध करता है। इसी प्रकार जब किसी भाषा के अध्ययन की परंपरागत एवं आधुनिक तकनीकों में संबंध मधुर होता है तब वह भाषा अपने विकास के उच्चतम शिखर पर होती है। लेकिन इस संबंध में जैसे कि तनाव उत्पन्न होता है, वह भाषा ह्रास की ओर अग्रसर हो जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी के विकास के लिए हिंदी भाषा तथा ई–शिक्षा के बीच समन्वय बहुत महत्वपूर्ण है। यह संबंध केवल हिंदी भाषा साहित्य तक ही सीमित नहीं होता बल्कि किसी भी संकाय क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली हिंदी भाषा तथा अन्य भाषाओं के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। वर्तमान में ई–शिक्षा के माध्यम से हिंदी भाषा का पठन–पाठन अवश्य ही फलेगा और फुलेगा क्योंकि ई–शिक्षा किसी भी विषय वस्तु की संपूर्ण जानकारी देने एवं प्रस्तुत करने का एक प्रभावशाली और मनोरंजक तरीका है। वास्तव में शिक्षा के क्षेत्र में नई प्रौद्योगिकी द्वारा लाए गए नवपरिवर्तन तथा तकनीकी विकास को अपनाना एवं उसे शिक्षण प्रक्रिया में प्रयोग करना अपने आप में एक सराहनीय कार्य है।

संदर्भ सूची :-

1. हिंदी एवं भारतीय संस्कृति – डॉ साकेत सहाय, भारत।
2. हिंदी वेब और ऑनलाइन साहित्य – श्री रोहित कुमार हैप्पी न्यूजीलैंड।
3. अमेरिका में आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा हिंदी शिक्षण – डॉ. नीलाक्षी फुकन, अमेरिका।
4. भारतीय वर्णमाला की संकल्पना (लेख)– लीना मेहंदले वैश्विक हिंदी सम्मेलन मुंबई।

drleenagoyal1412@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 104–108

मलयालम की क्रान्तिकारी लेखिका माधविकुट्टी

डॉ. गायत्री एन

असोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग एवं अनुसन्धान केंद्र, महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम, केरल

शोध सार :-

कमला सुरैया (31 मार्च, 1934 – 31 मई, 2009) एक विश्व प्रसिद्ध मलयालम लेखिका है, जिन्होंने कविता, लघु कथाएँ और जीवनी सहित मलयालम और अंग्रेजी में कई साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित की हैं। 1999 में इस्लाम अपनाने से पहले, उन्होंने मलयालम में माधविकुट्टी और अंग्रेजी में कमलादास नाम से लिखा। वह अंग्रेजी में कविता लिखने वाली प्रमुख भारतीय कवियों में से एक थीं। लेकिन केरल में माधवीकुट्टी उनका उपनाम है। माधवीकुट्टी वी.एम.नायर और नालापाट बालमणि अम्मा की बेटी के रूप में हुआ था। मलयालम में लोकप्रिय रचनाएँ हैं, 'चाइल्डहुड मेमोरीज', 'एंटे कथा', 'वॉल्स', 'माधविकुट्टी की चयनित कहानियाँ:, 'नीरमातलम पूत्ता कालम', 'नष्टप्पेट्ट नीलांबरी' आदि। प्रमुख अंग्रेजी कृतियों में 'समर इन कलकत्ता', 'ओल्ड प्ले हाईज' और 'द सायरन' शामिल हैं। मेरी कहानी का 15 विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया गया है। उनकी लघु कहानी 'कोल्डनेस' ने वयलार पुरस्कार और केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार जीता है।

बीज शब्द :-

मलयालम की प्रिय लेखिका माधवीकुट्टी को अलविदा कहे चौदह साल हो गए हैं। मलयालम साहित्य की दुनिया उस प्रतिभा की यादों में है। माधवीकुट्टी (कमला सुरैया) एक ऐसी लेखिका थीं, जिन्होंने कमल के फूल जैसे मासूम शब्दों के जरिए बचपन की यादें पाठकों तक पहुंचाई और एक क्रांतिकारी की तरह पुरुष–केंद्रित मलयालम साहित्यिक दुनिया में अपनी जगह बनाई थी।

31 मार्च, 1934 को एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा वाले नालापाट परिवार में जन्मे माधवीकुट्टी के लिए लेखन एक जन्मजात प्रतिभा थी। माधविकुट्टी ने हमेशा पुन्नयुरकुलम की ग्रामीण सुंदरता और कोलकाता और पुणे की कठोर शहरी वास्तविकताओं से अपने लिए कहानी के पात्र ढूंढे हैं।

उन्होंने खुद को एक सामान्य गृहिणी तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि अपनी इच्छाओं और असंतोष के बारे में खुलकर लिखा। माधवीकुट्टी 1973 में प्रकाशित अपनी आत्मकथा 'एण्टे कथा' से मलयालम महिला लेखन में नए आयाम लाने में सफल रहीं। 1984 में साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामांकित, माधविकुट्टी ने एक राजनीतिक दल, लोक सेवा पार्टी का गठन किया और उसी वर्ष तिरुवनंतपुरम से संसद के लिए चुनाव लड़ा। प्रसिद्धि के साथ–साथ विवादों में रहने वाली माधवीकुट्टी ने 1999 में इस्लाम धर्म अपना लिया और कमला सुरैया के नाम से जानी गईं।

यह यात्रा, जो नालापाट तरवाड़ के प्रांगण से शुरू हुई, 2009 में तिरुवनंतपुरम के पालयम जुमा मस्जिद में अपने अंतिम विश्राम स्थल पर पहुंची। केरल में वे 'माधवीकुट्टी' के उपनाम से लिखी अपनी लघु कहानियों और जीवनी से प्रसिद्ध हुईं। उन्हें 1984 में साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया था। अनाथ माताओं और महिलाओं की सुरक्षा और मानवीय कार्यों के लिए लोकसेवा चैरिटेबल ट्रस्ट नामक संस्था उन्होंने शुरू की थी। माधवीकुट्टी ने नालपाट में उनका पैतृक घर केरल साहित्य अकादमी को सौंप दिया था। महिलाओं के यौन अधिकार और आकांक्षाओं के बारे में उन्होंने खुलकर लिखा।

वे केरल के एक विशेष युग में पली–बढ़ी थीं, साहित्यिक हलकों में, लेखिका माधवीकुट्टी के पास प्रेमियों और नफरत करने वालों की अपनी हिस्सेदारी थी। मुझे माधवीकुट्टी की लेखनी से प्यार हो गया। उनका लेखन पाठकों अंदर के भ्रम की छाया में लहर की तरह हिलोरें ले रही थी। शायद साहसिक और सुंदर विवाद ने उनके लेखन को प्रेरित किया होगा। यह एक कलात्मक क्रांति है कि उन्होंने प्रेम, अलगाव, निराशा और तीव्रता से भरा एक कला साम्राज्य बनाया है, जिसकी यात्रा पहले कभी किसी ने नहीं की थी। जैसे केरल दो भागों में बंट गया, माधवीकुट्टी के साथ और उसके बिना।

मलबार की 'प्रेम की रानी' माधवीकुट्टी आज भी हमें आकर्षित करती हैं, मोमबत्ती की तरह जलती रहती हैं जो कभी नहीं बुझती। वह आज भी केरल के समकालीन साहित्यिक आंदोलन में एक मजबूत स्तंभ बनी हुई हैं, वह भी एक महिला।

एक पत्नी, एक प्रेमिका और एक माँ होने के नाते, लेखिका माधवीकुट्टी ने हमें एक तितली की तरह आकर्षित किया जो किसी भी चीज तक सीमित नहीं थी। वह आजादी के बाद भारत की सर्वश्रेष्ठ महिला लेखिका बनीं।

माधविकुट्टी का जिक्र आते ही नीर मातलम की छवि धीरे–धीरे उन लोगों के भी दिलों में भी घर कर जाती है जिन्होंने इसे नहीं देखा है। पूरी दुनिया को नीरमातलम की खुशबू से परिचित कराने वाली कमला, माधविकुट्टी या कमलादास वास्तव में पुन्नयुरकुलम की मिट्टी में रची–बसी थीं। माधवीकुट्टी ने मलयाली लोगों को 'नीर मातलम' की खुशबू के साथ–साथ 'नष्टपेट्टा नीलांबरी' 'नेयपायसम'में मां की खुशबू के बारे में बताया। लेकिन मलयालम ने माधवीकुट्टी को अपमान को छोड़कर कुछ नहीं लौटाया। जब हमने सुना कि माधवीकुट्टी ऐसी बातें कह रही हैं जो नहीं कही जानी चाहिए, तो हम मलयाली, जो हमेशा नैतिकता की भावना रखते हैं, उन पर आरोप लगाया। एक हकीकत ये भी है कि हमें इसे समझने में बहुत देर हो चुकी है।

माधविकुट्टी ने पुन्नयुरकुलम की नीरमातलम की गंध से दुनिया को परिचित कराया। कोलकाता में शहरी जीवन के बावजूद, कमला अपने दिल से पुन्नयुरकुलम में रहती थीं। मलयालम आज की कमला सुरैया को नहीं भूल सकता, जिन्हें बाहरी दुनिया प्यार से 'कमलादास' और मलयाली 'माधवीकुट्टी' कहती है। माधवीकुट्टी के रूप में कमला सुरैया की सफलता यह है कि जिन लोगों ने उन बातों को चिल्ला–चिल्लाकर कहने का आरोप लगाते हुए अपनी आँखें घुमा लीं, जो एक लड़की को नहीं कहनी चाहिए, उन्होंने उन अक्षरों को अपने दिमाग में कॉपी कर लिया।

माधविकुट्टी, कमला दास अपनी रचनाओं में ओजस्वी आवाज केलिए लोकप्रिय है। समकालीन भारतीय – अंग्रेजी साहित्य के प्रमुख कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। अन्य कवियों के विपरीत उनकी कविता, 19वीं

सदी के रोमांटिक प्रेम से मुक्त है और एक विद्रोही महिला, एक नई महिला के स्पष्ट स्वर उनमें हमें मिलते उसने ऐसे विषयों को चुना है जिन्हें शालीनतापूर्वक बाहर रखा गया है।महिला कामुकता कि उनकी जोरदार अभिव्यक्ति और लेखन में अपराध–स्पष्टता उन्हें भारतीय कवियों में के बीच एक विद्रोही प्रतीक बनाती है। उनकी कविताएँ भारतीय हाशियेकृत महिलाओं की चुप्पी को आवाज देती है जो पितृ सत्तात्मक आधिपत्य की निंदा करती है। कमलादास, कमला सुरय्या एक अनुकरणीय नई महिला है जो अन्य सभी महिलाओं के साथ अपने अनुभव का साझा करके सार्वभोमिक नारीत्व की आवाज उठाने की कोशिश की है। अपनी रचनाओं में वे समाज में अपनी दबी हुई स्थिति के बारे में खुलकर आवाज देती है और अपनी दुःख की कहानियाँ साझा करती हैं। वे कहती हैं "अव्यक्त सभी दर्द और अनकही रह गयी दुखद कहानियों ने मुझे लापरवाही से और विरोध में लिखने के लिए मजबूर कर दिया।"

माधविकुट्टी, कमलादास, कमला सुरय्या आदि नाम से साहित्य में विख्यात है। वे भारतीय साहित्य की एक प्रसिद्ध आइकन है जो मुख्य रूप श्से अपने लेखन में अपनी बेबाक आवाज के लिए जानी जाती है। वह एक विशिष्ट भारतीय व्यक्तित्व में लिखती हैं। उनकी रचनाओं ने उन विषयों को सामने लाने की कोशिश की है जिन्हें महिला रचनाकारों ने हमेशा दूर रखा था। उनकी रचना उनके व्यक्तिगत अनुभवों को दर्ज करती है जिसमें स्त्री संवेदनायें अभिव्यक्त होती है। मुख्यतः विवाह और सेक्स के क्षेत्र में। उन्होंने महिलाओं के लिए दिए गए घृणित पर्दों पर सवाल उठाकर समाज का पुनर्मूल्यांकन करने की कोशिश की है। "एन इंट्रोडक्शन"," समर इन कलकत्ता" के संग्रह में प्रकाशित कमला दास के जीवन और स्वयं के साथ उनके संघर्ष का विस्तृत विवरण है।

उनकी अधिकांश कविताओं का विषय अधूरे प्यार और प्यार के विषय पर आधारित हैं। वे प्रेम के मोहभंग के बारे में, प्रेम के कभी पूर्ण न होने की पीड़ा के बारे में उसके घावों के बारे में लिखती हैं। उनकी कविताओं में जो विद्रोह है वह उनके सभी असंतोष और मानसिक आघातों का ही बयान करती हैं। वे कविताओं में अपने जीवन को दर्ज करती हैं। वे विशिष्ट आवाज के साथ बोलती हैं और विभिन्न मनोदशाओं में प्रेम प्रदर्शित करती हैं।" वह 'विशिष्ट आवाज' के साथ बोलती है और विभिन्न मनोदशाओं में प्रेम प्रदर्शित करती है। पुरुष–महिला संबंधों का 'आक्रामक रूप से स्वतंत्र' मूल्यांकन देता है, अत्यधिक 'सहजता' के साथ सबसे 'अंतरंग प्रतिक्रियाओं' को रिकॉर्ड करती है"[2]।

कमला दास 'एन इंट्रोडक्शन' में नारीवाद, समान अधिकार, स्वतंत्रता आदि विषयों पर आवाज उठाती हैं। यह कविता स्पष्ट नारीवादी कथन है. सभी स्त्रियों केलिए स्वतंत्रता की वकालत करती है।

कमला दास की पहचान की खोज 'सीधे तौर पर एक पुराने सामाजिक ढांचे की संतान है, जो स्त्री व्यक्तित्व के विनाश की ओर उन्मुख है'।[3] वह नारीवादी समस्याओं, महिला स्व की खोज में निहित खतरों के बारे में बात करती है। 'एक परिचय' स्पष्ट रूप से अपनेपन की उसकी लालसा को व्यक्त करता है। वह 'पुरुषों की दुनिया' के साथ संघर्ष में आती है जो 'महिलाओं को अपनेपन के नकली बुलबुले में कैद रखती है।'[4] सिमोन डी ब्यू–वोइर ने पहली बार अपनी उल्लेखनीय रचना द 'सेकेंड सेक्स' में 'महिला के रूप में अन्य'।[5] का विचार प्रस्तुत किया।

कमला दुनिया में अपनी मौजूदगी बढ़ाना चाहती है। वह स्वयं होने केलिए बनी है। उनके शब्दों में, "एमी बनो या कमला बनो या बेहतर फिर भी माधविकुट्टी बनें। अब एक नाम, एक भूमिका चुनने का समय आ गया

है।"[6] वह अपनी खुद की पहचान पर विचार करती है क्योंकि वह अब 'कमला', 'एमी' या इससे भी बेहतर 'माधविकुट्टी' हो सकती है। स्वयं बनने की इच्छा पुरुषों के दुर्भावनापूर्ण चंगुल और बाँझ रिश्तों से मुक्ति का एक साधन है। उसका घायल स्त्रीत्व दृढ़तापूर्वक पहचान और स्वतंत्रता की खोज करना चाहता है – चाहे वह एमी, कमला या माधवीकुट्टी बनकर हो। वह स्वयं को परिभाषित करने के लिए आत्म–जागरूकता, आत्म–अन्वेषण और आत्म–निरीक्षण में संलग्न रहती है।

आदमी 'हर आदमी' है, उनकी राय में, वह 'हर पुरुष' की तरह है, जिसे अपनी शारीरिक इच्छा को पूरा करने के लिए एक महिला की आवश्यकता होती है, जैसे हर महिला अपनी आत्मा की प्यार की लालसा को पूरा करने के लिए एक पुरुष की तलाश करती है। यह पूछे जाने पर, 'तुम कौन हो,' वह उत्तर देता है, 'यह मैं हूं'[7] वह खुद को सर्वोच्च पुरुष अहंकार 'मैं' से परिभाषित करता है। और यह 'मैं' उसे कभी भी जीत सकता है, वह उसकी स्वतंत्रता पर 'म्यान में तलवार' से हमला कर सकता है।"

पितृसत्तात्मक समाज की सत्ता की राजनीति को यहाँ बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वह पुरुष के लिए पूरी तरह से उसके पुरुष अहंकार और उसके स्वामित्व की भावना को पूरा करने के एक उपकरण के रूप में मौजूद है। 'मैं' स्वीकार करता है कि वह 'बारह बजे शराब पीता है', 'प्यार करता है' और 'हँसता है' लेकिन इन सबके बाद, उसे एक महिला के सामने अपनी इच्छा शक्ति खोने के विचार पर शर्म आती है। अंत में, भूमिका में उलटफेर होता है जब कवि घोषणा करता है : मैं पापी हूं, मैं संत हूं। मैं प्रियतम और विश्वासघाती हूँ। मेरे पास ऐसी कोई खुशी नहीं है जो आपकी नहीं है, कोई दुख नहीं है जो आपकी नहीं है। मैं भी अपने आप को आई कहता हूँ।"[9]

कमला ने उन लोगों के जवाब में बहादुरी से लिखा, जिन्होंने आपत्ति जताई थी और उनके गंदे होने का उपहास उड़ाया था। उन्होंने लेखन के माध्यम से अपनी दुनिया बनाई और उसमें रहे। इसी बीच माधविकुट्टी कमला सुरैया ने कृष्ण की छवि को अल्लाह में बदल दिया और कई लोगों को ये बात हजम नहीं हुई। वे उसके लिए अपना कबर भी देने में सक्षम थे।

हमारे पास कोई अन्य महिला लेखिका नहीं है जिसने कहानियों को इतनी तीव्रता से, इतनी स्वाभाविकता से, इतनी मासूमियत से कहा हो। लेकिन माधवीकुट्टी ने अपने लेखन में महिला लेखन की अपार संभावनाओं का जश्न मनाने की कोशिश नहीं की है। उनके अपने पत्र ही उनकी सांस लेने वाली हवा थे। बुढ़ापे में माधवीकुट्टी फिर से मलयालम के परिवेश से ऊब गए और दूसरे देश चले गए। उन्होंने पुन्नयुरकुलम को अपने सपनों की भूमि केरल साहित्य अकादमी को सौंप दिया। कमलादास को 1984 में साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए नामांकित किया गया था।

माधवीकुट्टी अपनी कविताओं और हृदयस्पर्शी कहानियों के लिए प्रसिद्ध हुईं। 1999 में सभी को आश्चर्यचकित करते हुए उन्होंने कृष्ण की अवधारणा को त्याग दिया और अल्लाह में विश्वास करना शुरू कर दिया और अपना नाम बदलकर कमला सुरैया रख लिया। माधविकट्टी की कोई भी बात बर्दाश्त न कर पाने के कारण कुछ नैतिकतावादी उन्हें पत्र और फोन कॉल के जरिए परेशान करते रहे। माधवीकुट्टी कई बार कई इंटरव्यू में मलयाली लोगों की इस मानसिकता के बारे में दर्द भरी बातें कर चुकी हैं। माधवीकुट्टी हर मलयाली का

व्यक्तिगत गौरव है। आस्था, धर्म, धर्म परिवर्तन आदि जैसे व्यक्तिगत मामलों के लिए जिम्मेदार ठहराए बिना उन्हें पढ़ने की जरूरत है। हमें मलयालम लेखन की उस बिल्कुल अलग शैली पर गर्व करना में चाहिए।

सन्दर्भ सूची :-

1. कौरा, 1995, पृष्ठ 165
2. वृंदा नाबर, 1994, पृष्ठ 20
3. विजयवाणी, 2018, पृष्ठ 110
4. यू. दास, 2018, पृष्ठ 105
5. ब्यूवोइर, 1956, पृष्ठ 16
6. सुरय्या, 1965, पृष्ठ 62
7. सुरय्या, 1965, पृष्ठ 62
8. सुरय्या, 1965, पृष्ठ 62
9. सूरय्या, 1965, पृ. 62

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 109-115

विद्यापति की पदावली में भक्ति भावना

नयन कुमारी, शोध छात्रा,
डॉ. विनोद कुमार शर्मा, शोध निदेशक एवं सह प्राध्यापक
हिंदी विभाग, डॉ. सी. वी. रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

शोध सार :–

चौदहवीं–पन्द्रहवीं सदी के विलक्षण प्रतिभा के धनी विद्यापति ने भक्ति साहित्य को एक नई दिशा प्रदान किया है। उनकी पदावली में प्रेम, समर्पण एवं आध्यात्मिकता का अद्‌भुत संगम दिखाई पड़ता है। उनकी अधिकांश कृतियां संस्कृत में रचित हैं, किन्तु साथ ही साथ अवहट्ठ तथा मैथिली में भी उनको समान अधिकार प्राप्त है। उनकी रचनाएं केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने भक्ति को प्रेम, समर्पण, और सामाजिक समानता के माध्यम से व्यक्त किया। उनकी कविताओं में भक्ति और श्रृंगार का जो अद्‌भुत संगम है, वह भक्तिकालीन हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करता है। विद्यापति की पदावली आज भी भारतीय भक्ति साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

कुंजी शब्द :– आलम्बन, आध्यात्मिक, वैष्णव, भावना, लौकिक, समर्पण, आराधना, मिलन।

अध्ययन विधि :–

प्रस्तुत शोध मुख्य रूप से अध्ययन और विश्लेषण पर आधारित है। इस शोध कार्य में मैथिल कोकिल विद्यापति की कृतियों एवं सम्बन्धित अन्य लेखकों द्वारा प्रकाशित सामग्री को अध्ययन के रूप में ग्रहण किया गया है। साथ ही शोध की समीक्षात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

– विद्यापति की भक्ति–भावना का सम्यक व्याख्या करना।
– विद्यापति की भक्ति भावना के गहन दार्शनिक आयामों का विश्लेषण करना।
– विद्यापति की कृतियों का साहित्यिक, आध्यात्मिक व सामाजिक उपादेयता को निरूपित करना।

मूल आलेख :–

आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के विलक्षण प्रतिभा के धनी कवि के रूप में विद्यापति का नाम लिया जाता है। विद्यापति भारतीय साहित्य के अद्वितीय रचनाकारों में से एक हैं। वे 14वीं–15वीं शताब्दी के महान कवि थे। उन्हें 'मैथिल कोकिल' के नाम से भी जाना जाता है। उनकी अधिकांश कृतियां संस्कृत में रचित हैं, किन्तु साथ ही साथ अवहट्ठ तथा मैथिली में भी उनको समान अधिकार प्राप्त है। आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के विलक्षण प्रतिभा के धनी कवि के रूप में विद्यापति का नाम लिया जाता है। विद्यापति भारतीय

साहित्य के अद्वितीय रचनाकारों में से एक हैं। वे 14वीं–15वीं शताब्दी के महान कवि थे। उन्हें 'मैथिल कोकिल' के नाम से भी जाना जाता है। उनकी अधिकांश कृतियां संस्कृत में रचित हैं, किन्तु साथ ही साथ अवहट्ट तथा मैथिली में भी उनको समान अधिकार प्राप्त है।

शब्द 'भक्ति' की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है। इसका अर्थ 'भजना' अथवा 'सेवा करना' होता है। अपने इष्ट के प्रति श्रद्धा और समर्पण भाव ही भक्ति है। 'पदावली' उनकी श्रेष्ठतम कृति है। उनकी लोकप्रियता का श्रेय उनकी रचना पदावली को जाता है। पदावली के भक्ति सम्बन्धी पदों के संदर्भ में आनन्द दीक्षित का कथन है –' भक्ति के क्षेत्र में विद्यापति किसी भी सम्प्रदाय से नहीं जुड़ते। कृष्ण, शिव, गंगा आदि के प्रति आत्मनिवेदन करते हैं।'[1]

उनकी रचनाओं में भक्ति, श्रृंगार व प्रेम का अनूठा संगम देखने को मिलता है। उनकी पदावली में विशेष रूप से कृष्ण–भक्ति पर आधारित पदों का बाहुल्य है, जिसमें भगवान कृष्ण और राधा के प्रेम का मार्मिक वर्णन किया गया है। विद्यापति की पदावली भारतीय भक्ति साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जिसमें उनकी गहन भक्ति भावना झलकती है।

विद्यापति का जीवन और साहित्यिक पृष्ठभूमि :–

विद्यापति मिथिला के रहने वाले थे। उनकी भाषा प्रधानतः अवहट्ट और मैथिली थी किन्तु उनकी काव्य–शैली में संस्कृत साहित्य का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। विद्यापति के समकाल में वैष्णव भक्ति आंदोलन अपने चरम पर था। उन्होंने अपनी पदावली में अपनी भक्ति भावना को अभिव्यक्त किया। उनके साहित्य में लौकिक और पारलौकिक प्रेम का सुंदर संयोग देखने को मिलता है। डॉ श्यामसुंदर दास का स्पष्ट मत है – 'विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रेमलीला का जो विशद वर्णन किया है, उस पर विष्णु स्वामी और निम्बार्क मतों का प्रभाव प्रत्यक्ष है।'[2]

विद्यापति की पदावली में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें उनकी उद्दात भक्ति भावना दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने न केवल श्रीकृष्ण की उपासना की बल्कि शिव की भक्ति में अवहट्ट एवं संस्कृत में कई ग्रन्थो की रचना की। अन्य स्थान पर उन्होंने मां दुर्गा के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रदर्शित किया है तो कहीं पर अग्नि, सूर्य, गणेश, गंगा आदि की भक्ति की है। यही कारण है कि उन्हें कोई शैव कहता है तो कोई वैष्णव कहता है। कोई उन्हें शाक्त कहकर भक्त कवियों में स्थान देता है तो कोई एकेश्वरवादी के रूप में स्थापित करता है। उनकी पदावली में इस प्रकार के रचित पद इसकी पुष्टि करते हैं। मां भवानी की वंदना में रचित उनका पद इस प्रकार है :–

'जय जय भैरवि असुर भयाउनि पशुपति भामिनि माया।
सहज सुमति वर दिअओ गोसाउनि अनुगति गति तुअ पाया।'

'कुछ विद्वान आलोचक विविध तथ्यों के आधार पर विद्यापति को भक्त कवि सिद्ध करते हैं। बाबू ब्रजनन्दन विद्यापति को वैष्णव भक्ति से ओतप्रोत मानते हैं, विपिन बिहारी मजूमदार का कथन है कि पदावली में अंकित राधा कृष्ण के श्रृंगार–चित्रों में माधुरी भाव की भक्ति ही प्रस्फुटित है।'[3]

विद्यापति ने अपनी रचनाओं के माध्यम से संगीत पर भी गहरे रूप से प्रभावित किया है। उनकी कविताएं संगीत के साथ संयोजित होने के कारण ज्यादा प्रभावशाली एवं गेय बन पड़ी हैं। उनके संगीत ने भारतीय शास्त्रीय संगीत पर भी गहन प्रभाव डाला है :–

राधा संग नाचे, कृष्ण के साथ।
प्रेम की माया, जग में छाए बात।।

पदावली में भक्ति का स्वरूप :-

विद्यापति की पदावली उनकी भक्ति भावना से ओतप्रोत रचना है। उनकी भक्ति मुख्यतः वैष्णव परंपरा से जुड़ी है, जिसमें भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम और समर्पण को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। विद्यापति ने अपनी कविताओं में भक्त और भगवान के बीच के संबंध को भावनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

'कविश्रेष्ठ विद्यापति का स्वयं का व्यक्तित्व उनके भक्त होने का प्रमाण है। वे शैवों की तरह त्रिपुंड लगाते एवं रुद्राक्ष धारण करते थे शाक्तों का प्रतीक त्रिपुंड के बीच लाल टीका लगाते थे। सिर पर पाग आदि के कारण आपादमस्तक भक्त कहलाने के अधिकारी हैं।'[4]

विद्यापति के भक्ति भावपूर्ण रचनाओं ने भारतीय भक्ति आंदोलन को प्रभावित किया, विशेषकर वैष्णव परम्परा में। उनके पदों ने भक्तों को भगवान के प्रति गहरा प्रेम एवं समर्पण को प्रेरित किया। डॉ. ग्रियर्सन ने विद्यापति को भक्त कवि मानते हुए कहा है – 'विद्यापति के पद लगभग सब के सब वैष्णव पद या भजन हैं। जिस प्रकार सोलोमन के गीतों को ईसाई पादरी पढ़ा करते हैं, और जरा भी कामवासना का अनुभव नहीं करते हैं।'[5] उनकी भक्ति भावना निम्न स्तरों पर प्रकट होती है :-

1. **भगवान कृष्ण की स्तुति :** विद्यापति ने भगवान कृष्ण को प्रेम और भक्ति का सर्वोच्च आदर्श माना है। उनकी रचनाओं में कृष्ण का चित्रण नटखट बालक, प्रेमी, और दैवीय रूप में वर्णन किया गया है।

'बाबू श्यामसुंदर दास विद्यापति की प्रेम लीला में भक्ति–भावना के दर्शन करते हैं और उन्हें विष्णु स्वामी तथा निम्बकाचार्य के मतों से प्रभावित मानते हैं। पर क्या विद्यापति जिस दरबारी माहौल में रहते थे उसका प्रभाव उन पर नहीं पड़ सकता था या नहीं पड़ा है।'[6]

2. **राधा-कृष्ण के प्रेम का चित्रण :** उनकी पदावली में राधा–कृष्ण के प्रेम का वर्णन भक्ति के माध्यम से हुआ है। यहाँ यह प्रेम केवल लौकिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक भी है, जिसमें राधा और कृष्ण का प्रेम आत्मा और परमात्मा के मेल के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत हुआ है। उनका राधा कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भक्ति के उस चर्मोत्कर्ष को प्रकट करता है जहाँ प्रेमी और भक्त एकाकार हो जाते हैं।

विद्यापति के पदों को बंगाल एव मिथिला में धार्मिक उत्सवों व कीर्तनों में गाया जाता है। 'डॉ. उमेश मिश्र ने विद्यापति को इस आधार पर भक्त कवि सिद्ध किया है तथा कहा है– 'बंगाल में विद्यापति वैष्णव कवि तथा भक्त कवि कहलाते थे। इसका कारण यह है कि विद्यापति की कविता ने राधा–कृष्ण की भक्ति की थी तथा उसी तरह की कविता रचने की जड़ बोई थी।'[7]

विद्यापति की कविताओं में विरह और मिलन का वर्णन गहन भक्ति भावना को प्रकट करता है। राधा और गोपियों के माध्यम से भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम और उनके वियोग में व्यथा को प्रस्तुत किया गया है। यह विरह की पीड़ा केवल प्रेमी युगल की पीड़ा न होकर भक्त की अपने आराध्य से मिलन की तीव्र इच्छा का प्रतीक है।

कृष्ण-भक्ति का चित्रण :-

विद्यापति की पदावली का मुख्य विषय कृष्ण–भक्ति है। उनकी रचनाओं में भगवान् कृष्ण की बाल–लीलाओं, रासलीला, और गोपियों के साथ उनके प्रेम–प्रसंगों का वर्णन अत्यंत जीवंत व मार्मिक प्रस्तुति हुई है। विद्यापति

की भक्ति भावना केवल पूजा या आराधना तक सीमित न होकर यह प्रेम और समर्पण के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। अपने पद में वे कहते हैं :–

'जुगल चरण कमल बंधु मन,
तहं कर नत मुनि–गंधु।
आनन्द सागर विपुल अमल,
सहजे त्रिभुवन बंधु।।'

यहां इस पद में भगवान कृष्ण के चरणों की महिमा और उनके प्रति असीम श्रद्धा प्रदर्शित किया गया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है – 'इसका वक्तव्य विषय राधा तथा अन्य गोपियों के साथ–साथ श्रीकृष्ण लीला है। राधा और कृष्ण के प्रेम प्रसंगों को यह पुस्तक प्रथम बार उत्तर भारत में गेय पदों में प्रकाशित करती है। इस पुस्तक के पदों ने आगे चलकर बंगाल, असम और उड़ीसा के वैष्णव भक्तों को खूब प्रभावित किया और यह उन प्रदेशों के भक्ति साहित्य में नई प्रेरणा और नई प्राणधारा संचालित करने में समर्थ हुई।'[8]

राधा-कृष्ण प्रेम और भक्ति :-

विद्यापति ने राधा–कृष्ण के प्रेम को अपनी भक्ति भावना का आधार बनाया। उनके पदों में राधा और गोपियों के माध्यम से कृष्ण के प्रति गहन प्रेम और समर्पण को व्यक्त किया गया है। यह प्रेम लौकिक होते हुए भी भक्ति का मार्ग बन जाता है। राधा का विरह, उनकी व्याकुलता, और कृष्ण के प्रति उनकी उत्कट प्रेम भावना विद्यापति की रचनाओं में गहराई से व्यक्त हुई है। कृष्ण की रासलीलाओं एवं राधा कृष्ण के प्रेम के वर्णन में उनकी वैष्णव भक्ति की गहराई प्रकट होती है। एक पद में राधा कहती हैं :–

"हरि हेरि हरषि कहँ जाइ,
मिलल पिय सखि दुखहिं मिटाइ।
कहहिं विद्यापति सहज सुहाय,
जिनका नाम सुनि मिटय पियभाय।"

यहां राधा के प्रेम में भक्ति का स्पष्ट रूप झलकता है, जहां भगवान का नाम ही उनके लिए समस्त पीड़ाओं का शमन करता है। विद्यापति की पदावली में ईश्वर के प्रति उनका आत्मसमर्पण व दास्य भक्ति इस प्रकार देखने को मिलता है :–

'माधव बहुत मिनती कर तोरि।
दए तुलसी तिल देह समरपल, दया जनि छाड़व मोहि।।
भनई विद्यापति अतिशय कातर, तरइते ई भव–सिंधु।।
तुअ पद–पल्लव केर अवलम्बन, तिला एक देह दीनबन्धु।।

भक्ति और श्रृंगार का संगम :-

विद्यापति की पदावली में भक्ति और श्रृंगार का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। उनके पदों में श्रृंगार रस की प्रधानता है, किंतु यह श्रृंगार केवल लौकिक न होकर आध्यात्मिक भी है। उन्होंने प्रेम और भक्ति को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में प्रदर्शित किया है। श्रृंगार रस के माध्यम से विद्यापति ने भगवान कृष्ण के प्रति भक्ति को उच्चतम स्तर तक पहुंचाया है। उनके अनुरूप प्रेम के उच्चतम स्तर पर भक्ति ही शेष रह जाती है।

एक उद्धरण में हम देख सकते हैं –

'सुन रसिया अब न बजाय विपिन बंसिया।
बार बार चरनारबिंद गहि सदा रहब बन दसिया।।'[9]

शुक्ल जी विद्यापति को शैव कहकर राधा–कृष्ण के वर्णन को श्रृंगार भाव से प्रेरित कहते हैं। कवि विद्यापति को यदि शैव मान लिया जाये तो भी यह कैसे कह सकते हैं कि वे अन्य देवी–देवताओं को श्रृंगारिक चक्षुता से देखते थे। अथवा वे अन्य के प्रति अश्रद्धावान थे। विद्यापति शैव, शाक्त या भले ही वैष्णव रहे हों, वे हिंदू अवश्य थे :–

'भल हर हरि भल तुअ कला, खन पित वसन खनहीं बघछला।
खन पंचानन खन भुज चारि, खन संकर खन देव मुरारि।।'[10]

विरह-भाव में भक्ति :-

विद्यापति की पदावली में विरह भाव का एक महत्वपूर्ण रूप है। राधा और गोपियों के माध्यम से उन्होंने विरह–जनित पीड़ा को भक्ति के रूप में अभिव्यक्त किया है। यह विरह आत्मा और परमात्मा के मिलन की आकांक्षा के रूप में व्यक्त हुआ है। इस संदर्भ में राधा कहती हैं :–

"मिलि हरि सखि मोर भय गेल,
सकल दुख भंजि दिल प्राण।
विद्यापति कह स्नेहमय,
रहय नयन कर मान।"

यहां विरह में भक्ति का जो गहन स्वरूप हुआ है, वह अत्यंत प्रभावशाली है।

शिव भक्ति :-

विद्यापति की रचनाओं में शिव भक्ति भी प्रमुखता से दिखाई पड़ती है। अपनी कविताओं में उन्होंने प्रभु शिव को सखा, प्रेमी व मार्गदर्शक के रूप में चित्रित किया है जहां शिव की करुणा, महिमा और उनके प्रति उनके अनन्य प्रेम का वर्णन मिलता है। उनके भगवान् शिव न केवल सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में प्रस्तुत हुए हैं बल्कि एक मित्र के रूप में भी दिखाई पड़ते हैं जो अपने भक्तों के सभी पीड़ाओं का निवारण करते हैं। वे शिव के प्रति घोर आत्मीय एवं गहरा प्रेम प्रकट करते हैं :–

शिवशंकर कृपालु, प्रेम में लीन।
भक्तों के दुख हरे, अनन्त की बीन।।

विद्यापति के विषय में कुछ किंवदंतियां हैं जो उन्हें भक्त कवि सिद्ध करते हैं। 'कहा जाता है कि विद्यापति भगवान शिव के अनन्य भक्त थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान शिव गंवार का भेष बनाकर विद्यापति के घर आ गए। विद्यापति को शिवजी ने अपना नाम उगना बताया।'[11]

इस प्रकार भगवान भक्त के प्रेम के वशीभूत हैं। जहां प्रेम है वहीं प्रिय है। दूसरी किंवदंती यह है कि जब विद्यापति अपने अंत समय गंगा स्नान की इच्छा से तट की ओर जा सकने में असमर्थ हो रहे थे तो स्वयं गंगा उन तक पहुंचकर दर्शन दिए। उनके पद और नचारी इस बात के प्रमाण हैं कि वे एक उच्च कोटि के भक्त कवि थे। ईश्वर के प्रति निष्ठा और दैन्यता पूर्ण हृदय का उद्गार उनकी पदावली के पद में द्रष्टव्य है :–

जय जय संकर, जय त्रिपुरारी। जय अध पुरुष जयति अध नारी।।
आध धबल तनु आधा गोरा। आध सहज कुछ आध कटोरा।।
आध हड़माल आध गजमोती। आध जानन सोह आध बिभूति।।
आध चेतन मति आध भोरा। आध पटोर आध मुंजडोरा।।[12]

भक्ति का सामाजिक दृष्टिकोण :-

'विद्यापति का साहित्यिक प्रभाव मैथिली भाषा को समृद्ध करने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। उनकी कविताओं ने मैथिली को एक उच्च साहित्यिक स्थान दिलाया और इसे व्यापक जनसमूह तक पहुंचाने में सहायक सिद्ध हुआ। उनकी सरल और सुलभ भाषा ने मैथिली साहित्य को आम जनता के बीच लोकप्रिय बनाया।'[13]

विद्यापति की भक्ति भावना केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक भी है। उन्होंने अपनी रचनाओं में भक्ति को सभी जातियों, वर्गों, और लिंगों के लिए एक समान बताया है। उनकी भक्ति भावना सामाजिक बंधनों को तोड़कर सभी को ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण का संदेश देती है। उनकी कविताएं न केवल प्रभु के प्रति प्रेम व समर्पण व्यक्त करती हैं बल्कि मानव के आध्यात्मिक यात्रा व आंतरिक अनुभवों को उजागर करती हैं। विद्यापति की भक्ति भावना को जीवन की राह दिखाती हैं जो मनुष्य को आत्मिक शुद्धता और सांसारिक बन्धनों से मुक्त करती हैं। 'विद्यापति बहुत लोक प्रचलित कवि थे तभी तो कितने ही भावमुग्ध कवि विद्यापति की नाना रस समन्वित गीत–माधुरी के अनुकरण पर उसी प्रकार की रचना करने लगे। कितनों ने तो अपनी निजी रचनाओं में भी विद्यापति की भणिता (छाप) जोड़ दी है।'[14]

अपने जीवन के अंत समय में विद्यापति को केवल ईश्वर के चरणों का ही एकमात्र आलम्बन बचता है। उन्होंने जगत के नश्वरता, स्वार्थपरता एवं ग्लानि का चित्रण इस प्रकार किया है :–

'जतने जतेक धन पाये बटोरलु, मिलि मिलि परिजन खाए।
मरनक बेरि हरि केओ नहिं पूछत करम संग चलि जाए।।
तुअ रद परिहरि पाप– पयोनिधि, पारक कओन उपाए।।'

निष्कर्ष :-

विद्यापति ने भक्ति साहित्य को एक नई दिशा प्रदान किया है। उनकी पदावली में प्रेम, समर्पण एवं आध्यात्मिकता का अद्भुत संगम दिखाई पड़ता है। विद्यापति की पदावली में भक्ति भावना का गहन और व्यापक स्वरूप देखने को मिलता है। उनकी रचनाएं केवल साहित्यिक नहीं,बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने भक्ति को प्रेम, समर्पण, और सामाजिक समानता के माध्यम से व्यक्त किया। उनकी कविताओं में भक्ति और श्रृंगार का जो अद्भुत संगम है, वह भक्ति साहित्य को एक नई दिशा प्रदान करता है। विद्यापति की पदावली आज भी भारतीय भक्ति साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जो पाठकों को प्रेम और भक्ति के शुद्ध स्वरूप की अनुभूति कराती है। उनकी कविताएं न केवल धार्मिक भावनाओं को जगाती हैं बल्कि गहन दार्शनिक आयामों को भी प्रकट करती हैं।

सन्दर्भ :-

1. दीक्षित, आनन्द प्रकाश, विद्यापति, पृ० –61

2. AI-ITHLIT हिंदी साहित्य, हिंदी काव्य, उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश शासन।
3. www.hindikunj.com, जुलाई– 2023, विद्यापति भक्त या श्रृंगारी कवि।
4. https://m.sahityakunj.net, राजवंश, प्रतिभा, विद्यापति : भक्त या श्रृंगारी? 1 दिसम्बर– 2023
5. यादव, डॉ लालसा प्रसाद, विद्यापति संचयन, पृ० –28
6. www.sieallahabad.org, सिंह, डॉ. अजित, भक्त और श्रृंगारी कवि के रूप में विद्यापति का मूल्यांकन, अंक– 22, मार्च– 2022
7. www.hindikunj.com, जुलाई– 2023, विद्यापति भक्त या श्रृंगारी कवि।
8. द्विवेदी, डॉ हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, पृ०–53
9. सिंह, डॉ शिवप्रसाद, विद्यापति, पृ० –244
10. सिंह, डॉ शिवप्रसाद, विद्यापति, पृ० –241
11. www.livehindustan.com, 31 जुलाई– 2023
12. विद्यापति पदावली, पृ० –150
13. www.sirfal.com, विद्यापति की भक्ति भावना, 23 अक्टूबर– 2024
14. आदिकाल इतिहास एवं साहित्य, विनोबा भावे विश्वविद्यालय (बी.ए. पाठ्यक्रम), पृ०–124

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 116–121

From Tradition to Transformation : Critically Exploring the Influence of Buddhist Education on Indian Society

Pratyashi Saikia Tandon
Assistant Professor, Department of Sociology,
Kamla Arya Kanya P. G. College, Mirzapur, Uttar Pradesh.

Abstract :

India's well-endowed history is fashioned by the admixture of multiplicity of cultures, religions, and philosophies. One of the prominent religions – Buddhism, had a profound impact on the socio-cultural, and religious structure of Indian society. Lord Buddha's teachings emerged as a glowing light that led the way for people to the elevate themselves from the systemic and oppressive practices prevalent in the of society of those times. In this article, I will explore critically the influence and transformative role of Buddhist education system on the ancient traditional Indian society, it's fundamental features and it's relevance in modern times. Based on secondary source, the paper adopts a secondary approach of critical analysis in reviewing existing literature and contents relevant to the study.

Keywords : Buddhism; Buddhist education; modern society; traditional; transformative role; India.

Introduction :

Buddhist education system has its foundation on the life experiences of Mahatma Buddha. It was the first institutionalised residential educational system in India that intended to impart knowledge through teaching, lecturing, instructing, training, studying, learning, etc. (David & Stede, 1975). The objective of Buddhist education is holistic development of a child- moral, intellectual, mental and physical development. Buddhist philosophy had its genesis in India around 6th century B. C. It developed as a backlash against the orthodoxy of Brahmin beliefs and dogmas and raised human thoughts to higher levels of depth and refinement.

The Indian society during the time of Lord Buddha was hierarchically divided into four strata's

defined by a person's birth and profession. The Brahmins occupied the uppermost position in the social rung and established supremacy in society. The Brahmin dominated stratification system led to widespread discrimination against those belonging to the lower strata especially the Shudras. They were denied educational and social rights and treated as 'untouchables'. Against this dominance and oppression, Buddhism, as a religious doctrine emerged. This doctrine or philosophy provided the edifice upon which the Buddhist education system in ancient India developed. Buddha asseverated that highest knowledge or 'Anuttara-Samyak-Sambhodi' cannot be bequeathed from outside but it is a man's basic and underlying nature and anyone who aspires to explore it must essentially dig deeper into the domain of the self.

Purpose of Buddhist Education :

The Buddhist system of education was grounded on the basics principles of life. The three intersecting pillars on which the Buddhist education system was grounded were knowledge, wisdom and reasoning (Manasikara). It aimed at development of knowledge through understanding the realities of life and the real nature of truth. This education focussed on the spiritual, moral and physical development and character building of a person. It also aimed to educate people on preservation, refinement and expansion of culture; open new socio-cultural and economic horizons; cultivating decent social attitudes, morals and practices; welfare of society and social development. The core objective of the Buddhist Education system was to assist in the comprehensive and integrated growth of an individual's personality, be it intellectual, moral, physical or psychic development.

Buddhist education laid emphasis on gaining knowledge through the Buddhist scriptures called Tripitaka based on the teachings of Buddha. A key purpose that guides the teachings of Buddhism is congregation, i.e. bringing all human beings into a homogenised footing and encourage the utmost culmination of human contentment and perfection through wisdom, consciousness, meditation and self-contemplation. The idea of Buddhist education—whether modern or traditional—is to get the student to this liberated state. The technique, or spiritual prescription, combines three different aspects : faith (belief in Buddha-nature which involves emotional conviction and joy at the possibility of being released from suffering); understanding (knowledge of the Buddhist scriptures including Four Noble Truths) and practice (application of Eight-fold path or Ashtanga Marga which entails ethical morality, wisdom and intellectual discipline). Buddhist education aimed at both individual and social advancement. Emphasis was laid on building moral character of individuals, while cultural promotion and social efficiency were stressed on for realising social goals. The objective of education rested on disseminating worldly and realistic knowledge (Nayak, 2012).

Thus, the purpose of education and learning under Buddhism rested on realizing the highest

level of wisdom intrinsic to man. According to Buddha, "If we have wisdom, our thoughts, viewpoints and behaviour will be correct; how then can we suffer when there are no ill consequences to suffer from? Of course, we will be happy." (Verhoeven, 2022). Thus, Buddhist teachings laid emphasis on uncovering the causes of suffering i.e. delusion and acquainted man with the truth that derivation of happiness lies in man's own cognizance of wisdom.

Influence of Buddhist Education in India :

It was through the medium of education that Lord Buddha spread his beliefs and thoughts. As stated in the Buddhist canon, "it is the astonishing feat of instruction" (anusasani patihariya) which Buddha used to propagate education amongst people. Buddhist education influenced Indian society in a number of ways :

Buddhist education emphasized on equality and freedom and laid foundation for a cosmopolitan society in India free from communal narrowness.

Buddhist moral teachings generated a stream of qualities like compassion, nonviolence, and the pursuit of truth in society that proved to be pivotal in the shaping of human personality and character in the then Indian society.

Buddhism introduced the system of organized public institutions and collective learning in India by imparting knowledge through monastries and viharas as against the Ashram's of Brahmanic period.

Buddhist education was non-discriminatory as it could be received by everyone irrespective of caste, creed, religion or wealth. It taught Indian society that education can never be restrictive and prejudiced and freed education from the shackles of wealth and authority.

Until the rise of Buddhism, the medium of instruction was Sanskrit, however, education came to imparted through the language of the common man such as Prakrit and Pali during the Buddhist period.

Buddhist education system also introduced a new pedagogy of teaching and learning by stressing on meditation, self- learning and inclusive and quality education.

Buddhist education also contributed to the development of Hindu logic and philosophy by fostering Comparative study.

Modern Indian society is dominated by science and technology, technological information, cultural globalisation, regional identities, degeneration of religious and moral values, modern lifestyle, intolerance towards others and the like. Guided by scientific reasoning and rational thinking, it is a constantly changing society. Buddhist teachings come as a beacon light in showing the path of individual inquiry to deal with the constantly changing and complex life situations of modern times. The

perception of the basic nature of individual awareness which acknowledges the logical and demonstrative faculty of the mind can highly benefit modern society which is unduly fragmented (Le Dihn Son, 2021).

The Transformative Role of Buddhist Education in Indian Society- A Critical Analysis :

The spread of Buddhist knowledge and teachings led to certain discernible alterations in the educational system of India in vogue during the pre-Buddhist days. Contrary to the Gurukul system of education which was domestic in structure and function as the pupil resided at the residence of the teacher as his family member during the entire span of his education, the Buddhist system of education was monastic education where education was imparted by to Bhikshus at monasteries and viharas which developed into educational institutions. There was increase in the number of subjects taught in Buddhist educational institutes that enabled transmission of knowledge in multifarious areas and disciplines for all- round development of individuals. In the Buddhist schools, study of literature came to be accorded more prominence. In the ancient system of education, the study disciplines included, the Vedas, Vedangas, and miscellaneous systems of science and philosophy (Maheshwari, 2012). During the later periods around fourth century, B.C, studies also included "Varta"- Living or Livelihood which included subjects encompassing agriculture, animal husbandry, cattle rearing, and trade, and "Dandaniti"- Punishment and Force comprising the subjects of law, politics and government.

In the Buddhist educational monasteries and viharas, each pupil, whether young or old was invariably a monk. The teachers too were vowed monks, whose prime tasks consisted of "giving of recitation, holding examination, making exhortations and explaining Dhamma" (Coomaraswamy, 1964). Sanskrit was replaced as a medium of imparting education in the Buddhist institutes schools by the vernacular dialects.

Though the Brahmanic and the Buddhist system of education were similar in many respects, however, there also existed difference in as much as it Buddhism brought education to the reach of common people. Buddhist system of education played a transformative role in the than prevailing society and social system by engendering marked changes in the organisation, structure and administration of education. The social caste system as described by Hindu Dharma was likely one of the biggest factors in the development of Buddhist thought and practice. Buddhism's influence on ancient Indian education resulted in a peculiar coalescence of educational experience. It promoted anti-caste and casteless ideas that were inextricably linked to its values. The hegemonic Brahmin caste system which authorised the Brahmins unmediated access to the divine power through customary rites and practices formerly, became discredited as a privileged class in the Buddhist period. By supplanting the previously independent and autonomous educational institutions and established a

federated system of education with all educational institutions functioning under a common organisation namely, the Sangha. The Buddhist system of education introduced the concept of 'democratic and egalitarian education' in form and spirit as against the predominant 'elitist education' of the time.

The Hindu philosophy as laid down in the Upanishads teach that the only truth or reality is the eternal 'Atma' (Soul) or Brahman. In contrast, Buddhist philosophy and scriptures rests on the truth i.e. all things are impermanent; permanent self is non-existent. Life is full of suffering which results from the desire or urge to live. The desire to live springs from ignorance and flawed knowledge of the ephemeral as eternal and lasting. By removing these delusionary beliefs that unshakeably influenced the earlier society's general thoughts and ideas, Buddhist teachings aimed at liberating people from suffering and attainment of enlightenment. Therefore, Buddhist scholastic system worked towards providing individuals with a pragmatic view of life and world. Moreover, under Buddhist system of education, a social arrangement of comradeship and brotherhood was established by fracturing the delicate and natural bonds of consanguinity and family relationships (Pendharkar & Manmode, 2024) which constituted a key component under the Vedic system.

Conclusion :-

It can be concluded that the Buddha, besides being a profound thinker, was a great teacher and a unique pedagogue. For Buddha, education should be a means to make the student self-reliant. The aims of education should be to dedicate one's life for the good of others. Good education should lead us to emancipation or salvation. Buddhist education system, thus, attempted to reclaim man's intrinsic qualities. It also taught parity and tolerance which stemmed from Lord Buddha's realisation that all conscious beings are endowed with this deep-seated essence and wisdom. In short, a Buddhist education provided the context that espoused self-discovery, stimulated true and right knowledge, and cultivated an urge to help the world.

It cannot be denied that the modern world and its unprecedented progress and development has nothing to extend but uncertainty, instability and antagonism as well as worries, despair and ennui bound to them. Buddhism provides man a few very ingenious and constructive methods to counter these. Therefore, incontestably it can be said that Buddhism plays a significant role in present times. It is the important to propagate Buddha's Dhamma amongst humanity so that it continues to enlighten the lives of mankind in everywhere in the world.

References :

1. Coomaraswamy, Ananda K. (1964). Buddha and the Gospel of Buddhism. New York: Verry, David-Neel, Alexandra. (1977). Buddhism : Its Doctrines and Its Methods. London: B.I.

Publications.
2. Eds. T. W. Rhys Davids & W. Stede. (1921). Pali Text Society, 1921-25. (First Indian reprint, New Delhi: Oriental Books Reprint Corporation, 1975).
3. Le Dihn Son. (2021). Significance of Buddhist Education and it's Role in Modern Society. International Journal of Science and Research. ISSN: 2319-7064.
4. Maheshwari, V.K. 2012. Education in Buddhist period in India. Retrieved on: 02/10/24.Available at: http://www.vkmaheshwari.com/WP/?p=512
5. Martin. Dan. (2022). A History of Buddhism in India and Tibet: An Expanded Version of the Dharma's Origins Made by the Learned Scholar Deyu (32) (Library of Tibetan Classics)
6. Verhoeven, Martin (2022). "What is a Buddhist Education?" Dharma Realm Buddhist University.
7. Retrieved on: 12/11/2024. Available at: https://www.drbu.edu/news/what-is-a-buddhist education/#:~:text=Buddhist%20education%20simply%20stated%20is,regard%20for%20all%20that%20lives.
8. Nayak, B.K. (2012). History, Heritage and Development of Indian Education, New Delhi, India: Axis Books Pvt. Ltd.
9. Pendharkar. Preeti, & Manmode. Kalyani. (2024). Retrieved from: https://books.google.co.in/books/about/History_of_Indian_Education.htmlid=RvMFEQAAQBAJ&redir_esc=y Thakur Publication Private Limited, 1 May 2024 – Education – 231 pages
10. Rousseau, J. J. A. (1970). Discourse on the Origin of Inequality. London.
11. Swami Sivananda. (1991). Religious Education. 1983, Ch. I, Bliss Divine.
12. Hahn.Thích, Nh?t. (1991).The Heart of The Buddha's Teaching. New York: Parallax Press.

Email: tpratyashi@gmail.com
Mobile/Whats App: 7905801107
Address: First Floor, Divyanshkunj, Srikrishna Nagar colony, Pandeypur, Mirzapur,
Uttar Pradesh. PIN: 231001.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 122-131

अंतगड़दशांग सूत्र की वर्तमान प्रासंगिकता

साध्वी देशनाश्री, शोधार्थी,

डॉ. तृप्ति जैन, विभागाध्यक्ष, जैन स्टडीज़, जैन विश्वविद्यालय, बेंगलुरू

शोध सार

इस शोध पत्र के माध्यम से पर्युषण पर्व में परंपरागत रूप से अंतगड़दशांग सूत्र वाचन को वर्तमान युग की प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। पर्युषण पर्व के आठ दिनों में जैन समुदाय का हर आयु वर्ग गुरू भगवंतों से धर्म-दर्शन श्रवण करता आया है, जिसमें अंतगड़दशा सूत्र का वाचन सम्मिलित है। ये आठ दिन एक ऐसा सुअवसर है जहाँ परंपरागत वाचन को आधुनिक तकनीकी में प्रस्तुत करने का प्रयास युवा-बाल वर्ग के साथ प्रौढ़-वृद्ध वर्ग को भी उत्प्रेरित कर सकता है तथा सूत्रों के नवीन प्रयोगात्मक आयाम भी सुझा सकता है। इसी दृष्टि से इस शोध पत्र में अंतगड़दशा सूत्र में निहित जीवन मूल्यों व शिक्षा सूत्रों को देखने का प्रयास किया गया है।

संकेतसूचक शब्द : अंतगड़दशा सूत्र, पर्युषण पर्व वाचन, अंतकृत् केवली, प्रभु महावीर, तीर्थंकर अरिष्टनेमि, जीवन मूल्य, शिक्षा सूत्र, जैन कथा साहित्य।

भूमिका

'मनन' मानव की नैसर्गिक योग्यता है। प्रतिपल उसकी दृष्टि कुछ नवीन जानने को आतुर रहती है। जान कर, देख कर अपनी योग्यता के अनुसार 'मानव मन' मनन भी करता है और रंजन भी। कई बार ये दोनों भूमिकाएँ एक साथ भी घटित होती है। मानव मनोरंजन के विविध प्रकारों में निरंतर रत रहा है। नृत्य-गीत; नाटक-कहानी; हास्य-विनोद आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं से अपना मनोरंजन करता रहा है तो इनके माध्यम से अपने भीतर निरंतर चल रहे मनन-चिंतन को स्वर व मंच भी देता रहा है।

युगों-युगों से नवागंतुक पीढ़ी को सत्य व संस्कृति की समझ देने के लिए तथा प्रज्ञा का जागरण करने के लिए साहित्यिक विधाओं का आलम्बन लिया जाता रहा है। 'साहित्य' इतिहास सदृश नहीं है, जहाँ मात्र तथ्यों को प्रमुखता दी जाती है। साहित्य में 'कथ्य' प्रमुख है। यही कारण है कि भारतीय जन-मानस में आगम, पुराण, लोक कथा-कहानियों के पात्र सदियों से जीवित है। पंचतंत्र की कहानियाँ, बौद्ध जातक कथाएँ, ईसा मसीह के प्रसंग जहाँ जन-सामान्य का रंजन करते आए हैं, वहीं जीवन के अनमोल शिक्षा सूत्र भी खेल-खेल में ही आत्मसात करवा देते हैं।

कहानी, कथा, जीवनी, वृत्तांत आदि जहाँ काल्पनिक भूमि पर जन्म लेकर अमर हुए तो वहीं प्रत्यक्ष जीवन-चरित्रों व जीवन-वृत्तांतों ने मानव-मन को प्रेरित भी किया तथा आश्वस्त भी। जब-जब एक साधारण मनुष्य इन जीवन-चरित्रों के माध्यम से महापुरूषों के संघर्षों को देखता है, जानता है तो अपने जीवन की अवस्था में परिवर्तन हेतु आंदोलित भी होता है व प्रेरक दिशा-निर्देश भी प्राप्त करता है। नित-प्रति आवेगों के उतार-चढ़ाव को भोगता मानव-मन जाने कब इन प्रेरणास्पद चरित्रों से प्राप्त शिक्षा सूत्रों को धारण कर अपने जीवन को एक उर्ध्वगामी दिशा देने में सक्रिय हो उठे; इसीलिए व्यक्ति सामूहिक व व्यक्तिगत स्तर पर कथा-कहानियाँ सुनता-सुनाता रहा है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी भी प्रकार की शिक्षा अथवा जीवन मूल्यों का ज्ञान अथवा साधनागत जीवन के दिशा-निर्देश यदि प्रतीकों, प्रसंगों अथवा कथा-कहानियों के माध्यम से दिए जाएँ, तो वे मानस पटल पर अधिक देर तक जीवित रहते हैं व अधिक प्रभावी सिद्ध होते हैं। भारतीय जन-मानस में आगम, पुराण, लोक कथा-कहानियों के पात्र सदियों से जीवित है। इन चरित्रों व कथानकों के पात्रों के माध्यम से किसी शाश्वत सत्य का उद्घाटन अत्यंत रोचक, जनभोग्य व जन कल्याणकारी होता है।

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी सिद्ध-बुद्ध पुरूषों के अनुभवपूरित ज्ञान की अभिव्यक्ति प्राणी मात्र के आत्मोत्थान के लिए जब निःसृत हुई, तो वह 'आगम' के रूप में जानी गई। विराट व्यापक आगम साहित्य में समाहित ऐसे सार्वभौमिक मूल्य व सिद्धांत, जो अतीत में प्रकाश पुंज की भाँति मनुष्य जीवन को आलोकित करते रहे हैं, वे वर्तमान में भी अत्यन्त उपादेय हैं तथा भविष्य में भी अनंत काल तक कल्याणकारी होंगे। इसी परिदृश्य में 'अन्तकृतदशा सूत्र' में निहित वर्तमान प्रासंगिकता को देखाने का प्रयास किया जा रहा है।

एकादश अंग आगमों में अंतकृतदशा सूत्र का स्थान

वर्तमान में उपलब्ध ग्यारह अंग सूत्रों में 'अंतकृतदशा सूत्र', जिसे प्राकृत भाषा में 'अंतगडदसा सुत्तं' कहा जाता है, आठवें स्थान पर सुशोभित होता है। इस सूत्र में मात्र उन्हीं प्रबुद्ध आत्माओं का जीवन वृत्त संग्रहित किया गया है, जिन्होंने सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की आराधना करते हुए आठ कर्मों का क्षय कर जीवन के अंतिम क्षणों में मोक्ष प्राप्त किया। जिन्होंने संसार चक्र में 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' रूप जन्म-मरण की श्रृंखला का अंत कर दिया है, वे 'अंतकृत जीव' कहलाते हैं। उन अंतकृत साधकों की दशा का वर्णन जिस अंग सूत्र में किया गया, वह है 'अंतकृतदशांग सूत्र'।

'अंतकृतदशा' शब्द का अर्थ टीकाकार श्री अभयदेवसूरि[1] ने इस प्रकार किया है-

अन्तो-भवान्तः कृतोविहितो यैस्तेऽन्तकृतास्तद् वक्तव्यता प्रतिबद्धा दशाः।

दशाध्ययनरूपाग्रन्थपद्धतय इति अन्तकृतदशाः।

अर्थात् जिन महापुरूषों ने भव का अन्त कर दिया है, वे 'अन्तकृत' कहलाते हैं। उन महापुरूषों का वर्णन जिन 'दशा' अर्थात् अध्ययनों में किया गया है, उन अध्ययनों से युक्त शास्त्र को 'अन्तकृत दशा' कहते हैं। इस सूत्र के प्रथम और अंतिम वर्ग के दस-दस अध्ययन होने से भी 'दशा' कहा गया है।

अंतकृत केवलियों का यह वर्णन कथा वाचन की बहुप्रचलित संवादात्मक शैली का अनुपम उदाहरण है, जो उक्त कालखाण्ड के बारे में वृत्तान्त की भाँति कही गई है -'तेणं कालेणं तेणं समएणं......जाव होत्था'। ऐसे वचन 'वृत्तान्त वचन' कहे जाते हैं। वाचक-श्रोता के प्रश्न-उत्तर के माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। कथा कहने की इस शैली में तीर्थंकर प्रणीत 'आप्त वचन', परंपरागत संस्कृति से उद्धृत 'परंपरा वचन', स्वयं सूत्रकार द्वारा अन्तःकृत केवलियों की जीवन यात्रा का बखान करते 'वृत्तान्त वचन' तथा 'प्रमाण वचन' इस प्रकार आपस में गूँथे हुए हैं कि सूत्र वाचन में वाचक व श्रोता के मध्य एक भावनात्मक सेतु का निर्माण कर देते हैं।

अंतकृतदशा सूत्र : विषय-वस्तु

अंतकृतदशा सूत्र की विषय-वस्तु का उल्लेख स्थानांग सूत्र, समवायांग सूत्र तथा नंदी सूत्र में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त आचार्य अभयदेव ने समवायांग वृत्ति तथा स्थानांग वृत्ति, आचार्य जिनदासगणी महत्तर ने नंदी चूर्णि, आचार्य हरिभद ने नंदीवृत्ति, आचार्य अकलंक ने राजवार्तिक तथा आचार्य शुभचन्द ने भी अंगपण्णत्ति ग्रंथ में 'अंतगड़दशा सूत्र' की विषय-वस्तु का विस्तार से उल्लेख किया है।

आठवें अंग सूत्र अंतकृत दशा में आठ वर्ग हैं। अध्ययनों के समूह को 'वर्ग' कहते हैं। इन आठ वर्गों में अध्ययनों की संख्या क्रमशः इस प्रकार है- प्रथम वर्ग में 10 अध्ययन, द्वितीय में 8, तृतीय में 13, चतुर्थ में 10, पंचम में 10, षष्ठ में 16, सप्तम में 13 तथा अष्टम वर्ग में 10 अध्ययन है। वर्तमान में उपलब्ध इस आगम में 900 श्लोक हैं। इस संपूर्ण सूत्र में 90 साधकों का वर्णन है। इनमें से 51 साधक बाइसवें तीर्थंकर प्रभु अरिष्टनेमि के शासनवर्ती रहे, जिनमें 41 पुरूष व 10 स्त्रियाँ रही तथा 39 साधक चौबीसवें तीर्थंकर प्रभु महावीर के शासनवर्ती रहे, जिनमें 16 पुरूष व 23 स्त्रियाँ रही। इस तरह 90 साधकों में कुल 57 पुरूष व 33 स्त्रियाँ रही। प्रस्तुत सूत्र में उपरोक्त साधक आत्माओं की जीवनगाथा के साथ ही उनकी संयम यात्रा, तपश्चर्या व अंततः मोक्ष साधना का विस्तृत अथवा संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही इन भव्यात्माओं के जन्म-स्थान से संबंधित नगरों का यथोचित वर्णन दृष्टिगत होता है, जिसमें उक्त नगर के राजमहल, उद्यान, चैत्य आदि स्थानों के सौन्दर्य का वर्णन भी समाहित है।

अंतकृतदशा सूत्र के अनुवाद तथा व्याख्या साहित्य

वर्तमान में 'अंतगड़ सूत्र' के निम्नांकित अनुवाद तथा व्याख्या ग्रंथ उपलब्ध होते हैं-

1. अंतगडदशांग सूत्र; (हिन्दी अनुवाद सहित) अ.-आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा.
2. अन्तकृद्दशा; (हिन्दी अनुवाद तथा विवेचन सहित) सं.-युवाचार्य श्री मधुकर मुनि
3. श्री अन्तकृद्दशांग सूत्रम्; (मूल, संस्कृत-छाया तथा हिन्दी व्याख्या सहित) अ.-आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा., सं-आचार्य डा. शिवमुनि
4. अन्तगडदसाओ (अन्तकृद्शांग सूत्र); (हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या सहित) व्याख्याता-आचार्य श्री नानेश; अ./सं.- संघनायक श्री ज्ञानचन्द जी म. सा
5. सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र; (हिन्दी-अंग्रेज़ी भावानुवाद तथा विवेचन सहित) प्र. सं.- उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

जी; सं.- श्रीचन्द सुराना 'सरस'; अंग्रेजी अनुवाद सं.- श्री राजकुमार जैन

6. अन्तकृद्दशांग सूत्र; (हिन्दी अनुवाद, विवेचन एवं परिशिष्ट सहित); सं.- साध्वी कमलप्रभा जी

7. अंतगडदसा सूत्र; (हिन्दी अनुवाद सहित) अ.- श्री घीसूलालजी पितलिया

8. अन्तकृतदशा सूत्र; (हिन्दी अनुवाद सहित) सं.- श्री नेमीचन्द बांठिया व श्री पारसमल चण्डालिया

9. अंतगडभावमंजरी; (मूल पाठ, अर्थ, विवेचन के अतिरिक्त विषय सामग्री से संबंधित गेय भजन); निर्देशन- वरिष्ठ प्रवर्तक मुनि रूपचंदजी 'रजत'

10. आगम सुत्ताणि : 8 अंतगडदसाओ; (मूल प्राकृत पाठ); संशोधक व संपादक- मुनि दीपरत्न सागर

11. अंतगडदसाओः अट्ठमं अंगसुत्तं; (मूल प्राकृत पाठ); प्रस्तोता- मुनि दीपरत्न सागर

12. आगम सूत्र; (हिन्दी अनुवाद) - मुनि दीपरत्न सागर

13. Antakrud Dasha; (अंग्रेज़ी अनुवाद) अनुवादक- मुनि दीपरत्न सागर

'अंतगड़ सूत्र' के व्याख्या ग्रंथ

8. श्री अभयदेवसूरि रचित वृत्तिः श्रीमदन्तकृद्दशाःसूत्र; सवृत्तिक आगम-सुत्ताणि भाग-13; सं.-मुनि श्री दीपरत्नसागरजी

9. श्री मदन्तकृद्दशांग-सूत्रम् (पीयूषधारा टीका सहित); अ.- पण्डित मुनि श्री प्यारचन्द जी महाराज;

10. अन्तकृतदशांगसूत्रम्; (हिन्दी-गुजराती अनुवाद सहित) आचार्य घासीलालजी महाराज; नियोजक-पण्डित मुनि श्री कन्हैयालालजी महाराज

अंतकृतदशा सूत्र का महत्व एवं पर्वाधिराज पर्युषण में इसका वाचन

सम्पूर्ण जैन समुदाय प्रतिवर्ष आध्यात्मिक पर्व पर्युषण में साधना हेतु उद्यत होता है। अन्तकृतदशा सूत्र में ऐसे साधकों की जीवन-गाथा जिनसे आबाल-वृद्ध सभी प्रेरणा ले सकते हैं व अपनी योग्यता के अनुसार साधना कर आत्मा का विकास कर सकते हैं। इन चरित्रों के जीवन में ज्ञान, दर्शन, तप व संयम के विविध आयाम दृष्टिगोचर होते हैं जो वर्तमान युग में भी दैनन्दिनी व्यवहार में उपादेय प्रयोगात्मक सूत्र प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त इन कथा चरितों के माध्यम से पारिवारिक व सामाजिक मूल्य भी प्रतिष्ठित होते हैं।

सहज प्रश्न उपस्थित होता है कि **पर्युषण पर्व में 'अन्तगडदशा सूत्र' का ही वाचन क्यूँ किया जाता है**, किसी अन्य अंग आगम का क्यूँ नहीं ? इसका उत्तर स्थानकवासी परंपरा के प्रबुद्ध प्रज्ञाधनी आचार्य हस्तीमलजी म. सा.[2] के शब्दों में 'पर्वाधिराज पर्युषण के आठ दिनों में ऐसे सूत्र का वाचन होना चाहिए जो इस मर्यादित काल में पूरा हो सके तथा आत्म-साधना की प्रेरणा देने में पर्याप्त रूप से सक्षम हो। अंग या उपांग सूत्रों में ऐसा कोई अंग सूत्र नहीं जो इस मर्यादित काल में पूरा हो सके। अनुत्तरौपपातिक दशा अति लघु होने के साथ इतनी प्रेरक सामग्री प्रस्तुत नहीं करता तथा उसमें वर्णित साधक अनुत्तर विमान के ही अधिकारी होते हैं, मोक्ष के नहीं। परंतु अन्तकृद्दशा में ये दोनों बातें हैं। वह अतिलघु या महत् आकार में नहीं है, साथ ही उसमें ऐसे ही साधकों की जीवन गाथा है जो तप-संयम से कर्मक्षय कर पूर्णानंद के भागी बन चुके हैं। अन्तकृद्दशा के उद्देश-समुद्देश का काल भी 8 दिन का है और पर्युषण का अष्टाह्निक पर्व भी अष्टगुणों की प्राप्ति एवं अष्ट कर्मों की क्षीणता के लिए है। अतः पर्युषण में इसी का वाचन

उपयुक्त है।' ऐसा ही अभिमत आचार्य श्री देवेन्द मुनिजी[3], श्री अमर मुनिजी[4], संघनायक श्री ज्ञानचन्दजी म. सा.[5] आदि कई विद्वानों का भी है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए स्थानकवासी समुदाय इन पर्व दिवसों में परंपरागत रूप से आठवें अंग सूत्र 'अंतगड़दशा' का वाचन करता आ रहा है। इस वाचन व श्रवण प्रक्रिया में नब्बे चरम शरीरी भव्यात्माओं के जीवन-चरित से साक्षात्कार होता है। साधनारत साधक इन दिनों स्वयं तपस्यारत रहकर इन भव्य आत्माओं की मोक्ष-यात्रा का साक्षी बनता है, जो 'आयु' की सीमाओं से परे मात्र आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर है। लघुवय के अतिमुक्तक, नवयुवक गजसुकुमाल, युवा अर्जुनमाली व प्रौढ़ वय की श्रीकृष्णा व महाराज श्रेणिक की महारानियों आदि के जीवन चरित जब तप-संयम-धैर्य-जिज्ञासा के अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं तो सहज ही एक साधारण मानव अपने चेतन-अवचेतन मानस में प्रेरणा सिंचित करता है। यही कारण है कि प्रतिवर्ष 'अंतगड़दशांग सूत्र' मानस भूमि पर प्रेरणा का बीजारोपण करता आया है।

एक जिज्ञासा यह भी होती है कि **पर्युषण पर्व में अन्तगड़ सूत्र का वाचन कब से प्रारंभ हुआ**? श्री मानमल कुदाल अपने लेख 'अन्तगड़दशासूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन' में कहते हैं 'ऐसा कहा जाता है कि राजा श्रेणिक के शासन काल में चंपानगरी के पूर्णभद उद्यान में सुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामी को अंतगड़दशासूत्र का अध्ययन कराया था वह काल पर्युषण काल नहीं था परंतु पर्युषण काल में ही इसकी वाचना की परंपरा विद्यमान है। पर्युषण के अवसर पर कब से इसकी वाचना की परंपरा प्रारंभ हुई, यह अन्वेषणीय है।'[6] संघनायक श्री ज्ञानचन्द जी म. सा. के अनुसार[7] मूल आगम में कहीं भी पर्युषण के दिनों में ही 'अन्तगड़ सूत्र' की वाचना का निर्देश दृष्टिगत नहीं होता। आचार्य श्री देवेन्द मुनि जी के अनुसार[8] संभव है वीर लोंकाशाह या उनके पश्चात् यह परम्परा प्रारंभ हुई हो।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परंपरा में पर्युषण पर्व में 'कल्प-सूत्र' वाचन का विधान है। कल्पसूत्र में तीर्थंकरों के संपूर्ण जीवन चरित के साथ गणधर तथा परवर्ती आचार्यों की परंपरा, पंच कल्याणक तथा पर्युषण कल्प की संपूर्ण जानकारी दी गई है। इन पर्व दिवसों में संपूर्ण जैन समुदाय भक्ति-साधना-आराधना हेतु गुरू भगवंतों के सानिध्य में मंदिर, उपाश्रय आदि में उपस्थित होता है। अतः एक नवागंतुक अथवा यदा-कदा उपस्थित होने वाले जिज्ञासु के लिए तीर्थंकरों, गणधरों तथा पट्टधर आचार्यों का परिचय एक सशक्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है; साथ ही पंच कल्याणकों का उत्सव साधकों को साधना हेतु प्रेरित करता है।

कल्पसूत्र के सार्वजनिक पठन एवं श्रवण से संबंधित एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख कल्पसूत्र के प्राचीन चूर्णिकार इस प्रकार करते हैं - ''आज से लगभग 1500 वर्ष पहले आनंदपुर नगर में ध्रुवसेन नाम के राजा थे जो जैन धर्म में पूर्ण निष्ठावान और नीतिनिष्ठ थे। पर्युषण के दिनों में ही उनका इकलौता पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया। पुत्र की मृत्यु से शोकग्रस्त राजा के शोक को कम करने के लिए एक जैनाचार्य ने चतुर्विध संघ एवं राज-परिवार के समक्ष कल्पसूत्र का सार्वजनिक रूप से वाचन किया, जिससे शोक संतृप्त राज-परिवार को शांति मिली।'' तभी से कल्पसूत्र वाचन की परंपरा प्रचलित हो गई।''[9]

आचार्य हस्तीमल जी म. सा. के अनुसार[10] वीर निर्वाण सम्वत् 993 के समय 'कल्प-सूत्र' का सामूहिक

वाचन होने लगा था। संभव है, उस समय साधना प्रेमी संतों ने यह सोचकर कि कल्पसूत्र में केवल तीर्थंकर भगवान की गुण-गाथा, उनके पंच कल्याणक और पट्टावली का वाचन है, अतः आत्म-साधना में प्रेरणा प्रदान करने के लिए अन्तकृद्दशा का वाचन भी आरंभ किया गया हो।

अंतगड़दशा में निहित मूल्यपरक सूत्रों की प्रासंगिकता

कहा जा सकता है कि अंतगड़दशा सूत्र मूलतः मोक्षगामी जीवों के चरम शरीरी मनुष्य जन्म का लेखा-जोखा है। सामान्य जनमानस ऐसी मोक्षगामी जीवात्माओं को 'असाधारणता' के सिंहासन पर बिठा कर उनका पूजन-आराधन तो कर लेता है परंतु स्वयं को प्रायः 'अयोग्य' जान कर जीवन को परिवर्तित करने की संभावना की कदाचित् अनदेखी कर जाता है अथवा परिवर्तन की चाह रखते हुए भी पहला कदम उठाने का साहस नहीं कर पाता। ऐसे में इन भव्य आत्माओं की संपूर्ण जीवन यात्रा को एक नूतन आलोक में देखने की आवश्यकता उपस्थित होती है। उनके जीवन में उपस्थित घटनाचक्रों में इन भवी आत्माओं का क्या चुनाव रहा, किस तरह उन्होंने क्षण भर भी प्रमाद में नहीं गँवाया अथवा अपने भय व कांक्षाओं को जीतने का पराक्रम दिखाया आदि शिक्षाओं को वर्तमान आलोक में प्रकाशित करना उपयोगी हो सकता है।

आधुनिक तकनीकी युग में मानव संसाधनों का भी मशीनीकरण होता जा रहा है। चारों तरफ होड़-दौड़ का वातावरण है जहाँ प्रतिद्वन्द्विता की राह में व्यक्ति अपनी नैसर्गिक योग्यता को परे रखकर सोशल मीडिया प्रभावित व्यक्तित्व को आरोपित कर लेता है। आज इन्टरनेट के माध्यम से संपूर्ण विश्व की परिधि सिमटकर एक छोटी सी स्क्रीन पर आ चुकी है, जिससे आकर्षणों का ऐसा रंगीन मायाजाल निर्मित हो जाता है जो किसी को भी लक्ष्य च्युत कर सकता है। इन स्थितियों में एक सशक्त प्रेरणा स्रोत की आवश्यकता उपस्थित होती है, जो स्वयं अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहा हो। अंतकृतदशा सूत्र की सभी जीवात्माएँ अनुकूल व प्रतिकूल उपसर्गों को समभाव से सहन करते हुए अपने चरम लक्ष्य को उपलब्ध हुई। इन अंतकृत् केवलियों के जीवन वृत्त को एक सामान्य बालक, तरूण अथवा युवा के जीवन की तरह प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा सकता है, जिनके जीवन में भी सुख-सुविधा के ऐसे रंगीन आकर्षण रहे तथा कठिन संघर्ष, भय व अपमान के अवसर भी आए परंतु वे अपने लक्ष्य का संधान करते हुए लक्ष्य को प्राप्त हुए। वे सभी घटनाक्रम वर्तमान समय में भी हर पीढ़ी के लिए प्रेरक सिद्ध हो सकते हैं। विनयशीलता व अनुशासन के साथ साधना पथ पर हेय-उपादेय का विवेक रखकर अग्रसर होते हुए इन भवी आत्माओं ने दृढ़ धर्मिता के साथ क्षमा, सेवा व सहिष्णुता का जो उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया, वह आधुनिक युग में भी प्रभावक सिद्ध हो सकता है।

देखा जाय तो इन आगमों में निहित जीवन मूल्य शाश्वत है परंतु काल की सतत् प्रवाहमान धारा में इनकी प्रस्तुति, चाहे वह भाषा के स्तर पर हो या व्याख्या-विवेचन के स्तर पर, प्रासंगिक होना उपादेय होता है। वर्तमान संदर्भों में तो कहा जा रहा है कि मात्र तकनीकी स्तर पर ही नहीं, व्यक्तिगत, मानसिक व सामाजिक स्तर पर जो परिवर्तन बीते पाँच सौ वर्षों में दृष्टिगोचर हुए हैं, वे दो हज़ार वर्षों में भी नहीं देखे गए थे। अतः ऐसे त्वरित परिवर्तित होते परिवेश में ज्ञान रत्नाकर रूपी इस आगमवाणी को नवीन आलोक में प्रस्तुत करना निश्चित रूप से हितकारी

सिद्ध होगा। चूँकि इस सूत्र में हर आयु वर्ग के लिए आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ जीवन के सर्वांगीण विकास के सूत्र भी निहित है; अतः उन सूत्रों को युवा पीढ़ी तक पहुँचाने हेतु यदि प्रचलित दृश्य-श्रव्य (ऑडियो-वीडियो) संचार व कला (मीडिया व आर्ट) माध्यमों का आलम्बन लिया जाए तो इसका प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त विशाल हो सकता है। साथ ही, व्यक्तित्व विकास के कई सूत्र प्रदान करने में भी सहयोगी हो सकता है।

आठवें अंग के रूप में प्रतिष्ठित इस आगम में वसुदेव श्रीकृष्ण की महारानियाँ व महाराज श्रेणिक की रानियों द्वारा किए गए तपश्चर्या के विविध रूपों को 'कर्म निर्जरा के हेतु' के रूप में प्रतिष्ठित तो किया जाता रहा है परंतु इस तरह की जटिल तपस्याएँ जटिल चित्तों के मनोवैज्ञानिक समाधान के रूप में भी देखी जा सकती है। साथ ही सर्वग्राह्य शारीरिक आयामों को भी नवीन दृष्टि से परखा जा सकता है।

शाश्वत तीर्थंकर वाणी मात्र आध्यात्मिक उत्थान ही नहीं वरन् जीवन के दैनन्दिनी की जागृत टकोर है। ऐसे कुछ आध्यात्मिक सूत्रों को भी नूतन आलोक में देखने का प्रयास इस आगम द्वारा किया जा सकता है। वर्तमान युग में पुस्तकीय जानकारियों का भार ढोती शिक्षा व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अतिमुक्त कुमार व गजसुकुमाल की जागृत प्रज्ञा से निर्देशित उनकी जीवन यात्रा की सुंदर दिशा व चरम लक्ष्य प्राप्ति भी अनुकरणीय है।

अंतकृतदशांग सूत्र में वर्णित चरम शरीरी केवलियों की अन्तकृत यात्रा पाठकों के भीतर प्रेरणा का संचरण करती है। प्रायः देखा गया है कि जीवन में प्रतिकूलताएँ वैराग्य उदित होने का निमित्त बनती है। जब तक अनुकूलताएँ है, तब तक व्यक्ति सुख भोग में प्रमत्त रहता है। मोक्ष-निर्वाण का ध्येय मात्र वाक् स्तर तक सीमित रहता है किन्तु सर्व सुख भोग व ऐश्वर्य सम्पन्नता के समय भी अपनी चेतना को अप्रमत्त रूप से संयम यात्रा पर अग्रसर करना, प्रतिक्षण जागृत रहकर तपश्चर्या से कर्म क्षय करने को उद्यत होते हुए अंततः सिद्धत्व को उपलब्ध होने की 'गौतमकुमार' की जीवन यात्रा सहज ही रोमांचित कर जाती है।

गौतमकुमार के समान ही गजसुकुमाल की कथा भी वैभवशाली राजपुत्र के प्रतिबोध की रोमांचक गाथा है। कैशोर्य अवस्था की वीथि जहाँ रूप-लावण्य यौवन के प्रवेश द्वार पर आलिंगन को प्रस्तुत है, वासुदेव की श्री-समृद्धि सिर पर सजने को आतुर है, ऐसी विपुल निधि को त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण के पश्चात् प्रथम रात्रि को ही अपरिमित उपसर्ग को गजसुकुमाल मुनि समभाव से सहन करते हैं। गजसुकुमाल का जीवन चरित 'धैर्यपूर्वक पुरूषार्थ रत होते हुए जीवन लक्ष्यों को उपलब्ध होने' की आस्था जगाता है। जिस प्रकार गजसुकुमाल ने उपसर्गों को समतापूर्वक सहन कर एक रात्रि में ही साधना के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया; उसी तरह जीवन के दुरूह पथ पर परिवर्तन के स्वर्णिम अवसर को पहचान कर प्रतिबद्धता के साथ उस पथ पर चलने वाला वीर साधक रहा अर्जुन माली। पूर्वकृत कर्मों का अभ्यंकर परिणाम समतापूर्वक भोगने वाले अर्जुन माली को जिस तरह सेठ सुदर्शन का निमित्त प्राप्त हुआ, उसी तरह अतिमुक्त कुमार को भी गौतम स्वामी का निमित्त प्राप्त होता है। एक भव्यात्मा के भीतर सुप्त प्रज्ञा को जब भी उचित निमित्त प्राप्त होते हैं, वह स्फुरित हो उठती है। न्यूनाधिक आयु हो या वित्तीय स्तर, ज्ञानी हो या अज्ञानी - कोई भी बहाना या जोड़-तोड़ लक्ष्य अप्राप्ति का हेतु नहीं हो सकती। यह महत्वपूर्ण जीवन सूत्र हमें बाल मुनि अतिमुक्त के जीवन से प्राप्त होता है।

इस प्रकार संपूर्ण अंतकृतदशांग सूत्र के अध्ययन से हमें इस बहुआयामी जीवन को जागृतिपूर्वक समभाव से जीने की शिक्षा प्राप्त होती है। सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रभु इस लोकालोक के स्वरूप को प्रत्यक्षत: देखने वाले तथा जानने वाले हुए। जिज्ञासु साधकों के समाधान हेतु उनकी वाणी मुखरित हुई। वह अनुभवपूर्ण वाणी प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी है। मानव जीवन के हर आयाम में उपस्थित बाधाओं, कष्टों, उलझनों, द्वंद्वों के समाधान आगमवाणी में समाहित है। इन आगमों में निर्दिष्ट सूत्रों के गूढ़ार्थ बहुआयामी है। एक जिज्ञासु चेतना की लक्ष्य यात्रा के लिए यह आगमवाणी निश्चित रूप से पाथेय सिद्ध हो सकती है। अतएव समय-समय पर इनका तटस्थ अध्ययन, तत्पश्चात् स्व-अध्ययन भीतर-बाहर की ग्रंथियों को खोलकर हमें मुक्त करने में सहयोगी हो सकता है।

स्पष्टत: अंतकृतदशा सूत्र को इन आयामों के आलोक में प्रस्तुत किया जाना आधुनिक पीढ़ी के हितार्थ एक अत्यंत सार्थक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। प्रतिवर्ष पर्युषण के साधनागत पर्व दिवसों में इस नूतन दृष्टि से प्रस्तुति व्यक्तित्व के विभिन्न मूल्यपरक सूत्रों को प्रकाशित करने का सामर्थ्य रख सकती है।

निष्कर्ष

देखा जा सकता है कि अंतकृतदशा सूत्र के अध्ययन से संपूर्ण जीवन लाभान्वित हो सकता है। इनमें वर्णित जीवन-चरित मात्र आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही प्रेरणा स्रोत नहीं है वरन् इनसे प्राप्त जीवन शिक्षा-सूत्र जाति, धर्म, संप्रदाय से परे एक सामान्य जीवन के उत्थान हेतु भी अत्यन्त आवश्यक है।

अपने चित्तों के व्यामोह में फँसा मानव मन सदैव ही ऐसे ज्ञानी गुणी जनों के दिशा-निर्देश के लिए तत्पर रहा है जो अपने मन पर आधिपत्य जमाकर अपने मन के स्वामी हो चुके हैं। ऐसे इन्द्रिय विजेता सर्वज्ञों की वाणी हर युग में कल्याणकारी रही है क्योंकि मानव के आन्तरिक तल की ग्रन्थियाँ, कुण्ठाएँ, भय, लालच, इच्छाएँ अधुनातन समान ही है; चाहे बाह्य तल पर आज उसने तकनीक, विज्ञान व अन्य क्षेत्र में अपरिमित विकास किया हो।

अतएव यदि अंतकृतदशांग सूत्र को वर्तमान युग के समसामयिक परिवेश, भाषा व युगीन समझ के अनुरूप प्रस्तुत करने का पुरूषार्थ किया जाए तो इसके शिक्षा सूत्रों से आबाल-वृद्ध लाभान्वित हो सकता है। लक्ष्य-प्राप्ति के सूत्र, अधीरता, आवेश, हीन बोध को जीतने के उपाय; संकल्पशक्ति व एकाग्रचित्तता में वृद्धि के सूत्र; अनासक्त व विनयपूर्वक ज्ञानाराधना के सोपान; अपनी कमियों व त्रुटियों को दूर करने के समाधान व अन्य कई दिशा-निर्देश इसके नियमित पाठन-वाचन से सुगमतापूर्वक प्राप्त होते हैं।

आज सोशल मीडिया पर बौद्ध जातक कथाएँ, पंचतंत्र की कहानियों व ईसामसीह के जीवन की कहानियों आदि के बड़े ही रोचक संस्करण प्राप्त होते हैं परंतु जैन प्रेरक कथाओं का प्राय: अभाव देखा जा सकता है। पर्युषण पर्व आराधना के अवसर पर पारंपरिक रूप से अंतगड़सूत्र वाचन के साथ इनसे प्राप्त जीवन शिक्षा सूत्रों को कला एवम् साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा नाटक, नृत्य-नाटिका, धारावाहिक आदि द्वारा प्रस्तुत करने का उपक्रम युवा मानस को आकर्षित करने के साथ, उनको आत्म-अवलोकन का अवसर प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। साथ ही इनसे प्राप्त संस्कार जैन व जैनेत्तर सभी में सम्यक् जीवन जीने के प्रेरणा सूत्र रोपित कर सकता है। इसमें वर्णित तपस्या की विभिन्न परिपाटियों पर मनोशारीरिक दृष्टि से शोध मानव मन के गहरे तलों का अध्ययन करने में भी सहयोगी हो सकती है।

यूँ तो कई आधुनिक पश्चिमी दार्शनिकों व विद्वानों ने जैन दर्शन के अन्य आगमों का गहन निष्पक्ष अध्ययन कर, उनसे निपजे मोतियों को पुस्तकाकार प्रदान कर अपने सामाजिक परिवेश को नवीन दृष्टि प्रदान की है। परिणामतः उनकी जीवनशैली में आमूलचूल परिवर्तन भी दृष्टिगत हो रहे हैं। अतः युगीन परिस्थितियों को ध्यान में रखाते हुए अन्तगड़दशांग सूत्र पर भी शोधपरक दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो कई नवीन रहस्य व शिक्षाएँ दृष्टिगत हो सकती है। पर्व के दिनों में परंपरागत प्राकृत सूत्र पाठ वाचन के साथ अन्य प्रायोगिक उपक्रमों को स्थान दें तो इस आगम की जीवन्तता आगत पीढ़ी तक पहुँचा पाने में हम समर्थ हो सकते हैं। युगों-युगों से जीव मात्र के लिए आप्तवाणी कल्याण मार्ग प्रकाशित करती रही है; अतएव तत्कालीन आतुर, दिशाहीन युगीन पीढ़ी और इस आप्तवाणी के मध्य सशक्त सेतु निर्माण अति आवश्यक है।

सन्दर्भ

[1] श्री अभयदेवसूरि रचित वृत्तिः श्रीमदन्तकृद्दशा:सूत्र; सवृत्तिक आगम-सुत्ताणि भाग-13; सं.-मुनि श्री दीपरत्नसागरजी; पृ.120
[2] अंतगडदशांग सूत्र; अ.-आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा.; पृ.10
[3] अन्तकृद्दशा; सं.-युवाचार्य श्री मधुकर मुनि; पृ.31
[4] सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र; प्र. सं.- उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी; पृ.10
[5] अन्तगडदसाओ (अन्तकृद्दशांग सूत्र); व्याख्याता-आचार्य श्री नानेश; अ./सं.- संघनायक श्री ज्ञानचन्द जी म. सा; पृ.14
[6] अंग साहित्य : मनन और मीमांसा; सं.- प्रो. सागरमल जैन व डॉ. सुरेश सिसोदिया; पृ.221
[7] अन्तगडदसाओ (अन्तकृद्दशांग सूत्र); व्याख्याता-आचार्य श्री नानेश; अ./सं.- संघनायक श्री ज्ञानचन्द जी म. सा; पृ.15
[8] अन्तकृद्दशा; सं.-युवाचार्य श्री मधुकर मुनि; पृ.31
[9] सचित्र श्री कल्प सूत्र; प्र. सं.- उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी; पृ.10
[10] अंतगडदशांग सूत्र; अ.-आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा.; पृ.11

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंतगडदशांग सूत्र; अ.-आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा.; प्र.- सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर (राज.) ; ग्यारहवाँ संस्करण 2007
2. अन्तकृद्दशा; सं.-युवाचार्य श्री मधुकर मुनि; प्र.-श्री आगम प्रकाशन समिति, पीपलिया बाज़ार, ब्यावर (राज.); जनवरी 2000
3. श्री अन्तकृद्दशांग सूत्रम् ; अ.-आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा., सं-आचार्य डा. शिवमुनि; प्र.- आत्म-ज्ञान-श्रमण-शिव आगम प्रकाशन समिति, लुधियाना तथा भगवान महावीर रिसर्च एंड मेडिटेशन सेंटर ट्रस्ट, नई दिल्ली; जुलाई 2003
4. अन्तगडदसाओ (अन्तकृद्दशांग सूत्र); व्याख्याता-आचार्य श्री नानेश; अ./सं.- संघनायक श्री ज्ञानचन्द जी म. सा; प्र.- श्री अरिहंत मार्गी जैन महासंघ, दिल्ली; तृतीय संस्मरण 2004
5. सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र; प्र. सं.- उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी; सं.- श्रीचन्द सुराना 'सरस'; अंग्रेजी अनुवाद सं.- श्री राजकुमार जैन; प्र.- पद्म प्रकाशन, नरेला मंडी, दिल्ली-40; द्वितीय आवृत्ति : जनवरी 1999
6. श्री अभयदेवसूरि रचित वृत्तिः श्रीमदन्तकृद्दशा:सूत्र; सवृत्तिक आगम-सुत्ताणि भाग-13; सं.-मुनि श्री दीपरत्नसागरजी; वर्द्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालीताणा
7. श्री मदन्तकृद्दशांग-सूत्रम् (पीयूषधारा टीका सहित); अ.- पण्डित मुनि श्री प्यारचन्द जी महाराज; प्र. - सेठ भिक्कामल छोटेलाल फर्म के मालिक सेठ रतनलाल मित्तल, लोहामण्डी आगरा; प्रथमावृत्ति : विक्रमाब्द 1993
8. अन्तकृतदशांगसूत्रम्; आचार्य घासीलालजी महाराज; नियोजक- पण्डितमुनि श्री कन्हैयालालजी महाराज; प्र.- अ. भा. श्वे. स्था. जैनशास्त्रोद्धार समिति, राजकोट (सौराष्ट्र); द्वितीया आवृत्ति, 1958
9. अंतगडदसा सूत्र; अ.- श्री घीसूलालजी पितलिया; प्र.- श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना, म.प्र.; अगस्त 1984
10. अन्तकृतदशा सूत्र; सं.- श्री नेमीचन्द बांठिया व श्री पारसमल चण्डालिया; प्र.- श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर; छठी आवृत्ति : 2015
11. अंग साहित्य : मनन और मीमांसा; सं.- प्रो. सागरमल जैन व डॉ. सुरेश सिसोदिया; प्र.- आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर; 2001-02

12. कल्पसूत्र; सं.- आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि;प्र.-श्री अमर जैन आगम शोध संस्थान, सिवाना; सन् 1968
13. सचित्र श्री कल्प सूत्र; प्र. सं.- उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी; सं.- श्रीचन्द सुराना 'सरस'; अंग्रेजी अनुवाद सं.- श्री सुरेन्द्र बोथरा; प्र.- पद्म प्रकाशन, नरेला मंडी दिल्ली-40, श्री दिवाकर प्रकाशन आगरा, प्राकृत भारती अकादमी जयपुर; 2008
14. नन्दीसूत्र; सं.-युवाचार्य श्री मधुकर मुनि; प्र. आगम प्रकाशक समिति, ब्यावर (राज.); तृतीय संस्करण : जनवरी 2000
15. अनुयोगद्वार सूत्र; सं.-युवाचार्य मधुकर मुनि; प्र. आगम प्रकाशक समिति, ब्यावर (राज.); तृतीय संस्करण :मई 2000
16. समवायांग सूत्र; सं.-युवाचार्य मधुकर मुनि; प्र. आगम प्रकाशक समिति, ब्यावर (राज.); तृतीय संस्करण : अप्रैल 2000
17. अनुयोगद्वार सूत्र; सं.- श्री नेमीचन्द बांठिया व श्री पारसमल चण्डालिया; प्र.- श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर; प्रथम आवृत्ति : अप्रैल 2005
18. समवायांग सूत्र; अ.- प. घेवरचन्द बांठिया 'वीरपुत्र'; प्र.- श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
19. श्री नन्दीसूत्रस्य चूर्णि: हारिभद्रीया वृत्तिश्च; प्र.- श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेतांबर संस्था, रतलाम
20. जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा (जैन वांग्मय का परिचयात्मक अध्ययन); आचार्य देवेन्द्र मुनि शास्त्री; प्र.: श्री तारक गुरू जैन ग्रन्थालय, उदयपुर (राजस्थान); प्रथम प्रवेश : मई 1977
21. आगम-एक परिचय; युवाचार्य मधुकर मुनि; प्र.- श्री आगम प्रकाशन समिति, पीपलिया बाज़ार, ब्यावर (राज.)
22. आगम-युग का जैन दर्शन; पण्डित दलसुख मालवणिया; प्र.- प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर; द्वितीय संस्करण : मार्च 1990
23. हितोपदेश; ले.- नारायण पंडित; प्र.-चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
24. पंचतंत्र; ले.- विष्णु शर्मा; प्र.- राजकमल प्रकाशन

शोध आलेख

1. अंतकृतदशा की विषय-वस्तु : एक पुनर्विचार; ले.- प्रो. सागरमल जैन; पुस्तक - अंग साहित्य : मनन और मीमांसा; पृ. सं.-195; सं.- प्रो. सागरमल जैन व सुरेश सिसोदिया; प्र.- आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर; 2001-02

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 132-137

Digitalization : A Catalyst for Improved Financial Performance in the Banking Sector – Reality or Myth?

Vishal Garg
Assistant Professor, Faculty of Commerce,
Kalicharan PG College, University of Lucknow, Lucknow, Uttar Pradesh.

Abstract :

The rapid advancement of technology has initiated a significant digital transformation across various businesses, including established organizations. This process, known as digitalization, affects operational frameworks and societal structures. In India, digital banking is reshaping commercial banks, leading to innovative business models such as Internet and mobile banking, and challenging traditional banking methods. The Indian banking sector has undergone notable changes, prompting a study on the impact of digitalization on the financial performance of selected public and private banks. The study, covering ten banks from 2013 to 2022, finds no statistically significant difference in financial performance between the pre-digitalization and post-digitalization periods. This challenges the misconception that digitalization automatically improves bank performance. The study suggests that banks should adopt advanced technologies from international markets and invest in employee training to enhance productivity and competitiveness in a dynamic environment.

Introduction :

Digitalization has become crucial for commercial banks aiming to enhance service efficiency. While many financial institutions are investing in digitization due to its benefits in risk management and productivity, some still view the process as daunting. Technology has transformed interactions and led to innovations in banking, creating new opportunities for customer engagement and improved service delivery. Internet and mobile banking have emerged as key channels for clients to manage their finances independently.

The shift towards digital banking in India has fostered new business models, replacing traditional

services amid globalization demands. Significant changes in the sector have been ongoing, further accelerated by events like the 2016 demonetization, which removed high-value currency notes from circulation. This move caused economic disruption and was met with backlash, as it primarily aimed to combat black money but has increasingly been framed as a push towards a cashless society. The government and Reserve Bank of India have since promoted digital payment methods, signaling a transformative direction for Indian banking.

Literature Review

- "Impact of Digitalization on Bank Performance : A Study of Indian Banks" (2020) by Shujaat Naeem Azmi et al. shows a positive link between digitalization and profitability, though it incurs significant costs.
- Pooja Panchani's study (2020) discusses how FinTech strengthens cashless banking, aiding access to financial services.
- The study "Modern Tendencies of Digitalization of the Financial Services Sphere" (2022) by Denys Krylov et al. highlights that digitization improves financial health and accelerates ROI in competitive banking.
- Vira Druhova et al.'s "A Factor Analysis" (2021) finds that digitalization can negatively impact banking indicators, suggesting banks enhance customer service and loan monitoring systems.
- Lastly, the study by Vijayalakshmi B and Jayalakshmi M (2019) indicates that technology is crucial for banking performance, notably benefiting ICICI Bank.

Research Gap :

After reviewing several studies related to this subject, it has become clear that while many researchers have focused on various aspects of digitalization, there remains significant scope for the current study to explore whether there is a myth or reality regarding the impact of digitalization on the financial performance of banks.

To date, a negligible amount of study has attempted to comparatively evaluate the impact of digitalization on the performance of the Indian banking sector in both the pre- and post-digitalization eras. Therefore, this study is an important endeavour aimed at examining, measuring, and comparing the effects of digitalization on selected public and private sector commercial banks in India. Based on the findings, the study will also offer suggestions for improvement. Based on the research gap the following objectives and the relevant hypothesis are taken into account.

Objectives of Study :

The primary objective of this study is to assess the impact of digitalization on the performance of selected public and private sector banks in India. Within this broader context, the study has the

following specific objectives :

1. To examine the changes in banking work patterns before and after digitalization.
2. The objective is to conduct a comprehensive analysis of the digitalization practices implemented by the selected public and private sector banks.

Research Methodology :-

Statement of Problem : An analytical study of digitalization and its impact on the bank performance : A comparative study of selected public and private sector banks.

Research Design : The proposed study is grounded in an analytical research design, which is characterized by a systematic approach that prioritizes critical thinking and in-depth evaluation of facts and information. This type of research goes beyond mere data collection; it involves a careful analysis of relevant evidence to draw meaningful conclusions and insights related to the subject matter under investigation.

Study Area : The sample consists of a total of ten Indian banks, including five public sector banks: SBI, Canara Bank, PNB, BOB, and UBI. Additionally, the study incorporates five private sector banks: ICICI Bank, Axis Bank, HDFC Bank, Kotak Mahindra Bank, and IndusInd Bank.

Sampling Technique : The present study utilized convenience and judgmental sampling techniques.

Data Collection Sources : The current study considers secondary data sources such as RBI bulletins, annual reports, manuals, websites, and official records from the selected banks.

Period of Study : The study period has been categorized into two distinct sub-headings: the pre-digitalization era and the post-digitalization era. This classification will facilitate a clearer analysis of the transformations that occurred during these phases.

Study Parameters :

To achieve the study objectives, the following parameters are considered :

- Net Worth Protection Ratio (NWPR)
- Profit Per Employee
- Liquid Assets to Total Assets Ratio (LATTA)
- Return on Asset (ROA)
- Efficiency Ratio

Findings Of Study :

The detailed analysis of the study concluded with the following findings :

Net Worth Protection Ratio (NWPR) : The average Net Worth to Public Revenue (NWPR) for public sector banks before and after digitalization is 3.67% and 2.60%, while for selected private

sector banks, it is 10.57% and 10.86%. This indicates that digitalization negatively impacted the financial performance of public sector banks, while it had a slight positive effect on private sector banks. However, the overall improvement in bank performance is limited, possibly due to inefficiencies in handling bad assets, high costs of digital infrastructure, and risks from cyberattacks.

Profit Per Employee : The mean of PPE before and after digitalization shows a decline of 46.96% for Public Sector Banks, while Private Sector Banks saw slight increases of 11.91% and 13.20%. This indicates that digitalization negatively impacted Public Sector Banks, whereas it had a minor positive effect on Private Sector Banks. The study concludes that no significant changes occurred post-digitalization in the selected banks, likely due to employee resistance, operational inefficiencies with digital services, and inadequate training programs.

Liquid Assets to Total Assets Ratio (LATTA) : The average Liquid Asset to Total Asset Ratio for Public Sector Banks decreased from 10.34% pre-digitalization to 9.70% post-digitalization. Conversely, Private Sector Banks saw an increase from 7.72% to 11.79%. This indicates that Public Sector Banks experienced a decline in liquidity after digitalization, likely due to high training costs, digital platform implementation, and advertisement expenses. In contrast, Private Sector Banks improved their liquidity, possibly due to better information access, user-friendly interfaces, and enhanced service standards.

Return on Asset (ROA) : The average ROA for public sector banks before and after digitalization is 3.15% and 3.25%, while private sector banks recorded 5.19% and 4.98%. This suggests that digitalization significantly improves the financial performance of public sector banks, but not of private sector banks, where no notable changes were observed. Factors such as inefficiencies in digital channels for monitoring NPAs, inadequate e-customer support due to limited infrastructure, and increased cyber-attack risks may lead customers to continue relying on traditional banking methods.

Efficiency Ratio : The average Efficiency Ratio for public sector banks before and after digitalization is 47.31% and 49.47%, while for private sector banks, it is 43.80% and 46.53%. This indicates that digitalization does not significantly improve banks' financial performance. Factors such as changing employee work patterns, increased global competition, and the rising costs of digital transformation may contribute to this outcome.

Significance of Study :

Digitalization is vital for banking performance, offering several benefits :

1. **Revenue Growth :** Expands customer reach and customizes products using data analytics.
2. **Cost Savings :** Automates processes and reduces reliance on physical branches.
3. **Better Customer Experience :** Provides 24/7 access and personalized services.

4. **Enhanced Risk Management :** Improves fraud detection and credit assessments.
5. **Competitive Edge :** Attracts tech-savvy customers and fosters innovation through fintech partnerships.

Limitations of Study :

This study does not consider how accounting policy and method changes affect the selected banks. It uses secondary data from the RBI bulletin, websites, and the annual reports of the chosen banks. The findings depend on the reliability of this data from the banks and the RBI. There are different ways to evaluate the performance of these banks, which may lead to different results. Additionally, this research is time-limited and focuses only on specific criteria for analysis.

Conclusion :

Based on the detailed discussion above, it has been determined that a prevalent myth in the economy is that digitalization has improved the financial performance of the selected banks. However, this study found no statistical relationship indicating such improvement. It is important to acknowledge that digitalization offers numerous benefits, including enhanced work patterns for employees, a more user-friendly experience, a larger customer base, data-driven decision-making, improved service resolution quality, and timely handling of customer grievances.

Despite its advantages, digitalization has not greatly improved banking performance in India. The main reasons include economic disruptions from demonetization and digitalization, which have created instability. Although intended to combat misappropriation and black marketing, these measures have been largely ineffective as many people still prefer traditional banking due to fears of cyberattacks and lack of oversight. Additionally, inadequate technological support and financial resources have hindered effective implementation, resulting in similar financial performance before and after digitalization for both public and private sector banks.

Given these findings, the following suggestions have been formulated to enhance the positive impact of digitalization on the financial performance of the Indian banking industry in the coming years.

Suggestions of Study :

1. The government should encourage banks to use their Corporate Social Responsibility (CSR) budgets to tackle online banking challenges related to fund allocation.
2. Banks must adopt advanced technology and provide continuous training to employees to enhance productivity.
3. Strategies should be implemented to close redundant branches, which will reduce operating costs and allow for increased investment in technology upgrades.

4. Telecommunications providers should offer high-speed internet in rural areas to make digitalization accessible to all.
5. The Reserve Bank of India (RBI) needs to create a strong model to protect against cyberattacks and reduce sensitive information leakage.

References :

1. Krylov, D., Papaika, O., Panchenko, O., Pylevych, D., Kozlianchenko, O., & Konoplia, N. (2022). Modern Tendencies of Digitalization of the Financial Services Sphere. IJCSNS, 22(2), 39.
2. Kumar Jha, A. (2022). Impact of Digitization on Bank's Performance and Bank's Competitiveness. Available at SSRN 4164875.
3. Meena, R. (2019). Implications of Digitalization in Banking Sector: A Review of Literature. International Journal of Advanced Scientific Research and Management, 4(9).
4. Mette, J., & Gsell, S. (2017). The Impact of Digitalization on the Business Model of German Retail Banks.
5. Orji, A., Ogbuabor, J. E., Okon, A. N., & Anthony-Orji, O.I. (2018). Electronic banking innovations and selected banks performance in Nigeria. The Economics and Finance Letters, 5(2), 46-57.

Vishal Garg

Assistant Professor,

Faculty of Commerce,

Kalicharan PG College,

University of Lucknow.

Contact: 8172845760

vishalgarg524@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 138–144

Digital Payments and Consumer Behaviour : Trends and Challenges

Rajat Sahay Dubey
Research Scholar (Commerce), CSJM University, Kanpur
Dr. Mayank Jindal
Assistant Professor, School of Business Management CSJM University, Kanpur

Abstract :

This research paper examines the evolving landscape of digital payments and its impact on consumer behavior. The study analyses key trends shaping the digital payment ecosystem, including the rise of mobile wallets, contactless payments, and emerging technologies like artificial intelligence and blockchain. It also explores the challenges faced by consumers and businesses in adopting digital payment methods, such as security concerns, lack of trust, and technological barriers. The paper draws on a comprehensive review of recent literature and industry reports to provide insights into changing consumer preferences, adoption patterns, and the factors influencing the use of digital payment solutions. The findings highlight the growing importance of convenience, security, and incentives in driving consumer adoption of digital payments. The study also discusses the implications for businesses, policymakers, and financial institutions in fostering a secure and inclusive digital payment environment. This research contributes to the understanding of the complex interplay between technological advancements, consumer behavior, and the future of digital payments.

Keywords : *Digital payments, consumer behavior, mobile wallets, payment security, financial technology.*

1. Introduction :

The digital payment landscape has undergone a significant transformation in recent years. societies move towards cashless economies, understanding the impact of digital payments on consumer behavior has become increasingly important for businesses, policymakers, and researchers alike.

Digital payments encompass a wide range of electronic transactions, including mobile wallets, contactless payments, online banking, and emerging technologies like cryptocurrencies. The adoption of these payment methods has been accelerated by factors such as increased smartphone penetration, improved internet connectivity, and the COVID-19 pandemic, which has heightened the demand for contactless and remote payment options.

This research paper aims to provide a comprehensive analysis of the current trends and challenges in digital payments, with a particular focus on their influence on consumer behavior. By examining the latest developments in the field and synthesizing insights from various studies, we seek to shed light on the factors driving the adoption of digital payment methods and the implications for different stakeholders in the payment ecosystem.

2. Trends in Digital Payments

2.1 Rise of Mobile Wallets and Contactless Payments :

- Increasing adoption of mobile wallets and contactless payment methods.
- Popular among younger consumers; driven by government initiatives and smartphone penetration in emerging markets.
- Accelerated by COVID-19 to reduce physical contact.

2.2 AI and Machine Learning in Payments :

- Enhancing payment processing, fraud detection, and customer experience.
- AI-powered systems improve security and reduce false positives.
- Machine learning personalizes payment experiences and streamlines checkout processes.

2.3 Blockchain and Cryptocurrencies :

- Potential disruptors in digital payments.
- Promise faster, secure, and lower-cost transactions, especially cross-border.
- Stablecoins gaining attention for international money transfers.

2.4 Open Banking and API Integration :

- Allows third-party access to banking information through APIs.
- Drives innovation and competition in financial services.
- Facilitates integrated and seamless payment experiences, especially for account-to-account payments.

2.5 Buy Now, Pay Later (BNPL) Services :

- Popular alternative to traditional credit cards, especially among younger consumers.
- Allows instalment payments without interest if paid within a specified period.

- Expected significant growth, reshaping consumer financing options.

3. Impact on Consumer Behavior

3.1 Changing Payment Preferences :

The proliferation of digital payment options has significantly influenced consumer payment preferences. A study conducted in Coimbatore, India, found that digital payments are changing consumers' buying and spending habits, with the use of e-wallets, debit or credit cards, and internet banking empowering consumers to make anytime, anywhere purchases (Soundarapandian, 2020).

The convenience and speed offered by digital payments have led to an increase in impulse purchases and more frequent transactions. Research has shown that the ease and speed of digital payments can encourage impulsive purchases, potentially leading to changes in overall spending patterns (Propulsion Tech Journal, 2023).

3.2 Increased Financial Awareness :

Digital payment platforms often offer tools for tracking expenses in real-time, which can enhance consumer financial awareness and promote more responsible spending habits. Studies have shown that these features can lead to greater financial literacy and better budgeting practices among users.

However, the impact on spending behavior is not uniform across all consumers. Some research suggests that the use of digital payments may lead to increased spending due to the reduced "pain of payment" associated with non-cash transactions (Asati, 2019).

3.3 Trust and Security Perceptions :

Consumer trust in digital payment systems plays a crucial role in their adoption and continued use. While digital payments offer convenience, they also raise concerns about privacy and security. A study found that trust in the security of transactions varies across different digital payment gateways, with some platforms perceived as more secure than others (Zehra et al., 2024).

The perception of security and privacy risks can significantly influence consumer behavior. Research has shown that consumers who perceive higher levels of security and privacy protection are more likely to adopt and use digital payment methods.

3.4 Demographic Differences in Adoption :

The adoption of digital payment methods varies across different demographic groups. While younger generations are generally more inclined to use digital payments, older consumers are also increasingly embracing these technologies.

Income levels and education also play a role in digital payment adoption. A study in India found that factors such as age, gender, and income level significantly influence how consumers perceive

and interact with digital payment technologies (IJNRD, 2023).

3.5 Shifts towards Cashless Transactions :

The increasing adoption of digital payments is contributing to a broader shift towards cashless transactions. This trend is particularly pronounced in urban areas and among younger consumers. However, the transition to a cashless society also presents challenges, such as the potential exclusion of certain segments of the population who may not have access to digital payment technologies (World Wide Journals, 2018).

4. Challenges in Digital Payments

4.1 Security and Fraud Concerns :

One of the primary challenges facing the digital payment ecosystem is the ongoing threat of security breaches and fraud. As digital transactions become more prevalent, they also become more attractive targets for cybercriminals. A study by Comerica Bank highlighted that when consumers make payments online, it is difficult for merchants to verify their identity, potentially leading to fraudulent transactions (Comerica Bank, 2025).

4.2 Privacy Issues :

The increased use of digital payments raises significant privacy concerns, as these transactions create digital footprints that can be used to track consumer behavior. Many consumers are wary of how their financial data might be collected, stored, and used by payment providers and third parties.

4.3 Technological Barriers :

While digital payment technologies have become more user-friendly, technological barriers still exist, particularly for certain segments of the population. Issues such as lack of internet connectivity, limited access to smartphones, and low digital literacy can hinder the adoption of digital payment methods.

4.4 Lack of Trust and Awareness :

Despite the growing popularity of digital payments, lack of trust remains a significant barrier to adoption for many consumers. A study in India found that a high percentage of the population does not use digital payment apps or services due to a lack of trust in these payment modes (Jain & Kaur, 2022).

Additionally, there is often a lack of awareness regarding the use and benefits of digital payment applications, particularly among older and rural populations. Educating consumers about the security measures in place and the advantages of digital payments is crucial for increasing adoption rates.

4.5 Regulatory Challenges :

The rapidly evolving digital payment landscape presents regulatory challenges for policymakers

and financial institutions. Ensuring consumer protection, maintaining financial stability, fostering innovation, and preventing illicit activities are complex balancing acts for regulators. Cross-border transactions add another layer of complexity, as different countries have varying regulatory frameworks for digital payments.Harmonizing these regulations to enable seamless global transactions, while ensuring security and compliance, remains an ongoing challenge for the industry (Roy Choudhury, 2025).

5. Implications for Businesses and Financial Institutions :

5.1 Adapting to Changing Consumer Preferences :

As consumer preferences shift towards digital payment methods, businesses need to adapt their payment acceptance strategies. This includes integrating a variety of digital payment options, such as mobile wallets, contactless payments, and BNPL services, to meet diverse consumer needs (Mastercard Newsroom, 2024).

Financial institutions, particularly traditional banks, are facing increased competition from fintech companies and need to innovate to remain relevant. This may involve partnering with fintech firms, developing their own digital payment solutions, or leveraging open banking initiatives to offer more integrated financial services (Capgemini, 2025).

5.2 Investing in Security and User Experience :

Given the importance of security and trust in driving digital payment adoption, businesses and financial institutions need to prioritize investments in robust security measures. This includes implementing advanced fraud detection systems, enhancing data protection practices, and educating consumers about safe digital payment habits (Payments Dive, 2025).

At the same time, there is a need to balance security with user experience. Streamlining authentication processes, reducing friction in transactions, and providing intuitive interfaces are crucial for encouraging continued use of digital payment services (Checkout.com, 2025).

5.3 Leveraging Data Analytics :

The wealth of data generated by digital payments presents opportunities for businesses to gain deeper insights into consumer behavior. By leveraging data analytics and AI, companies can personalize offerings, improve risk assessment, and enhance customer engagement (Orienteed, 2024).

5.4 Addressing Financial Inclusion :

For financial institutions and policymakers, promoting financial inclusion through digital payments remains a key challenge and opportunity. Developing solutions that cater to underserved populations, such as those in rural areas or with limited access to traditional banking services, can help expand the reach of digital financial services (World Wide Journals, 2018).

6. Conclusion :

The digital payment landscape is rapidly evolving, driven by technological advancements, changing consumer preferences, and regulatory initiatives. This research has highlighted several key trends shaping the future of digital payments, including the rise of mobile wallets and contactless payments, the integration of AI and machine learning, the potential of blockchain and cryptocurrencies, and the growth of open banking and BNPL services.

These trends are having a profound impact on consumer behavior, influencing payment preferences, spending patterns, and financial awareness. However, the adoption of digital payments also faces significant challenges, including security and privacy concerns, technological barriers, and regulatory complexities.

For businesses and financial institutions, adapting to this changing landscape requires a multifaceted approach. This includes investing in robust security measures, enhancing user experiences, leveraging data analytics responsibly, and addressing issues of financial inclusion.

As digital payments continue to evolve, further research will be needed to understand the long-term impacts on consumer behavior, financial systems, and the broader economy. Policymakers, businesses, and researchers must work together to ensure that the digital payment ecosystem develops in a way that is secure, inclusive, and beneficial for all stakeholders.

The future of digital payments holds great promise for increasing financial efficiency and accessibility. However, realizing this potential will require ongoing innovation, collaboration, and a careful balance between technological advancement and consumer protection.

References :

1. Asati, R. (2019). Impact of digital payment tools on online consumer purchase behaviour. Manav Rachna International Institute of Research and Studies.
2. Capgemini. (2025). Top 10 Payment Trends 2025 | Future of Payments.
3. Datanimbus. (2024). Future of Digital Payments: Top 10 Trends to Watch.
4. Deloitte. (2025). Payments 2025 and beyond: Evolution to revolution.
5. IJNRD. (2023). A study on CONSUMER BEHAVIOUR towards Digital payments in India.
6. Jain S., & Kaur G. (2022). Study of Consumer Perception of Digital Payment Mode. Journal of Internet Commerce, 21(2), 1-20.
7. Kumar H., & Sofat R. (2022). Digital payment and consumer buying behaviour – an empirical study on Uttarakhand India.International Journal of Electronic Finance, 11(1), 1-20.
8. McKinsey & Company. (2022). Consumer trends in digital payments.

9. Mastercard Newsroom. (2024). 10 top payments trends for 2025 — and beyond.
10. National Informatics Centre. (2025). Digital Payments driving the growth of Digital Economy.
11. Orienteed. (2024). Key trends in digital consumer behavior 2024.
12. Payments Dive. (2025). Payments plays gather momentum in 2025: 6 industry trends to watch.
13. Propulsion Tech Journal. (2023). The Impact of Digital Payments on Consumer Spending Habits.Journal of Propulsion Technology, 44(4), 5374.
14. PwC.(2025). Shaping the future of payments | Trends and insights for 2025.
15. Roy Choudhury I.(2025). The Rise of Digital Payments: Trends & Challenges.LinkedIn.
16. Soundarapandian R.(2020). The Impact of Digital Payment Implementation on Consumer Behavior.Shanlax International Journal of Arts Science Humanities, 7(4), 1-8.
17. World Wide Journals.(2018). Digital payments and consumer buying behaviour in India.
18. Zehra F., Khan F.S., Mazhar S.S., Akhlaque N., Haque E., & Singh A.(2024). Exploring Consumer Preferences and Behaviour Toward Digital Payment Gateways in India.International Journal of Experimental Research Review, 41,158-167.

Rajat Sahay Dubey
M 1202 Keshav Puram, Front of Visonwood School Kalyanpur Kanpur Nagar 208017
Mobile: 9759608999
Email: rajatoffice7@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 145-150
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Influence of Religious Ethics on Business Practices in India : A Multifaceted Approach

Pardeep Kumar

Research Scholar, Department of Commerce, CSJM University (Kanpur)

& Assistant Professor, Department of Commerce, Govt. P.G. College, Ambala Cantt.

Dr. Kamlesh Kumar Patel

Assistant Professor, Department of Commerce, Harsahai P. G. Mahavidyalaya (Kanpur)

Abstract :

This paper investigates the profound influence of religious ethics on business practices in India, focusing on Hinduism, Jainism, Sikhism, and Islam. Through a comprehensive review of literature and empirical research, the study examines how religious values shape ethical decision-making, corporate social responsibility, leadership styles, and business conduct within India's business environment. The findings reveal that while themes like integrity, social responsibility, and non-violence are common across these religions, each offers distinct perspectives that uniquely impact business practices. Furthermore, the paper explores challenges and opportunities arising from religious diversity in India and provides recommendations for fostering ethical business practices that respect religious pluralism while adhering to universal ethical standards. This research contributes to the growing body of literature on the intersection of religion, ethics, and business in a globally interconnected world.

Keywords : *Religious ethics, business practices, India, Hinduism, Jainism, Sikhism, Islam, corporate social responsibility.*

Introduction :

In the rapidly evolving global business landscape, the role of religion in shaping ethical business practices has garnered increasing attention from scholars and practitioners. This is particularly relevant in India, a nation known for its rich religious diversity and rapidly expanding economy. India, with its blend of ancient spiritual traditions and modern business practices, presents a unique case study for

exploring the influence of religious ethics on business conduct. The Indian business environment is marked by the intersection of various religious traditions—primarily Hinduism, Jainism, Sikhism, and Islam—which each contribute distinct ethical principles to the business sphere. Understanding how these religious ethics impact business practices is crucial not only for local enterprises but also for international organizations operating in India, as well as policymakers and researchers seeking to promote ethical business practices in diverse cultural settings. This paper aims to examine the influence of religious ethics on business practices in India, with a focus on the ethical frameworks provided by different religious traditions and their practical implications.

Hinduism and Business Ethics :

Hinduism, as the predominant religion in India, has significantly shaped business ethics. The concept of dharma—encompassing duty, virtue, and cosmic order—is central to Hindu business ethics (Muniapan & Satpathy, 2013). The Bhagavad Gita underscores the importance of detachment from material outcomes, emphasizing ethical actions for their intrinsic value (Chakraborty, 1997). The Hindu notion of karma, which asserts that actions have consequences beyond this life, encourages long-term thinking and ethical behavior (Anand & Rosen, 2008). The principle of trusteeship, championed by Mahatma Gandhi, posits that businesses have a responsibility to use their wealth for the betterment of society (Balasubramanian et al., 2005).

Jainism and Business Ethics :

Although practiced by a smaller segment of the population, Jainism has profoundly influenced business ethics, particularly in certain regions and sectors. Jain principles like ahimsa (non-violence) extend beyond physical harm to include non-violence in thought, speech, and action, promoting more ethical and sustainable business practices (Sivakumar & Rao, 2010). Jain ethics also emphasize honesty, integrity, and fairness in transactions. The principle of aparigraha (non-attachment) encourages businesses to view their operations as a means of service rather than solely as profit-making endeavors (Somasundaram et al., 2016). These principles have driven many Jain business leaders to prioritize ethical practices and engage in philanthropic activities.

Sikhism and Business Ethics :

Sikhism advocates honest labor (kirat karni), sharing with others (vand chakna), and serving humanity (seva), offering a robust ethical framework for business conduct (Singh, 2005). The Sikh commitment to social responsibility motivates businesses to contribute to societal welfare. Sikh ethics also promote equality and non-discrimination, influencing hiring practices and workplace culture in Sikh-owned businesses. Many Sikh businesses undertake corporate social responsibility initiatives and philanthropic endeavors (Singh, 2013).

Islam and Business Ethics :

Islamic business ethics, grounded in the principles of the Quran and Hadith, emphasize fairness, honesty, and social responsibility in business dealings (Beekun & Badawi, 2005). The prohibition of riba (interest) in Islamic finance has led to alternative financial instruments that align with Islamic principles. The concept of barakah (divine blessing) encourages businesses to prioritize ethical conduct and societal welfare over short-term profits (Abeng, 1997). Islamic ethics also stress transparency in transactions and fair treatment of employees, influencing management practices in Muslim-owned businesses.

Comparative Analysis of Religious Ethics in Indian Business :

In India, while each religious tradition offers distinct views on business ethics, several common themes emerge. Integrity and honesty are emphasized across all major religions, underscoring the importance of truthfulness and ethical conduct in business dealings (Chattopadhyay, 2012). Social responsibility is another shared focus, with all traditions emphasizing the obligation of businesses to contribute to societal welfare (Balasubramanian et al., 2005). Many religious traditions also advocate sustainability, encouraging businesses to adopt a long-term approach that integrates environmental and social responsibility (Muniapan & Satpathy, 2013). Ethical leadership is highlighted as religious ethics often emphasize the role of leaders in fostering moral conduct within organizations (Chakraborty, 1997). Additionally, the concept of work as worship, found in many Indian religious traditions, fosters a sense of purpose and dedication in business activities (Singh, 2005).

Impact on Business Practices :

Religious ethics have significantly influenced various aspects of organizational behavior and decision-making in India. In the area of Corporate Social Responsibility (CSR), many Indian companies—guided by Hinduism, Jainism, Sikhism, and Islam—engage in philanthropic activities and community development as integral components of their operations (Sharma & Talwar, 2005). The Tata Group, for instance, has maintained a long-standing tradition of corporate philanthropy based on religious and ethical values (Sagar & Singla, 2004). Research indicates that religious beliefs play a significant role in ethical decision-making among Indian managers and entrepreneurs (Fernando & Jackson, 2006). A study by Parboteeah et al. (2008) found that religiosity positively influenced ethical intentions among Indian professionals. Leadership styles in Indian businesses are also shaped by religious ethics, with concepts like servant leadership—aligned with various religious teachings—gaining prominence (Sendjaya et al., 2008). Furthermore, workplace practices reflect religious ethics, with many companies providing prayer rooms and accommodating religious observances (Forstenlechner & Al-Waqfi, 2010). Ethical principles drawn from religious teachings also guide

policies on wages, working conditions, and employee welfare. Lastly, religious ethics have influenced businesses to adopt environmentally sustainable practices, with Jain-owned businesses, for example, prioritizing eco-friendly production methods (Sivakumar & Rao, 2010).

Challenges and Opportunities :

While religious ethics have positively shaped Indian business practices, they also present certain challenges. One challenge is religious diversity and ethical pluralism, which can lead to conflicting ethical perspectives in the business environment, making it difficult for organizations to maintain a consistent ethical framework (Forstenlechner & Al-Waqfi, 2010). Another challenge is balancing profit with ethics, as businesses must remain profitable while adhering to ethical principles. This balance can be particularly difficult in competitive markets (Chakraborty, 1997). Furthermore, modernization and secularization present challenges, as traditional religious values may conflict with secular business practices and international norms (Chatterjee & Pearson, 2003). Despite these challenges, the influence of religious ethics presents opportunities. Ethical branding, where companies integrate religious ethical principles into their operations, can create strong ethical brands and offer a competitive advantage (Sagar & Singla, 2004). Additionally, new business models prioritizing social and environmental sustainability may emerge from the ethical perspectives offered by different religious traditions (Abeng, 1997). As Indian businesses expand globally, their experience navigating diverse religious ethical frameworks can foster cross-cultural understanding and promote ethical business practices in international contexts (Fernando & Jackson, 2006).

Conclusion :

Religious ethics have had a profound influence on business practices in India. While Hinduism, as the dominant religion, has had the greatest impact, the ethical principles from Jainism, Sikhism, and Islam have also played significant roles in shaping the Indian business landscape. These religious traditions have fostered an environment where integrity, social responsibility, and long-term sustainability are prioritized. However, India's religious diversity also presents challenges related to ethical pluralism and the need to balance traditional values with modern business practices. As India continues to evolve as a global economic power, religious ethics will remain a significant influence, albeit in new and evolving forms. Future research could explore how Indian businesses adapt their religious ethics in the face of increasing globalization and secularization, as well as comparative studies examining the influence of religious ethics across different cultural contexts. Understanding the impact of religious ethics on business practices in India is vital not only for local businesses but also for global initiatives aimed at promoting ethical and sustainable practices in diverse cultural settings.

By recognizing the role of ethics in business conduct, organizations can foster inclusive, ethical, and socially responsible practices that contribute to sustainable development and social welfare.

References :

1. Abeng, T. (1997). Business ethics in Islamic context: Perspectives of a Muslim business leader. *Business Ethics Quarterly, 7*(3), 47-54.
2. Anand, V., & Rosen, C. C. (2008). The ethics of organizational secrets. *Journal of Management Inquiry, 17*(2), 97-101.
3. Balasubramanian, N. K., Kimber, D., & Siemensma, F. (2005). Emerging opportunities or traditions reinforced? *Journal of Corporate Citizenship*, (17).
4. Beekun, R. I., & Badawi, J. A. (2005). Balancing ethical responsibility among multiple organizational stakeholders: The Islamic perspective. *Journal of Business Ethics, 60*, 131-145.
5. Chakraborty, S. K. (1997). Business ethics in India. *Journal of Business Ethics, 16*, 1529-1538.
6. Chatterjee, S. R., & Pearson, C. A. (2003). Ethical perceptions of Asian managers: Evidence of trends in six divergent national contexts. *Business Ethics: A European Review, 12*(2), 203-211.
7. Chattopadhyay, C. (2012). Indian philosophy and business ethics: A review. *Advances in Management and Applied Economics, 2*(3), 111.
8. Fernando, M., & Jackson, B. (2006). The influence of religion-based workplace spirituality on business leaders' decision-making: An inter-faith study. *Journal of Management & Organization, 12*(1), 23-39.
9. Forstenlechner, I., & Al-Waqfi, M. A. (2010). "A job interview for Mo, but none for Mohammed": Religious discrimination against immigrants in Austria and Germany. *Personnel Review, 39*(6), 767-784.
10. Ghosh, B. (2009). *Ethics in management and Indian ethos*. Vikas Publishing House.
11. Muniapan, B., & Satpathy, B. (2013). The 'dharma' and 'karma' of CSR from the Bhagavad-Gita. *Journal of Human Values, 19*(2), 173-187.
12. Parboteeah, K. P., Hoegl, M., & Cullen, J. B. (2008). Ethics and religion: An empirical test of a multidimensional model. *Journal of Business Ethics, 80*, 387-398.
13. Sagar, P., & Singla, A. (2004). Trust and corporate social responsibility: Lessons from India. *Journal of Communication Management, 8*(3), 282-290.

14. Sendjaya, S., Sarros, J. C., & Santora, J. C. (2008). Defining and measuring servant leadership behavior in organizations. *Journal of Management Studies, 45*(2), 402-424.
15. Sharma, A. K., & Talwar, B. (2005). Corporate social responsibility: Modern vis-à-vis Vedic approach. *Measuring Business Excellence, 9*(1), 35-45.
16. Singh, C. (2013). Ethics and business: Evidence from Sikh religion. *IIM Bangalore Research Paper*, (439).
17. Singh, N. G. K. (2005). *The birth of the Khalsa: A feminist re-memory of Sikh identity*. SUNY Press.
18. Sivakumar, N., & Rao, U. S. (2010). An integrated framework for values-based management: Eternal guidelines from Indian ethos. *International Journal of Indian Culture and Business Management, 3*(5), 503-524.
19. Somasundaram, O., Murthy, A. T., & Raghavan, D. V. (2016). Jainism-Its relevance to psychiatric practice; with special reference to the practice of Sallekhana. *Indian Journal of Psychiatry, 58*(4), 471-474.

Email id: pardeepsaini706@gmail.com
Mobile: 93555-37302
Email Id: patelkamlesh96@gmail.com
Mobile: 95844-31734

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 151-155

कमजोर होता सार्क और दक्षिण एशिया में चीन का बढ़ता प्रभाव

कैलाश चन्द सैनी
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान (VSY), राजकीय महाविद्यालय, बनेड़ा, भिलवाड़ा (राजस्थान)

सार्क क्या है?

आसियान की भाँति सार्क एक क्षेत्रीय संगठन है। जब दुनिया मे महाशक्तियों के बीच शीत युद्ध चल रहा था तथा विश्व दो गुटो मे बंटा हुआ था तब दक्षिण एशिया के देशों ने अपने क्षेत्र का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास करने के लिए एक क्षेत्रिय संगठन बनाने की आवश्यकता महसूस की। दक्षिण एशिया के नेताओं के सामूहिक प्रयासों से 1985 मे जिस सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जिस संगठन की स्थापना की गई उसका नाम सार्क है।

सार्क की स्थापना :-

सार्क का पूरा नाम दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस) है। दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग का विचार सर्वप्रथम नवम्बर 1980 मे सामने आया था। तत्पश्चात 8 दि॰1985 मे ढाका में सार्क चार्टर पर हस्ताक्षर के साथ ही यह स्थापित हो गया।

सार्क के संस्थापक देश 7 है। भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, मालद्वीप, बांग्लादेश तथा श्रीलंका सार्क के संस्थापक देश है। 14वें शिखर सम्मेलन में अफगानिस्तान को सार्क का 8वाँ सदस्य देश बनाया गया। इस प्रकार वर्तमान मे सार्क में 8 देश शामिल है। इसका मुख्यालय व सचिवालय काठमाण्डू (नेपाल) से है। वर्तमान मे सार्क के 9 पर्यवेक्षक सदस्य देश है– ऑस्ट्रेलिया, चीन, यूरोपीयन संघ, ईरान, जापान, दक्षिण कोरिया, मॉरीशस, म्यांमार तथा संयुक्त राज्य अमेरीका।

सार्क के उद्देश्य :-

1. दक्षिण एशिया जनता की कल्याण को बढ़ावा देना तथा जीवन में गुणात्मक सुधार लाना।
2. क्षेत्र की आर्थिक वृद्धि, सामाजिक प्रगति, सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना।
3. दक्षिण एशिया के राष्ट्रों के मध्य सामूहिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना।
4. समान हितो के मामलो में अन्तरर्राष्ट्रीय मंचों सहयोग को मजबूत बनाना।

5. अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग को मजबूत बनाना।
6. पारस्परिक विश्वास और समक्ष समझ को बढ़ावा देना।

शार्क की उपलब्धियाँ :–

सार्क सदस्य देशों का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का 3 प्रतिशत है तथा विश्व की कुल आबादी के 21 प्रतिशत लोग सार्क देशों मे रहते है। विश्व व्यापार में सार्क की हिस्सेदारी 3.8 प्रतिशत, (2.9 ट्रिलियन अमेरीकी डॉलर) है।

- सार्क के सदस्य देशों ने एक मुक्त व्यापार क्षेत्र (FTA) स्थापित किया है। जिसके कारण इन देशों के आन्तारिक व्यापार में वृद्धि हुई है।
- SAPTA साउथ एशिया प्रेफरेंशियल ट्रेडिंग एग्रीमेंट वर्ष 1995 में सार्क देशों के मध्य व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया।
- सार्क एग्रीमेंट ऑन ट्रेड इन सर्विस (SATIS) : सेवा उदारीकरण के क्षेत्र में व्यापार करने के लिए GATS & Plus के 'सकारात्मक सूची' दृष्टिकोण का अनुसरण कर रहा है।
- भारत में एक सार्क विश्वविद्यालय तथा पाकिस्तान एवं एक ऊर्जा भण्डार की स्थापना में फूड बैंक गई है।

सार्क के समक्ष चुनौतियाँ :–

- सार्क की नियमित बैठकें नहीं हो पा रही है।
- SAFTA का क्रियान्वयन संतोषजनक नहीं रहा है तथा मुक्त व्यापार समझौता, सूचना प्रौद्योगिकी जैसी सेवाओं को छोड़कर केवल वस्तुओं तक सीमित रहा है।
- भारत व पाकिस्तान सार्क के दो बड़े देश हैं। इन दोनो देशों के सम्बंध कभी भी सामान्य नहीं रहते हैं। भारत पाकिस्तान के मध्य बढ़ते तनाव एवम् संघर्ष ने सार्क की क्षमताओं को कम किया है।
- सार्क के सदस्य देशों के मध्य पारस्परिक विश्वास की कमी है। सार्क के देश भारत को शंका की दृष्टि से देखते है।

सार्क के कमजोर होने के कारण :–

– **शिखर सम्मेलनों का स्थगन :**

राजनीतिक कारणों से पिछले 30 वर्षो में सार्क शिखर सम्मेलनों को 10 बार से अधिक बार स्थगित किया गया है। जैसे इस्लामाबाद में होने वाला शिखर सम्मेलन 2016 में रद्द कर दिया गया था, क्योंकि जम्मू कश्मीर में उरी आतंकवादी हमले के बाद भारत, बांग्लादेश, भूटान और अफगानिस्तान ने इसमें–भाग लेने से इनकार कर दिया था।

– **परस्पर विश्वास की कमी :**

भारत और पाकिस्तान के बीच अविश्वास ने सार्क की प्रगति में बाधा डाली है। इसमे पाक की भूमिका

बहुत निराशाजनक है। जैसे– सार्क मोटर वाहन समझौते को रोकना तथा भारत द्वारा प्रस्तावित सार्क उपग्रह परियोजना को रोकना।

– **कमजोर आर्थिक एकीकरण :**

संरक्षणवादी नीतियों, उच्च रसद लागत, राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी और विश्वास की व्यापक कमी के कारण दक्षिण एशिया में अन्तर–क्षेत्रीय व्यापार क्षेत्र के वैश्विक वैश्विक व्यापार के 5 प्रतिशत पर अपनी क्षमता से बहुत नीचे बना हुआ है। व्यापार तथा निवेश को बढ़ावा देने में SAFTA को भी न्यूनतम सफलता ही मिली है।

– **राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव :** सार्क को एक अभियान गतिशील क्षेत्रीय समूह (आसियान की भाँति) में बदलने के लिए सदस्य देशों मे राजनीतिक इच्छा शक्ति का लगातार अभाव रहा है।

– **सुरक्षा चुनौतियाँ :**

सदस्य देशों के बीच खतरे की अलग–अलग धारणाओं के कारण सार्क सार्क को सुरक्षा सहयोग में संघर्ष करना पड़ रहा है। पाकिस्तान की ओर से सीमापार आतंकवाद पर भारत की चिंताएँ अभी भी अनसुलझी है जिससे क्षेत्रीय सुरक्षा पहलों में प्रगति अवरुद्ध हो रही है।

भारत के प्रभुत्त्व की धारणा :–

छोटे सदस्य देश भारत को उसके बड़े भूगोल, अर्थव्यवस्था और सैन्य ताकत के रूप कारण एक प्रमुख 'हितधारक' के रूप में देखते हैं। इससे क्षेत्र में भारत की मंशा को लेकर आशंका उत्पन्न होती है। और सहयोग में बाधा उत्पन्न होती है।

– **विकल्प के रूप में बिम्सटेक :**

बिम्सटेक दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों को जोड़ता है तथा निष्क्रिय पड़े सार्क के लिए एक विकल्प प्रदान करता है।

सदस्य देशो में राजनीतिक अस्थिरता :–

सार्क के अधिकांश सदस्य देशों में राजनीतिक स्थिरता का अभाव है। पाकिस्तान में बार–बार सैनिक शासन आ जाता है। पाकिस्तान का सैनिक शासन भारत की लोकतांत्रिक सरकार को आशंका की दृष्टि से देखता है। इसके अलावा अभी हाल ही में श्रीलंका तथा बांग्लादेश में सत्ता का तख्ता पलट हुआ है। सदस्य देशों में इस प्रकार की अस्थिरता सार्क की सेहत के लिए सही नहीं है।

सार्क का कमजोर होना तथा चीन का क्षेत्र में प्रभाव :–

सार्क के कमजोर होने से दक्षिण एशिया में चीन को अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए प्रेरित कर रहा है। हाल के वर्षों में चीन दक्षिण एशिया के देशों में तेजी से निवेष निवेश करने में लगा है। भारत को घेरने की नीति के तहत चीन भारत के लगभग सभी पड़ोसी देशों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेता जा रहा है।

श्रीलंका मे चीनी प्रभाव :–

आज धीरे–धीरे श्रीलंका में चीन के 'ऋण जाल' की आशंका बढ़ती जा रही है? क्योंकि बीजिंग लगातार

निवेश कर रहा है। चीन श्रीलंका का सबसे बड़ा द्विपक्षीय ऋणदाता है। श्रीलंका में चीन की सक्रियता भारत तथा सार्क के भविष्य के लिए सही नहीं है। आज श्रीलंका पूर तरह से चीनी प्रभाव में है। जो भारत के लिए खतरे की घण्टी है। राजमार्गो, एक हवाई अड्डे और एक बन्दरगाह में चीन ने भारी निवेष किया है।

मालद्वीप में चीनी प्रभाव :-

श्रीलंका की भाँति मालद्वीप में भी आज चीनी प्रभाव है। मालद्वीप के राष्ट्रपति मोहम्मद मुइजू ने जनवरी 2024 में अपनी पहली राजकीय यात्रा के लिए चीन को चुना। मालद्वीप के राष्ट्रपति द्वारा प्रथम यात्रा के लिए भारत की उपेक्षा करके चीन जाना, चीनी प्रभाव का प्रतीक है। श्रीलंका की भाँति मालद्वीप में भी चीन अपना निवेश बढ़ा रहा। है जो भारतीय हितो के विपरीत है।

नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव :-

सार्क के अन्य देशों की तरह नेपाल भी चीनी प्रभाव में आ रहा है जो भारत तथा सार्क के लिए राम संकेत नहीं है। चीन नेपाल में भारी मात्रा में निवेश कर रहा है। चीन नेपाल में अपने हवाई संपर्क का आक्रामक रूप से विस्तार रह रहा है। पोखरा और लुम्बिनी में दो नए अन्तरर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों के उद्घाटन के बाद यह माना जाने लगा है कि आने वाले दिनों में और अधिक चीनी शहर नेपाल से जुड़ जायेगे। व्यापार की मात्रा बढ़ाकर अपने आर्थिक जुड़ाव को तेज करने के लिए चीन और नेपाल ने नेपाल–चीन सीमा पर छह व्यापार बिन्दु खोले है। चीन नेपाल की सैन्य क्षेत्र में भी मदद कर रहा ही अक्टूबर 2018 में चीन ने नेपाल की सेना की आपदा प्रबंधन क्षमताओं को मजबूत करने और नेपाल के संयुक्त राष्ट्र शांति–मिशनों को बेहतर ढंग से सुसज्जित करने के लिए नेपाल को सैन्य सहायता में 50 प्रतिशत की वृद्धि की।

भूटान में चीनी प्रभाव :-

भूटान और चीन के बीच सीमा विवाद और चीन द्वारा भूटान में बसाए गए गाँवों के कारण भारत की सुरक्षा चिन्ताएँ बढ़ी है।

बांग्लादेश में चीनी प्रभाव :-

बांग्लादेश भी आज चीनी प्रभाव मे आ चुका है जो सार्क तथा भारत के लिए सही नहीं है। चीन बांग्लादेश में बुनियादी ढांचे, ऊर्जा और दूर संचार में निवेश कर रहा है। चीन की बेल्ट एण्ड रोड इनिशिएटिव (BRI) के तहत बांग्लादेश को शामिल किया गया है। चीन बांग्लादेश की सेना को हार्डवेयर और प्रशिक्षण दे रहा है। बांग्लादेश में चीन का प्रभाव बढ़ने से भारत के रणनीतिक हितो को खतरा हो सकता है।

पाकिस्तान में चीनी प्रभाव :-

पाकिस्तान तो शुरू से ही कम सार्क के प्रति तथा चीन के प्रति ज्यादा वफादार रहा दक्षिण एशिया में पाकिस्तान चीन का सबसे बड़ा समर्थक और नजदीकी है। चीन–पाक सम्बंधों का असर पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था, पर्यावरण और सम्प्रभुता पर पड़ा है। पाकिस्तान चीन–पाक आर्थिक गलियारा (CPEC) का मुख्य पार्टनर है। पाकिस्तान चीन के साथ मिलकर भारतीय हितों के विपरीत काम कर रहा है। आंतकवाद जैसे मुद्दे

पर चीन पाकिस्तान के साथ खड़ा रहता है। चीन–पाक गठबंधन आज भारत के खिलाफ काम कर रहा है। चीन भारत के लद्दाख क्षेत्र में अपने गाँव बसा रहा है।

निष्कर्ष :–

सारांश से यह कहा जा सकता है कि सार्क धीरे–धीरे अपनी प्रासंगिकता खोता जा रहा है। जहाँ आशियान क्षेत्रीय संगठन अपनी उपयोगिता लगातार सिद्ध कर रहा है। वहीं सार्क अपनी आन्तरिक कल हों और परस्पर अविश्वास के कारण कमजोर हो रहा है। सार्क देशों की आपसी फूट का फायदा चीन उठा रहा है जो न तो भारत के हित में है और न ही सार्क के अन्य देशों के हित में। आज चीन में भारत को पड़ोसीहीन करने में लगा हुआ है। अतः सार्क देशो को एक बार फिर एकजुट होते हुए सार्क के मंच पर सकारात्मक के साथ आना चाहिए। यह भारत व सार्क के हित में है।

सन्दर्भ सूची :–

1. अन्तराट्रीय सम्बध–बी० एल० फड़िया।
2. समकालीन विश्व राजनीति – NCERT
3. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध – डॉ० एस. सी. सिंघल।
4. अन्तरर्राष्ट्रीय सम्बंध – डॉ० बी० एम० जैन (राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 156-158

स्वतंत्रता संग्राम में ठाकुर प्यारेलाल सिंह का योगदान

गायत्री सिंह
शोधार्थी, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय रायपुर, (छ.ग.)

शोध सारांश :–

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता पुष्प की अभिलाषा में जैसा वर्णित है :–

''मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक!
मातृ–भूमि पर शीश– चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक!''

ऐसी ओजस्वी कविता जिसने पूरे भारत में देशभक्ति की भावना से जनमानस को ओतप्रोत कर दिया। पूरे भारत की इस भावना से भला छत्तीसगढ़ कैसे अछूता रह सकता था। आज हम गर्व के साथ ऐसे ही देशभक्त वीर सपूतों को याद करते है। चाहे वह छत्तीसगढ़ के प्रथम शहीद वीर नारायण हो या हनुमान सिंह। राजनांदगांव छत्तीसगढ़ का एक छोटा सा शहर है फिर भी राजनितिक चेतना के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह सदैव अग्रणी रहा है, राजनांदगांव के ही ठाकुर प्यारेलाल सिंह का नाम हम सबने सुना है, भारत माता के इस वीर सपूत ने अपने कर्म–धर्म का परिचय अपनी तीक्ष्ण लेखनी और संघर्ष से भी दिया। इनको छत्तीसगढ़ में सहकारिता के जनक के रूप में भी जाना जाता है। छत्तीसगढ़ प्रदेश में राजनीतिक तौर पर चेतना गरीब–मजदूरो में तब जागृत हुई जब 1919 में रोलैक्ट एक्ट की दमनकारी नीतियों के विरोध में विद्रोह शुरू हुआ। यहाँ स्थित बंगाल–नागपुर कॉटन मिल में मजदूरों ने ठाकुर प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन छेड़ 2 दिन तक काम बंद रखा।

प्रस्तावना :–

हमारा देश सदियों तक गुलामी की आग में झुलस रहा था। इस आग को बुझाने देश भक्तों ने अपने रक्त की धारा बहाई। अंग्रेजी राज के कुचक्र को तोड़ने हमारे भारतीय सपूतो ने आत्म बलिदान के साथ अपना सर्वस्व भारत माता के चरणों में न्योछावर कर दिया। देश के कोने–कोने से आजादी के मतवालों ने अपनी हुंकार भरी। और पूरे देश को एक कर आजादी की लड़ाई के लिए लोगो को जागरूक किया। तब जाकर कहीं 1947 में हम आजाद हुए ऐसे ही हमारे प्रदेश से भी कई स्वंतत्रता संग्राम सेनानियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया। जैसे वीर नारायण सिंह, हनुमान सिंह, पंडित रविशंकर शुक्ल, पंडित सुन्दरलाल शर्मा, ई राघवेन्द्र राव और ऐसे कई अन्य वीर सपूतो नें छत्तीसगढ़ महतारी के आँचल में पले–बढ़े और स्वतंत्र भारत के सपने को पूरा करने कोई कसर नहीं छोड़ी।

जीवन परिचय :–

ठाकुर प्यारेलाल सिंह जी का जन्म 21 दिसंबर सन 1891 में छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव जिले के 'दैहान' नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम दीनदयाल सिंह और माताजी का नाम नर्मदा देवी था।

पूत के पाव पालने में ही दिखने लगते है इस बात को चरितार्थ करते हुए बाल्यकाल से ही ठाकुर प्यारेलाल मेधावी, सच्चे स्वदेशी और राष्ट्र प्रेम की विचारधारा से ओत–प्रोत रहें। मात्र 16 वर्ष की आयु से ही स्वदेशी कपड़े पहनने लगे। वही उनकी शिक्षा–दीक्षा की बात करे तो प्राथमिक शिक्षा राजनांदगांव और इसके बाद अभी प्रदेश की राजधानी रायपुर में हुई। हाई स्कूल की शिक्षा ग्रहण करने के लिए उन्हें रायपुर आना पड़ा 1999 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। इसके बाद नागपुर से बीए की परीक्षा पास की नागपुर और फिर जबलपुर, 1916 में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने वकालत प्रारंभ कर दी।

पत्रकारिता में पदार्पण :–

स्वतंत्र भारत के उद्देश्य की पूर्ति लिए आवश्यक तत्व होता है। आम जनों में राष्ट्र प्रेम की भावना का जागृत होना व अंग्रेजो के अन्याय एवं दमनकारी नीतियों का पर्दाफाश होना। इसके लिए आवश्यक था संचार माध्यमों का प्रयोग कर इस पुनीत सन्देश को जन–जन तक पहुँचाना। इसके लिए श्री ठाकुर प्यारेलाल सिंह ने पत्रकार के रूप में भी इस माटी की सेवा की। इन्होने 1950 में अर्ध–साप्ताहिक राष्ट्रबंधु का प्रकाशन किया। वह इसके संस्थापक तथा प्रधान सम्पादक थे। राष्ट्रबंधु अगले 4 वर्षो तक प्रकाशित होता रहा। ठाकुर प्यारेलाल सिंह हिंदी, संस्कृत तथा अंग्रेजी के विद्वान थे। इतिहास, राजनीति, धर्म, दर्शन के क्षेत्र में उनका ज्ञान अगाध था। ग्रामीणों के बीच वे अपना भाषण मूलतः छत्तीसगढ़ी तथा सामान्य बोलचाल की भाषा में देते थे। ताकि ग्रामीण जनता उनके दिए संदेशो को जान सके।

माँ सरस्वती की सेवा :–

सन् 1905–06 ई. में गरीब छात्रों को शिक्षा से वंचित करने के लिए फीस बढ़ा दी गई और यूनिफार्म अनिवार्य कर दिया गया। ठा. प्यारेलाल सिंह के नेतृत्व में छात्रों ने इसके विरूद्ध आंदोलन किया और इसमें सफलता प्राप्त की। इसी समय प्यारेलाल सिंह बंगाल के कुछ क्रांतिकारियों के संपर्क में आए और क्रांतिकारी साहित्य का प्रचार करते हुए अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत की। उन्होंने विद्यार्थी जीवन में ही सन् 1909 में राजनांदगाँव में सरस्वती पुस्तकालय की स्थापना की। यह क्रांतिकारी साहित्य के प्रचार–प्रसार का अच्छा माध्यम सिद्ध हुआ। सन् 1928 में ब्रिटिश सरकार ने इस पुस्तकालय में ताला लगा दिया।

देश सेवा :–

असहयोग आन्दोलन के दौरान ठाकुर प्यारे लाल सिंह ने वकालत छोड़ने के बाद गांव–गांव घूमकर चरखी और खादी का प्रचार करने लगे। पर प्रचार केवल दूसरों के लिए ही नहीं था, प्रचार तो अपने आप के लिए भी था।

ऐसा कहा जाता है कि उन दिनों प्यारे लाल सिंह सिर्फ एक ही खादी की धोती पहनते थे, उसी को पहन कर स्नान करते थे, धोती का एक छोर पहने रहते तो दूसरा छोर सूखाते फिर दूसरा सूखने पर उसे पहन लेते और पहला छोर सूखाते थे। लगातार 3 साल तक प्यारे लाल जी ने उसी एक धोती को पहनते रहे।

सन् 1951 को ठाकुर प्यारेलाल ने कांग्रेस से अपना त्याग पत्र दे दिया। एक विशुद्ध गाँधीवादी संस्था

अखिल भारतीय किसान मजदूर पार्टी के वे सदस्य बने रहे। आचार्य कृपलानी इस संस्था के अध्यक्ष थे। बहुत कम समय में ही प्यारेलाल सिंह ने इतने अच्छे ढ़ंग से उस दल को संगठित किया। सन् 51–52 में हुए पहले आम चुनाव में इस दल को द्वितीय स्थान मिला। इसी पार्टी के टिकट पर प्यारेलाल जी ने सन् 1952 के आम चुनाव में रायपुर से फिर से विधान सभा, मध्य प्रदेश सदस्य चुने गये।

सन् 1950 में चुनाव के तुरन्त बाद ठाकुर जी ने आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन में शामिल हो गए। न जाने मध्य प्रांत के कितने गांवों की उन्होंने पैदल यात्रा की। ऐसा कहते है कि मध्य प्रान्त का कोई हिस्सा नहीं छूटा था जहाँ वह न पहुंचे हो भूदान आन्दोलन में उन्होंने हजारों एकड़ भूमि एकत्र की और भू वितरण में सहयोग दिया।

निष्कर्ष :–

ठाकुर प्यारेलाल ने गुलामी के उस दौर में भी गरीब–मजदूरों की आवाज बने और देशहित में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले देशभक्तों में से एक थे। उनके त्याग समर्पण का यह देश सदैव ऋणी रहेगा। आने वाली तमाम पीढ़ी देश भक्ति और सामाजिक सरोकार के उदाहरण इन्ही से सीखेगा। पत्रकार के रूप में देश सेवा को समर्पित पत्रकारिता का एक उत्तम नमुना उनके द्वारा प्रस्तुत किया है। जो एक प्रतिमान है और जो आज भी अनुकरणीय है। भावी पीढ़ी को ठाकुर प्यारेलाल सिंह के जीवन परिचय से अवगत कराना हमारा उद्देश्य होना चाहिए जिनसे वह चरित्रवान बने और देश सेवा का भाव उनमे जागृत हो। छत्तीसगढ़ के महान विभूतियों में से एक हमारे श्रद्धेय ठाकुर प्यारेलाल सिंह जी का पूरा जीवन ही देश प्रेम और सेवा का उत्तम प्रतिमान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. धानुलाल, श्रीवास्तव, अष्टराज अम्भोज'', रेजा प्रेस नरसिंहपुर मध्य प्रदेश, 1925 पृ. 68
2. झा, प्रफुल्ल, राजनीतिक चेतना का अंकुरण स्थल बी. एन. सी. मिल्स'', पूर्वोक्त, पृ. 25
4. कर्मवीर, 28 फरवरी 1920
5. संकल्प, नागपुर शहार से प्रकाशित, अंक 42, तारीख 10 सितम्बर 1921, पृ. 5
6. कर्मवीर, 20 अगस्त 1920
7. ठाकुर, श्रीहरि, त्यागमूर्ति ठाकुर प्यारेलाल सिंह'' पूर्वोक्त, पृ. 13
8. लेखक व संपादक परितोष चक्रवर्ती, छत्तीसगढ़ की पत्रकारिता : हमारे पुरोधा।
9. ठाकुर, श्रीहरि, त्यागमूर्ति ठाकुर प्यारेलाल सिंह,'' आशीष प्रेस, रायपुर, 1955
10. छत्तीसगढ़ संदेश, 13–8–1947, अंक 25, पृ. 13
11. वर्मा, भगवान सिंह छत्तीसगढ़ का इतिहास प्रारंभ से 2000 ई. तक'' मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

ईमेल– gayatrisingh15391@gamil.com

मो.नं.– 8878533913, 9340208261

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 159-164
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षण प्रक्रिया में स्मार्टफोन की उपयोगिता का अध्ययन

दीक्षा देशपांडे, शोधार्थी
डॉ. नरेंद्र त्रिपाठी, शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, इलेक्ट्रानिक मीडिया
कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

शोध सारांश :-

आधुनिक परिदृश्य में स्मार्टफोन संचार के एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया है। स्मार्टफोन न केवल हमारी जीवनशैली का हिस्सा है बल्कि हमारी आदत के रूप में विकसित हो चुका है। स्मार्टफोन के माध्यम से इंटरनेट का प्रयोग विद्यार्थियों को देश दुनियां से जोड़कर उन्हें शिक्षित, सूचित और जागरूक कर रहा है। उक्त शोध के माध्यम से महाविद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में स्मार्टफोन की उपयोगिता, अभिरुचि, आवश्यकता और प्रभाव के अध्ययन के साथ–साथ परिवर्तन की संभावनाओं और आवश्यकताओं पर विमर्श करने का प्रयास किया गया है ताकि विद्यार्थियों हेतु एक स्वस्थ्य डिजिटल शिक्षण पद्धति की संकल्पना को चरितार्थ किया जा सके। चयनित शोध विषय "महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शिक्षण प्रक्रिया में स्मार्टफोन की उपयोगिता का अध्ययन" में राजनांदगांव शहरी क्षेत्र के प्रमुख महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को केंद्र में रखकर उन पर स्मार्टफोन की उपयोगिता का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :- स्मार्टफोन, नेटवर्क, डिजिटल शिक्षा, उपयोगिता।

प्रस्तावना :-

आधुनिक विश्व के नए सूचना तकनीकी युग में स्मार्टफोन ने हमारे जीवन पर गहरी पैठ कर ली है। स्मार्टफोन विशेष रूप से युवाओं की मीडिया अभिरुचि का अभिन्न अंग बन गया है। युवा पीढ़ी हमारे समाज का प्रतिनिधित्व करती है, समाज के भविष्य का निर्धारण करती है। युवा वर्ग की प्रत्येक गतिविधि समाज को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। लिहाजा युवा वर्ग और विशेष रूप से विद्यार्थियों पर स्मार्टफोन की उपयोगिता का अध्ययन निश्चित ही शोध का विषय है।

सूचना क्रांति के इस युग में जहां सूचनाएं पूरे विश्व में एक छोर से दूसरे छोर तक तेज गति से पहुंच रही हैं। ऐसे में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में स्मार्टफोन की उपयोगिता और योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। संचार माध्यमों के वर्चस्व के बीच स्मार्टफोन ने युवाओं के चिंतन, समझ एवं दृष्टिकोण को

बहुत प्रभावित किया है। स्मार्टफोन के प्रयोग से निश्चित ही युवा वर्ग वैश्विक ज्ञान से जुड़कर विकास के नए प्रतिमान गढ़ रहा है।

महत्व :–

शोधार्थी द्वारा चयनित विषय पर किए गए शोधकार्य से सामाजिक एवं अकादमिक दोनों ही स्तर पर लाभ प्राप्त होगा। विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों पर किए गए अध्ययन के माध्यम से जो परिणाम या तथ्य निकल कर आएंगे उनसे स्मार्टफोन से होने वाले लाभ–हानि तथा विद्यार्थियों में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव की जानकारी प्राप्त होगी ही साथ ही शोध के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में स्मार्टफोन के नए एवं बेहतर प्रयोग के लिए दिशा भी मिलेगी। शोधार्थी द्वारा चयनित विषय निम्नलिखित बिन्दुओं के कारण महत्वपूर्ण है :–

1. स्मार्टफोन का प्रयोग विद्यार्थी विचारों, सूचनाओं, भावनाओं एवं जानकारी के आदान–प्रदान हेतु करते हैं। विद्यार्थी आवश्यक ज्ञान एवं सूचनाओं की प्राप्ति के साथ–साथ जागरूकता के लिए भी स्मार्टफोन को महत्वपूर्ण मानते है।
2. उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्मार्टफोन पर उपलब्ध विभिन्न शैक्षणिक सॉफ्टवेयर एवं एप्लिकेशन्स का प्रयोग किस तरह किया जाए जिससे विद्यार्थी लाभान्वित हों यह जानने के लिए भी यह शोध महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।
3. विद्यार्थियों में स्मार्टफोन के पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन से इसके प्रयोग के विस्तार और सीमाओं को तय करने में सहायता मिलेगी।
4. शिक्षा में आईसीटीसी के प्रयोग के कारण विद्यार्थियों को ज्ञान और सूचना की प्राप्ति वैश्विक स्तर पर संभव हो पाई है। साथ ही सोशल मीडिया जैसे कि यू ट्यूब के माध्यम से विद्यार्थी ऑनलाइन शिक्षा भी घर बैठे प्राप्त कर सकते है। तो क्या इस दिशा में स्मार्टफोन का प्रयोग विद्यार्थियों और शिक्षण संस्थानों द्वारा सही दिशा में और सही तरीके से किया जा रहा है। यह महत्वपूर्ण जानकारी भी उक्त शोध से प्राप्त हो सकेगी।

स्मार्टफोन की उपयोगिता :–

विश्व के विभिन्न देशों में स्मार्टफोन का प्रयोग करने वालों की संख्या और स्तर भिन्न–भिन्न है। प्यू रिसर्च सेंटर के अनुसार स्मार्टफोन के माध्यम से इंटरनेट और सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने वाले लोगों में 18 से 29 साल के युवाओं अर्थात उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवाओं की संख्या सर्वाधिक है। जब हम युवाओं और विशेष रूप से उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में स्मार्टफोन की उपयोगिता की बात करते है तो हम पाते हैं कि युवाओं के विकास की दिशा में स्मार्टफोन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आज के इस तकनीकी युग में जहां शिक्षा भी तकनीक आधारित हो गई है वहाँ स्मार्टफोन ने न केवल सूचना बल्कि ज्ञान और शिक्षण सामग्री के प्रसार में महती भूमिका निभाई है। इंटरनेट पर अनेक एजुकेशनल साईट्स एवं सॉफ्टवेयर्स उपलब्ध है जिनका प्रयोग कर विद्यार्थी वांछित सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। यू ट्यूब पर लाखों की संख्या में एजुकेशनल वीडियोज और हजारों की संख्या में एजुकेशनल चौनल्स उपलब्ध हैं जिनका लाभ विद्यार्थी ले रहे हैं। एक छोटे से गांव या कस्बे का विद्यार्थी भी अपने स्मार्टफोन के माध्यम से देश के किसी बड़े शहर के बड़े संस्थान के जाने–माने शिक्षकों के ज्ञान का लाभ घर बैठे ले सकता है। आज का युवा वर्ग और

खास तौर पर कॉलेज जाने वाले विद्यार्थी स्मार्टफोन पर काफी हद तक निर्भर होकर अनेक तरह से इसका प्रयोग कर लाभान्वित हो रहे हैं। वास्तव में स्मार्टफोन ने जीवन की जटिलताओं को आसान बनाया है।

उद्देश्य :–

1. महाविद्यालयीन छात्र–छात्राओं में स्मार्टफोन के प्रति अभिरुचि का अध्ययन करना।
2. विद्यार्थियों में स्मार्टफोन की उपयोगिता का अध्ययन करना।
3. युवाओं को स्मार्टफोन के बेहतर प्रयोग हेतु प्रेरित व जागरूक करना।
4. स्मार्टफोन द्वारा शिक्षा में विद्यार्थियों को होने वाले लाभ की जानकारी प्राप्त करना।

परीकल्पना :–

1. पिछले कुछ वर्षों में स्मार्टफोन का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। विशेष रूप से युवाओं का रुझान स्मार्टफोन की ओर बहुत अधिक बढ़ा है।
2. स्मार्टफोन केवल सूचनाओं और विचारों का ही सम्प्रेषण नहीं करता बल्कि शिक्षा के प्रसार में भी सहायक है।
3. उच्च शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत छात्र–छात्राएं निश्चित ही स्मार्टफोन के प्रयोग से कई मायनों में लाभान्वित हो रहे हैं।

शोध प्रविधि :–

विद्यार्थियों में स्मार्टफोन की उपयोगिता जानने हेतु उक्त शोध के लिए राजनांदगांव छ. ग. के शहरी क्षेत्र का चयन किया गया है जिसके अंतर्गत शहर के प्रमुख महाविद्यालयों के छात्र–छात्राओं पर शोध किया गया है। प्रस्तुत शोधकार्य में शोध की सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग करते हुए चयनित महाविद्यालयों में विद्यार्थियों के मध्य सर्वे किया गया।

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु चयनित महाविद्यालयों के कुल 50 छात्र–छात्राओं का यादृच्छिक प्रतिचयन किया गया जिनमें स्नातक एवं स्नातकोत्तर सहित शोधार्थी शामिल हैं। शोध उपकरण के रूप में प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। इस हेतु 25 प्रश्नों की एक बहुविकल्पीय प्रश्नावली तैयार की गई जिसके माध्यम से वांछित प्रश्नों के उत्तर, उत्तरदाताओं से प्राप्त किये गए और उसके विश्लेषण के आधार पर शोध परिणाम निकाले गए।

शोध विश्लेषण :–

प्रश्नावली के आधार पर उत्तरदाताओं से प्राप्त प्रतिक्रिया के माध्यम से आंकड़ों का जो विश्लेषण किया गया है वह इस प्रकार है।

34 प्रतिशत विद्यार्थियों ने माना कि स्मार्टफोन सूचना प्राप्ति का सबसे अच्छा माध्यम है तो वहीं 8 प्रतिशत छात्र–छात्राएं कहते है कि यह जागरूकता के लिए बेहतर है। 16 प्रतिशत मानते है कि इससे शिक्षा और 8 प्रतिशत मानते है कि मनोरंजन प्राप्त होता है। शेष 34 प्रतिशत विद्यार्थियों का मानना है कि स्मार्टफोन से सभी तरह की आवश्यक जानकारियां हमें प्राप्त होती हैं।

40 प्रतिशत विद्यार्थी कहते हैं कि स्मार्टफोन से विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास में बहुत अधिक मदद मिलती है वहीं सर्वाधिक 58 प्रतिशत विद्यार्थी मानते है कि स्मार्टफोन से हमारे विकास में कुछ हद तक मदद मिलती है। केवल 2 प्रतिशत ने कहा कि इससे शैक्षिक विकास में कोई मदद नहीं मिलती।

सर्वाधिक 82 प्रतिशत छात्र–छात्राओं का मानना है कि स्मार्टफोन पर उपलब्ध शैक्षिक सामग्री उनकी शैक्षणिक बाधाओं और समस्याओं को दूर करने में सहायक है किंतु 4 प्रतिशत ऐसा नहीं मानते। 14 प्रतिशत विद्यार्थियों का कहना है कि यह थोड़ा बहुत मददगार है।

72 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बताया कि उनके महाविद्यालय में कक्षा शिक्षण के दौरान आईसीटी का प्रयोग किया जाता है वहीं 28 प्रतिशत छात्र–छात्राओं ने इस बात से इंकार किया।

सर्वाधिक 56 प्रतिशत विद्यार्थियों ने कहा कि स्मार्टफोन पर उपयोगी पाठ्य सामग्री उपलब्ध रहती है जिससे अध्ययन में सहायता मिलती है। 36 प्रतिशत ने कहा कि थोड़ी बहुत सहायता मिलती है। 6 प्रतिशत ने इससे इनकार किया और 2 प्रतिशत ने कहा कि कुछ कहा नही जा सकता।

सर्वाधिक 74 प्रतिशत युवा मानते है कि स्मार्टफोन ने डिजिटल साक्षरता के माध्यम से युवाओं के बहुमुखी विकास में भूमिका निभाई है। 2 प्रतिशत ने इस बात से इनकार किया। 24 प्रतिशत थोड़े बहुत विकास की बात करते है।

शोध व्याख्या :-

प्रश्नावली विश्लेषण में देखा गया कि अधिकांश विद्यार्थी मानते है कि स्मार्टफोन ने कई तरह से युवाओं को प्रभावित किया है। अधिकांश विद्यार्थी शिक्षा और जागरूकता में स्मार्टफोन की भूमिका को स्वीकार करते है। सर्वेक्षण के दौरान विद्यार्थियों से चर्चा में ज्ञात हुआ कि उनके पाठ्यक्रम में भी स्मार्टफोन मे उपलब्ध शैक्षिक सॉफ्टवेयर्स, एप्लिकेशन्स, वेबपोर्टल्स और वेबसाइट्स की जानकारी दी जाती है साथ ही कक्षा शिक्षण में आईसीटी के प्रयोगों को भी शामिल किया जाता है। लगभग सभी विद्यार्थी स्मार्टफोन के बारे में जानते हैं और किसी न किसी रूप में ज्ञान प्राप्ति के लिए इसका प्रयोग करते हैं।

हर विद्यार्थी अपनी दिनचर्या का थोड़ा न थोड़ा समय स्मार्टफोन पर व्यतीत करता है। विद्यार्थियों का मानना है कि स्मार्टफोन हमें शिक्षा, सूचना, जागरूकता के अतिरिक्त भी अन्य अनेक तरह की सूचनाएं प्रदान करता है। विद्यार्थी यह मानते हैं कि स्मार्टफोन ने आवश्यक शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराने एवं डिजिटल साक्षरता के माध्यम से विद्यार्थियों के विकास में योगदान दिया है।

प्रश्नावली में बहुविकल्पीय प्रश्नों के अतिरिक्त विद्यार्थियों को उनके सुझाव अथवा टिप्पणी के लिए अलग से स्थान दिया गया जिसमें विद्यार्थियों ने यही विचार रखे कि स्मार्टफोन ज्ञान का भंडार है यदि इसका उपयोग सही तरीके से किया जाये तो निश्चित ही छात्र–छत्राओं को इसका लाभ मिलेगा।

शोध परिणाम/निष्कर्ष :-

कोई भी शैक्षिक अनुसंधान तभी सार्थक और सफल माना जाएगा जब उसके द्वारा प्राप्त परिणाम न केवल शैक्षिक दृष्टि से अपितु सामाजिक दृष्टि से भी उपयोगी हों और अपने उद्देश्यों को पूर्ण कर सकें। उक्त शोध के सर्वेक्षण और प्रश्नावली विश्लेषण के पश्चात जो निष्कर्ष या प्राप्तियाँ निकल कर आईं हैं। वे इस प्रकार हैं :–

– महाविद्यालय स्तर के युवाओं में स्मार्टफोन के प्रति लोकप्रियता एवं अभिरुचि बहुत अधिक है।
– स्मार्टफोन का प्रयोग युवाओं द्वारा किसी निश्चित समयावधि में नही किया जा रहा बल्कि वे आदतन बार–बार उसे खोलते बंद करते है। इस प्रकार दिन में कई बार विद्यार्थी स्मार्टफोन के साथ समय बिताते हैं।

- स्मार्टफोन के माध्यम से महाविद्यालयीन छात्र–छात्राओं का सामाजिक दायरा बढ़ा है। वे नए–नए लोगों से मिलकर उनके ज्ञान और अनुभव का लाभ शिक्षा के क्षेत्र में भी ले रहे हैं।
- स्मार्टफोन सूचनाओं का अथाह भंडार है।
- स्मार्टफोन युवाओं को अभिव्यक्ति हेतु एक ऐसा विशाल मंच प्रदान करता है जिसके माध्यम से युवा अपने विचारों, कला, कौशल और ज्ञान की बेहतर अभिव्यक्ति कर खुद को निखार सकते हैं। यही नहीं अपनी बातें सोशल प्लेटफॉर्म के माध्यम से जन–जन तक पहुँचा कर सामाजिक जागरूकता, जन आंदोलन और विभिन्न सामाजिक समूहों आदि का भी हिस्सा बन पा रहे हैं और अनेक समस्याओं का समाधान खोज पा रहे हैं।
- जो जानकारियां विद्यार्थी पुस्तकों, शिक्षकों या अन्य संदर्भ सामग्री के अभाव में प्राप्त नहीं कर पाते वह उन्हें स्मार्टफोन से प्राप्त हो जाती है।

सुझाव :–

उपरोक्त अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कुछ प्रमुख सुझाव निम्नानुसार है :–

- महाविद्यालयों में प्राध्यापक विद्यार्थियों को उन ऑनलाइन शैक्षिक कार्यक्रमों, एप्लिकेशनस, एजुकेशनल साइट्स, सॉफ्टवेयर्स और इंटरनेट पर उपलब्ध ऐसी सामग्री से अवगत कराएं जो शैक्षिक दृष्टि से उपयोगी हैं।
- महाविद्यालयों में नवाचार के रूप में आईसीटी के प्रयोग पर बल देना चाहिए।
- विद्यार्थियों में स्मार्टफोन के निरंतर बढ़ते प्रयोगों को देखते हुए इसके विविध पहलुओं पर शोध और विमर्श की आवश्यकता भी परिलक्षित होती है। अतः इस क्षेत्र में मीडिया के शोधकर्ताओं को और भी अध्ययन की आवश्यकता है।
- हर वर्ग के विद्यार्थी स्मार्टफोन से लाभान्वित हो सके इस हेतु सभी स्थानों पर इंटरनेट और तकनीकी की उचित मूल्य पर पहुंच भी आवश्यक है।

संदर्भ सूची :–

1. विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा स्मार्टफोन की उपयोगिताय सतीश कुमार, डॉ अमित संगवान, जर्नल ऑफ एडवांस एण्ड स्कॉलरली रीसरचेस इन एलाइड एजुकेशन, वॉल्यूम 16, आईएसएसएन 2230–7540, मई –2019
2. छात्रों की पढ़ाई पर मोबाईल फोन के उपयोग का प्रभाव, जेफ कूजनेकोफ, रिसर्च गेट, जुलाई 2013
3. सोशल नेटवर्किंग कल और आज, राकेश कुमार, रिगी पब्लिकेशन्स, पंजाब, 2015
4. भारत में जनसंचार, केवल जे. कुमार, जयको पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, 2017
5. सूचना प्रौद्योगिकी, विजय कुमार आनंद, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010
6. नया मीडिया और नए मुद्दे, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009
7. Social Media Usage and Impact, Paul Martin, Thomas Erickson; Global Vision Publishing House, New Delhi, 2013

8. Impact of Media and Technology in Education, Prof. Ramesh Chandra; Kalpaz Publication, Delhi, 2005
9. "सोशल मीडिया और युवा विकास" (डॉ. मुकुल श्रीवास्तव, सुरेन्द्र कुमार, मीडिया मीमांसा अंक : जनवरी–मार्च 2017)
10. "सोशल मीडिया का वर्तमान परिदृश्य : उपयोगिता एवं प्रभाव" (डॉ. अरविंद कुमार सिंह, शोध संचयन अंक : 10, 15 जुलाई 2019)
11. "Impact of Social Media on Youth: (P. Uma Rani, Padmalosani; International Journal of Innovative and Exploring Engineering Volume : 8, September 2019)

ऑनलाइन संदर्भ :-

- https://www.vidyalankar.org
- https://www.talkwalker.com/blog/social-media-statistics-in-india
- https://en.m.wikipedia.org/wiki/Social_media

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 165–169

मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में पुरुष मनोविज्ञान

रेनू सैनी, शोधार्थी
डॉ. शिवांगी सिंह, शोध निर्देशक
डॉ. के. एन. मोदी विश्वविद्यालय, निवाई।

मन्नू भंडारी एक ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने स्त्री मन के साथ–साथ पुरुष मनोभावों का भी बारीकी से चित्रण किया है। उनकी प्रत्येक कथा जहां न केवल स्त्री की मनोदशा का बखूबी चित्रण करती है, वहीं पुरुष के अनेक रूपों का भी जीवंत विवरण प्रस्तुत करती है। उनकी नारी पात्र अपने समय से आगे की पात्र है जिनके मन में आक्रोश है। वे खुलकर अपने प्रेम संबंधों को स्वीकार भी करती हैं। स्वयं मन्नू ने भी अपने पहले प्रेम को स्पष्ट स्वीकार करते हुए कहा था,'[1] ''अपने पहले प्रेम की असफलता की टूटन जो मेरे शरीर के रोम–रोम से चर्म–रोग के रूप में फूटी थी, मैंने इन छात्राओं के बीच ही झेली थी।'' उनकी कहानियों ने बालक, किशोर, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध हर पुरुष के मर्म को छुआ है। वह केवल उथली बातें नहीं करती हैं, अपितु उनके पात्र हमें अपने परिवार के अंदर ही कहीं बैठे प्रतीत होते हैं।

'आपका बंटी' का पुरुष तो बालक ही है। मगर वह अपने माता–पिता के टूटते संबंध को देखकर बिखरने लगता है। उसे माता–पिता के दूसरे विवाह की उलझन और उलझाती जाती है। इस उपन्यास में बच्चे की विवशता, वेदना उभर कर सामने आती है। यह अत्यंत संवदेनशील उपन्यास है। इसे जब लिखा गया था तो इस उपन्यास ने हर पाठक के हृदय को तार–तार कर दिया था। उन्हें बंटी से सहानुभूति के साथ–साथ समानुभूति हुई थी। हालांकि यह बात अब स्पष्ट है कि 'आपका बंटी' का कथानक काल्पनिक न होकर वास्तविक था। सुप्रसिद्ध लेखक मोहन राकेश की पत्नी ने दूसरा विवाह कर लिया था। स्वयं मोहन राकेश ने भी तलाक के बाद अन्य स्त्री से विवाह कर लिया था। ऐसे में उनका बच्चा पेंडुलम की भांति इधर–उधर झूल रहा था। जब मन्नू ने इस उपन्यास के चार एपिसोड लिखे थे तो धर्मवीर भारती ने मन्नू भंडारी से कहा था,'[2] ''यह राकेश की दुखती रग है वो बहुत हर्ट फील करेगा। और मैं जहां तक समझता हूं कि न तुम राकेश को हर्ट करना चाहेगी। मैं भी नहीं करुंगा। तो एक बार उनसे बात करा लो।'' धर्मवीर भारती जी के कहने पर मन्नू ने राकेश से इस संदर्भ में बात की थी। उनसे सहमति मिलने पर उन्होंने इस उपन्यास को आगे बढ़ाया था। यह उपन्यास हिन्दी साहित्य जगत का कालजयी उपन्यास बन गया। इस उपन्यास में उभरी बालक की संवेदनाएं, मनोविज्ञान, भय, घृणा, टूटते संबंधों सभी ने पाठकों के अंतर्मन को भावनाओं की चाशनी में भिगो दिया था।

उनकी किशोर मन की पीड़ा, दर्द, हार्मोनल परिवर्तन के उतार–चढ़ाव को उकेरती कहानियों ने भी हिन्दी साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी। ये कहानियां हैं :–

1. गोपाल को किसने मारा
2. अनथाही गहराइयां
3. रेत की दीवार
4. असामयिक मृत्यु

गोपाल को किसने मारा :-

यह कहानी मन्नू भंडारी की आखिरी कलमकारी में से निकली वह मोती है जो किशोर मनोभावों के साथ–साथ समाज के अनुरुप बदल रहे भाइयों के मनोभावों का भी सशक्त चित्रण करती है। किशोर मन जब दुनिया के रहस्यों, रास्तों को जानता जाता है तो वह उनमें उतरने के लिए आतुर हो उठता है। ऐसे में चाहे वे रहस्य या मार्ग जानलेवा ही क्यों न हों? किशोर इस बात को नहीं समझते। रामनिझावन का बड़ा बेटा मामा के उकसाने पर शहर की ओर रवाना हो जाता है। वहां कारखाने में काम करते हुए वह बिजली के तार से करंट लगने पर मर जाता है। उसके किशोर सपने असमय ही दम तोड़ देते हैं। वहीं दूसरा भाई कई वर्षों बाद गोविंद की याद में बनाए गए प्याऊ के स्थान पर वहां दुकान खोलने के लिए अड़ जाता है। इस कहानी में समय के अनुसार संवेदनहीन होती भावनाओं का सशक्त चित्रण है।

अनथाही गहराइयां :-

इस कहानी में शिवनाथ नामक किशोर शिक्षिका सुनंदा के निशुल्क पढ़ाने पर उनके प्रति सम्मान के भावों से भर उठता है। मगर कुछ समय बाद सुनंदा को लगता है कि वह उसके नर्म स्वभाव का अनुचित लाभ उठा रहा है। वह उसे चांटा मारकर ऐसे शब्द बोल देती हैं जो किशोर और भावुक मन के शिवनाथ को आहत कर देते हैं। वह आत्महत्या कर लेता है। जब सुनंदा को यह ज्ञात होता है कि शिवनाथ के मन में उसे लेकर केवल सम्मान के भाव थे, तो वे आत्मग्लानि में डूब जाती हैं। यह कहानी किशोर मन को गहराई से समझने के लिए प्रेरित करती है।'[3] ''नौजवानों में आकांक्षा से पूर्ण कल्पनाएं मुख्य होती हैं।'' इसलिए उनके मनोभावों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और पूरी सच्चाई जाने बिना प्रतिक्रिया नहीं देनी चाहिए।

रेत की दीवार :-

यह कहानी किशोर 'रवि' पर केंद्रित है। वह इंजीनियरिंग कर रहा है। उसे इंजीनियर की पढ़ाई कराने के लिए पिता घर के खर्चों में कटौती करते हैं। भाई–बहनों की इच्छाएं और उमंगे धरी रह जाती हैं। मां की आंखों का ऑपरेशन होना है। ये सब काम रुके पड़े हैं ताकि रवि की पढ़ाई निर्विघ्न चलती रहे। रवि को लगता है कि उसकी पढ़ाई पूरी होते ही उसके कंधे चरमराने वाले हैं क्योंकि उन पर परिवार के सभी सदस्यों की आकांक्षाएं और उम्मीदें लदी हुई हैं। वह बेचैन हो जाता है। उसे लगता है कि यदि उसकी नौकरी नहीं लगी तो क्या होगा? इस प्रकार वह स्वयं को टूटता और बिखरता महसूस करता है।

असमायिक मृत्यु :-

घर में एकमात्र कमाऊ सदस्य की मृत्यु होने के बाद सबसे अधिक गाज परिवार के बड़े सदस्य पर गिरती है। कहानी में दीपक एक ऐसा किशोर है जिसके पोर–पोर में अभिनय बसता है। अभिनय से उसे प्रेम है। वह उसी में अपना भविष्य संजोना चाहता है। लेकिन पिता महेश की मृत्यु के बाद वह घर का सबसे बड़ा सदस्य बन जाता है। चौथे के दिन जपब दीपू के सिर पर पगड़ी पहनाई जाती है तो मामा रुंधे आंसुओं से कहते हैं,'[4] ''इसे केवल रस्म मत समझना दीपू बेटे! आज से बाबू की इज्ज़त, प्रतिष्ठा और बाबू का भार तुम्हारे सिर पर। अब इस की सारी जिम्मेदारी तुम्हें ही निभानी है।'' इसके बाद दीपू के सपने एक–एक कर बिखरते जाते हैं।

वह पूरी तरह से पिता का चोला ओढ़ लेता है।

युवावस्था में जब व्यक्ति प्रेम में होता है तो उसे पूरी दुनिया सतरंगी और गुलाबी लगने लगती है। मगर प्रेम की आड़ में कई बार पुरुष महिलाओं के साथ धोखा और छल करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। उनकी निम्नलिखित कहानियां यही प्रदर्शित करती हैं :–

– अभिनेता – एक बार और – आते–जाते यायावर

अभिनेता :–

इस कहानी में अभिनेत्री रंजना दिलीप को तन–मन से प्रेम करने लगती है। उसे दिलीप की बातें मुग्ध करती हैं। मगर उसका सरल मन पुरुष के चालाकी भरे मन को समझने में असफल रहता है। एक दिन बातों–बातों में दिलीप रंजना से बोलता है, '[5] मैं लड़कियों की नस–नस पहचानता हूं। तुम्हें देखते ही तुम्हें पाने की लालसा मन में जाग उठी और इसलिए मैं मुंह मोड़कर बैठ गया। लड़की उसकी की ओर खिंचती है, जो उसकी उपेक्षा करे।''

इस कहानी में मन्नू भंडारी ने पुरुष मनोविज्ञान को बखूबी बताने का प्रयास किया है। पुरुष अत्यंत भोला बनकर अनेक रुपसियों को अपने जाल में फंसा लेता है। उनका उपभोग करता है, उनके साथ दुर्व्यवहार भी करता है।

एक बार और :–

इस कहानी में कुंज के माध्यम से पुरुष मनोभावों की उथल–पुथल, व्यर्थ की बेचारगी प्रदर्शित करने के भाव उत्पन्न होते हैं। पुरुष अक्सर अवसर के अनुरुप अपने हाव–भाव और कर्म को करते हैं। वे परिस्थितियों के अनुरुप अपने को ढाल लेते हैं। जहां नारी पुरुष को अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है, वहीं पुरुष स्वयं को अपने समय और सुविधा के अनुसार उसे समर्पित करता है। बिन्नी कुंज से मिलने के लिए सदैव तैयार रहती है, लेकिन कुंज केवल तभी उससे मिलता है जब उसका मन करता है। हालांकि ऐसा भी नहीं है कि सभी पुरुष ऐसे होते हैं, लेकिन समर्पित और प्रेम में डूबे पुरुष यथार्थ में भी कम ही देखने को मिलते हैं।

नारी प्रेम में पुरुष के स्वरुप को उच्च बना देती है। उसे लगता है कि '[6]''यह पुरुष, पुरुष तंत्र नहीं मानता। धर्म, कुसंस्कार, रक्षणशलता वगैरह से लाखों मील दूर है। यह पुरुष असाधारण प्रेमी होगा।'' मगर जल्दी ही नारी के भ्रम टूट जाते हैं।

आते जाते यायावर :–

इस कहानी में मन्नू ने बताया है कि पुरुष स्वयं को एक ऐसा बलशाली पुरुष मानता है जिसके लिए महिलाओं से बातें करना, उनसे प्रेम की पींगें बढ़ाना और छोड़ना चुटकियों का खेल है। कहानी में पुरुष पात्र नरेन मिताली के सामने लड़कियों से दोस्ती की बातें करता है। उसे लगता है कि वह पुरुष है तो यह सब सामान्य है। '[7]''हम पुरुष हैं और हमें यह सूट करता है कि हम औरत के महान होने के दंभ को सहलाते हुए उसे अपनी खींची लक्ष्मण रेखाओं में ही बने रहने को फुसलाते रहें।''

मन्नू ने वैवाहिक संबंधों में पुरुष के अंदर छिपे मनोभावों को भी पथरीली धरती पर लाने का प्रयत्न किया है। उनकी निम्नलिखित कहानियों में विवाहित पुरुष के उठते–गिरते मनोभावों का जीवंत प्रस्तुतीकरण हुआ है :

शमशान, चश्मे, तीसरा आदमी, बांहों का घेरा, कमरे, कमरा और कमरे, घुटन, बंद दराजों का साथ, नई

नौकरी, स्त्री सुबोधिनी, नायक, खलनायक विदूषक, मुक्ति।

शमशान :-

इस कहानी में तो मन्नू सिगमंड फ्रायड की इस बात को साबित कर दिया है कि पुरुष सबसे अधिक प्रेम स्वयं से करता है। इसलिए वह तीनों पत्नियों की मृत्यु पर इस प्रकार बिलखता है, मानो जीवन का अंत हो गया हो। कुछ समय बाद वह फिर विवाह रचा लेता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि भारतीय पत्नियां अधिकतर पुरुष की गृहस्थी को पूरी तरह अपने कंधों पर ले लेती हैं। ऐसे में उनकी मृत्यु पर पुरुष वास्तव में अपनी सुविधाओं को रोता है। कुछ समय बाद वह उन सुविधाओं का अन्यत्र विकल्प ढूंढ लेता है।

चश्मे-चश्मे :-

कहानी में पुरुष विवाहित होते हुए भी अपनी प्रेमिका को याद करता रहता है। इस कहानी में जब निर्मल वर्मा को चिकन–पॉक्स होती है तो प्रेमिका शैल बिना अपने बारे में सोचे दिन–रात मि. वर्मा से नियमित मिलती है। वहीं जब शैल को टी.बी हो जाती है तो धीरे–धीरे मि. वर्मा उससे विमुख हो जाते हैं। यहां तक कि उसकी बीमारी में वह पिता के पत्र का हवाला देते हुए ट्रेनिंग पर जाने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। शैल के पिता जब निर्मल को पत्र लिखकर कहते हैं यदि वह 23 तारीख को शैल से विवाह कर ले तो वह बच सकती है। यह पढ़कर मि. वर्मा को अपनी सांस रुकती महसूस होती है। उन्हें लगता है कि मरणासन्न युवती से वह विवाह कैसे करें? आखिरकार शैल मृत्यु का ग्रास बन जाती है। जहां स्त्री पुरुष के लिए अपना संपूर्ण जीवन निस्वार्थ समर्पित कर देती है, वहीं पुरुष विकट परिस्थितियों में भी अपने जीवन का थोड़ा सा हिस्सा भी उसे समर्पित करते हुए हिचकता है।

तीसरा आदमी :-

इस कहानी में शकुन का पति सतीश बाप न बनने के अवसाद से ग्रसित है। वह स्वयं से बोलता है कि यदि उसे पता चले कि वह कभी शकुन को मां नहीं बना सकता तो क्या होगा? यह सोचकर वह अंदर ही अंदर सिहर उठता है। शकुन के परिचित आलोक के आने पर वह अंदर ही अंदर खुद को असुरक्षित महसूस करता है। बार–बार उसे लगता है कि उसकी पत्नी और आलोक का कोई चक्कर है। ऐसा वास्तव में इसलिए होता है क्योंकि सतीश अपनी कमी को स्वीकार करने से डरता है। पुरुष अपनी कमी को सबके सामने खासतौर पर अपनी पत्नी के समक्ष प्रकट होने से भयभीत हो जाता है। सतीश के माध्यम से लेखिका ने कुंठित पुरुष के भावों का सुंदर चित्रण किया है।

बांहों का घेरा, कमरे, कमरा और कमरे, घुटन, बंद दराजों का साथ, नई नौकरी, स्त्री सुबोधिनी नायक, खलनायक विदूषक और मुक्ति इन सभी कहानियों में पति स्वयं को श्रेष्ठ रखता है। वह अपनी कमज़ोरी और गलतियों को जानते हुए भी अपने अहं को कम नहीं करना चाहता। उसे लगता है कि वह पुरुष है, इसलिए नारी को उसकी हर बात के सामने स्वीकृति देनी होगी। पुरुषों के मन में यह बात बचपन से ही रोपित कर दी जाती है कि स्त्रियों को चारुशील, विदुशी, धैर्यशील, चरित्रवान, कर्मठ होना अनिवार्य है। यदि वे ऐसी नहीं होंगी तो पृथ्वी पर अनर्थ हो जाएगा।

मन्नू भंडारी की कहानियां लीक से हटकर हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी को देवी का रूप न देकर ऐसी स्त्रियों का रूप दिया है जिनमें कमियां होती हैं, इच्छाएं होती हैं। वे अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए

लालायित भी होती हैं। इनमें कई कहानियां ऐसी भी हैं जिनमें वे अपने पति या पुरुष के आगे हथियार डाल देती हैं तो कई कहानियां ऐसी हैं जिनमें वे झुकना बिल्कुल स्वीकार नहीं करती। कहानियों के पात्रों में द्वंद की स्थिति उत्पन्न होती है। उन्होंने इन कहानियों को मात्र कल्पनाशीलता के धरातल पर ही नहीं लिखा। उनकी कई कहानियां उनके आसपास के परिवेश से निकली हुई हैं। '[8]''मेरी कम से कम एक दर्जन आरंभिक कहानियों के पात्र इसी मोहल्ले के हैं, जहां मैंने अपनी किशोरावस्था गुजार अपनी युवावस्था का आरंभ किया था।'' मन्नू भंडारी की कहानियों ने जहां पुरुषों की सोच और मनोवैज्ञानिकता को अपनी रचनाओं में उधेड़ा, वहीं उन्होंने महिलाओं के सशक्त व्यक्तित्व को भी अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाया। नारी अत्यंत सशक्त होती है, वह हर पीड़ा और परेशानी में भी अपने परिवार को संभाल लेती है। वहीं पुरुष बिना किसी ठोस कारण के भी अपने परिवार को बरबाद करने से नहीं चूकता। हालांकि उनकी कुछ कहानियों में नारी के ऐसे रूप भी देखने को मिले, जिनके बारे में अक्सर लोग सोच ही नहीं सकते।

'यही सच है', 'ऊंचाई', 'हार' आदि ऐसी ही कहानियां हैं जिनमें नारी का बोल्ड रूप सामने आता है। उनकी कहानियों में विवाह से पूर्व, विवाहेतर संबंधों के प्रेम त्रिकोण और संबंधों में छल–कपट देखने को मिलती है। वर्तमान समय में यह यथार्थ की दृष्टि से सच हैं। उनकी कहानी अंत में पाठक को यही बताती है कि कथानक में हुई घटनाएं सच है, ऐसा जीवन में होता है।

मन्नू भंडारी का लेखन कालजयी है। उन्होंने अपने जीवन में जो कहानियां लिखी हैं, वे समय से आगे तक की हैं। आने वाली कई सदियों तक उनकी कहानियों की चमक बरकरार रहेगी। वास्तविक जीवन में उनकी कहानियों से संबंधित पात्र भी आते–जाते रहेंगे। मन्नू जी अपने कथा साहित्य के माध्यम से हिन्दी कथा साहित्य को एक ऐसे फलक पर बैठा गई हैं जिसने साहित्य को समृद्ध और सुदृढ़ किया है। उनकी कथाएं महिलाओं को जागृत करती हैं और उन्हें उनके अधिकारों से भी परिचित कराती हैं। उनकी कहानियां पुरुष मनोविज्ञान को समझने में भी मील का पत्थर साबित होंगी।

संदर्भ :–

1. एक कहानी यह भी, मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृष्ठ संख्या 33
2. संघर्षों का अलाव : आखरों की आंच, सुधा अरोड़ा, अक्षर प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 265
3. मनोविश्लेशण, फ्रायड, राजपाल एंड संस, पृष्ठ संख्या 260
4. संपूर्ण कहानियां, मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 438
5. संपूर्ण कहानियां, मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 35
6. औरत का कोई देश नहीं, तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 128
7. आदमी की निगाह में औरत, राजेंद्र यादव, राजकमल प्रकाशन, 34

पता :– रेनू सैनी, 3, डी.डी.ए फ्लैट्स, खिड़की गांव, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017

मोबाइल–9971125858

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 170-174

Śaṅkardeva's Bhakti Movement : Interpreting the *Bhāgavata-purāṇa* in the Assamese Context

Dr. Nibedita Goswami,

Associate Professor, Department of Sanskrit Sāhitya,
Kumar Bhaskar Varma Sanskrit and Ancient Studies University

Abstract :

Śrimanta Śaṅkardeva was a great socio-cultural reformer of Assam. He was a saint, scholar, poet, dramatist, dancer, actor, musician and artist. He played a great role on the cultural and religious history of the Bhakti movement of Assam. The *Bhāgavata-purāna (BP)* had also played a vital role on the Bhakti Movement of Assam. Śaṅkardeva was the protagonist of *Neo-Vaiṣṇavism* later known as *Ek Śaran Nām Dharma*.

Various forms of incarnations of *Lord Viṣṇu* are described in the *BP*. Śaṅkardeva's teachings and practices were deeply influenced by the *BP*. He wrote his Assamese book *Bhāgavata* on the basis of this *Purāna*. Inspired by the *Bhāgavata-Purāna's* narrative style, he composed numerous devotional songs (Borgeet), dramas (*Ankīyā Nāt*) and poems *(Kīrtan Ghoṣā*) in the Assamese language. Hence, Śaṅkardeva was not only a religious propagator but also a great social reformer and the pioneer of the socio-religious and cultural movement of medieval Assam in the Sixteenth Century.

Śaṅkardeva tried to give a new life to humanity by rescuing them from the irrelevant prejudices.*Trāntism* and *Śaktism* were predominant in this part of India. Under the principle of *Nāma-Kīrtana*, He glorified *Lord Kṛṣṇa* or *Viṣṇu*. The presentation of songs or *Nāma* were the primary tools of unity among the people. The individuals of various castes, creed, races and different social groups, who lived in various circumstances were united. They were changed over into one regular religious faith dependent on devotional principles. *Vaiṣṇavism* came slowly in place of *Śaktism* and *Trāntism*. The very essence of his *Ek Śaran Nām Dharma* is pillarized in *Kīrtan Ghoṣā*. The *Prasanda Mardan* part was taken from various *ślokas* of *BP*. His another magnificent creation is *Guṇamālā*. It is the simplified version of the *BP*. Śaṅkardeva translated 1st, 2nd, 3rd, 6th, 8th and 10th chapters of *BP* into simple *Brajāvalī* language.

This paper is an attempt to discuss on the impact of the *BP* on the Bhakti movement of Śaṅkardeva in Assam.

Key words :- Śaṅkardeva, *Neo-Vaiṣṇavism*, *Bhāgavata-purāṇa*, Assamese etc.

<u>Introduction</u> :-

The Bhakti Movement or the *Neo-Vaiṣṇavite* of saint Śaṅkardeva is a great socio-cultural revolution in Assam . It has brought a large spectrum of changes in all aspects of life including socio-cultural and religious dimensions.

Śaṅkardeva was born in Bardowa, in the year 1449. He not only spread the cult of Bhakti Movement in Assam but also enriched the people culturally and socially. It laid the foundation of a greater Assamese society. Before *Neo-Vaiṣṇavism*, various tribal religious beliefs, Hindu cults, *Śaktism and Śaivism* dominated the whole Assamese society. People were confused because of absence of appropriate information and knowledge. Even the tradition of sacrificing living being was considered to be a part of religious rituals of the society or a way of worshipping God. In Assam, under the initiative of Srimanta Śaṅkardeva the Bhakti Movement began in 15th century which brought about awakening changes in the Assamese society. And his encounter with the *BP* had a transformative impact on his spiritual outlook and teachings.

Methodology :-

The study is basically an analytical one. And it is based on descriptive method of research. This study is also based on secondary sources like books, journals etc.

Objective of the study :-

The main objectives of the study are given below

- To focus on the role of Śaṅkardeva and his *Vaiṣṇavism*.
- To discuss the impact of the *Bhāgavata-Mahāpurāṇa* on Śaṅkardeva's Bhakti Movement.
- To heilight the socio-cultural importance of the Bhakti Movement of Assam.

Śaṅkardeva and the Bhāgavata-purāṇa :

The *BP*, also known as Śrimad Bhāgavata-purāṇa, is one of the eighteen *Mahāpurāṇas*. This revered text in *Vaiṣṇavism* is also called the *Sātvika-purāṇa*. It consists of 12 chapters, known as *Skandhas* and contains 18,000 verses. The *BP* presents a form of Dharma (religion) that offers an alternative to the *Vedas*, emphasizing that bhakti (devotion) ultimately leads to self-knowledge, salvation, and bliss. The text asserts that *Lord Kṛṣṇa* always protects the world from evil forces.

Śaṅkardeva's *Bhāgavata* is an adaptation of the *BP*. His teachings, rooted in the *Vaiṣṇava* tradition, show the profound impact of the *BP* had on his Bhakti movement in Assam. The *Bhāgavata-purāṇa's* focus on a personal relationship with God resonated deeply with Śaṅkardeva. He adopted and promoted the worship of *Lord Kṛṣṇa* as the Supreme Deity, making devotion accessible to everyone, regardless of the rigid societal barriers of the Brahmanical order. Śaṅkardeva simplified worship by focusing on singing (*Kīrtana*), dancing (*Nātya*), and recitation of scriptures (*Pāth*) as the primary modes of devotion. His concept of "*Ek Śaran Nām Dharma*" was

significant, where "*Ek Śaran*" means surrendering to the Supreme Power, *Lord Kṛṣṇa*, and "*Nām Dharma*" emphasizes devotional songs that glorify the Supreme Being as the sole path to Moksha (liberation). According to the *BP*, there are nine forms of bhakti, with *Kīrtana* being the second:

"śravaṇaṁ kīrtanaṁ viṣṇoḥ smaraṇaṁ pāda-sevanaṁ
arcanaṁ vandanaṁ dāsyaṁ sakhyam ātma-nivedanaṁ"
(*Bhāgavata-purāṇa* 7/5/23)

Śaṅkardeva's approach to devotion made religious practice more accessible and appealing to the masses. Inspired by the *Bhāgavata-purāṇa's (BP)* descriptive style, he composed various devotional songs, dramas, and poems in the old Assamese language, known as '*Brajāvalī*'. These works, rich in philosophical and devotional themes from the *BP*, played a crucial role in spreading his message and strengthening the Bhakti movement in Assam.

The inclusive approach to devotion in the *BP* was central to Śaṅkardeva's Bhakti movement. People from all social classes embraced it. This *Purāṇa* influenced Śaṅkardeva's egalitarian ethos, inspiring social reforms that challenged the caste system. He emphasized that devotion and righteousness do not come from birth but are determined by a person's spiritual worth.

Śaṅkardeva aimed to uplift humanity by rescuing people from societal prejudices and evil elements. He envisioned a society based on humanity, free from distinctions of caste, creed, language, or habitat. Śaṅkardeva was widely praised for breaking down age-old caste barriers that had fragmented society. He believed that reciting *Kṛṣṇa's* name should not be limited to the privileged class; everyone could embrace *Kṛṣṇa's* name in their hearts. To make the *BP* more accessible, he translated it from the classical language to Brajāvalī, the common language of the masses.

Śaṅkardeva established community prayer halls and monastic centers called *Sattras*, which became hubs of religious, cultural, and social activities. By establishing *Nāmghars*, he provided an opportunity for all people to participate in religious discourses together. These institutions were crucial in spreading the teachings of the *BP* and reflected the collective devotion of a community. Both *Sattras* and *Nāmghars* played a significant role in socio-cultural control and religious practice.

Impact and Legacy :

The *Bhāgavata-purāṇa's* influence on Śaṅkardeva extended beyond his lifetime, shaping the cultural and spiritual landscape of Assam. The Bhakti movement he initiated led to the creation of a distinct Assamese identity intertwined with the principles of devotion, inclusivity, and cultural expression. The *Sattras* and *Nāmghars* established by him and his followers continue to be vibrant centers of religious and cultural activities in Assam.

The *BP* played a central role in shaping Śaṅkardeva's teachings and philosophy. This *Purāṇa,* particularly its tenth book, which narrates the life and exploits of *Lord Kṛṣṇa*, profoundly influenced Śaṅkardeva. The themes of devotion, divine love, and moral righteousness resonated with his spiritual experiences and aspirations for societal reform. He explained these in his *Bhāgavata*, also known as

'*Daśama*', for example:

"śunā kṛṣṇa kathā...... praveśilā vṛndāvana." (Verse no. 10/11079)

The verse is written in Brajāvalī.

Śaṅkardeva's *Bhāgavata* reflects *Vedānta* philosophy interwoven with popular and unforgettable legends. Initially, the goal was to translate the entire *BP* into Assamese, but this was a challenging task. Śaṅkardeva undertook the task of translating and adapting significant portions of this *Purāṇa*. Other scholars, such as Ananta Kandali, Keśavacaram, Gopalacaran, Ratna Hara Miśra, and Aniruddha Kayastha, also contributed by rendering different sections of the venerable text.

Śaṅkardeva translated and adapted many stories from the *BP* into Assamese. His work '*Kīrtan Ghoṣā*' is a compilation of devotional songs and narratives from the *BP*, intended for singing and recitation.

The Bhakti movement was a purely democratic concept of equality propagated by Śaṅkardeva through his *Ek Śaran-Nām-Dharma*, as expressed in the following lines:

"Brāhmanar a chandālarani bisāri kul"
"Kukuro ko khayheno mles gone
Xio xuddho howe harir kīrtane"
(Kīrtan Ghoṣā, 117)

He also advocated for universal fraternity :

"Parardhārmikni hingkhiba kadāsit
Kariba bhakta kdayākhakarunsit."
(Bhakti Pradip, 141)

Additionally, he recognized the greater existence of all living beings :

"Poxuxarirato āsejanaeto bixoyorojoto sukh"
(Bhaktiratnakar, 38)

Inspired by the *BP*, Śaṅkardeva developed unique performative traditions like *'Bhāonā'* that dramatized the stories from *Kṛṣṇa's* life. These performances were not only religious but also served to unite society. Thus, this *Purāṇa* played a vital role in influencing Śaṅkardeva's Bhakti Movement.

Conclusion :

Śaṅkardeva's Bhakti movement was deeply rooted in the teachings of the *BP*, which played a transformative role in the religious and cultural life of Assam. The influence of this *Purāṇa* on Śaṅkardeva's Bhakti Movement was profound and multifaceted, providing the philosophical foundation for his teachings and informing his social reforms. The spirit of equality was a cornerstone of his movement. Through Śaṅkardeva's adaptation and dissemination of the *Bhāgavata-purāṇa's* principles, the Bhakti Movement in Assam became a powerful force for spiritual renewal and social transformation, leaving an indelible mark on the region's cultural heritage. His legacy, preserved through literature, music, and performative arts, continues to inspire and guide the people of Assam generation after generation.

References :

1. Chutia D. 2011 "Srimanta Sankardeva: An Introduction" in Srimanta Sankardeva and his Philosophy, G Barua (Ed.), Srimanta Sankardeva Sangha, Nagaon.
2. Barua G. (2011). (Ed), Srimanta Sankardeva and his philosophy, Srimanta Sankardeva Sangha, Nagaon.
3. Borah, R. (2016). The Neo-Vaishnavism of Srimanta Sankaradeva: a Great Socio-Cultural Revolution in Assam. MSSV Journal Of Humanities And Social Sciences, 1, 1-11.
4. Mousumi, S. (2013). A study on uttar kamalabari sattra of Majuli, Assam. Gauhati University.
5. Sarma, N. N. (1996). Contributions of Srimanta Sankardeva and his associates towards education amongst the rural folk of Assam. Gauhati University.
6. Phukan B. (2010). Srimanta Sankardeva Sangha: Vaishnava Saint of Assam, Kaziranga Books Publisher, Guwahati.
7. Sharma, N.B. (2003). Bhakti Pradeep of Srimanta Sankardeva, Jyoti Prakashan.
8. Srimanta Sankardeva- a Kirtan Ghosa, b Bhaktiratnakar. c Bhakti Pradip.
9. Gauṇamālā of Śaṅkardeva, Dulta Baruah Publishing and Company, 1973.
10. Śrimadbhāgavat of Śaṅkardeva, Dulta Baruah Publishing and Company, 1945.
11. Kirtan Ghoṣā of Śaṅkardeva, Dulta Baruah Publishing and Company, 1945.

Mobile No: 8638658431
E-mail:nibeditag31@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 175–177

डॉक्टर नरेश सिहाग बाल मनोविज्ञान के कुशल चितेरे

कृष्णा चोटिया, शोधार्थी
गांव खचवाना, तहसील भादरा, जिला हनुमानगढ़।

डॉ. नरेश कुमार सिहाग का बाल काव्य साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनका साहित्य न केवल बालकों के मनोरंजन का साधन है, बल्कि उनके नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक विकास में भी योगदान देता है। उनकी कविताएँ सरल भाषा, सहज शैली और गहन संदेशों का सुंदर संयोजन प्रस्तुत करती हैं।

डॉक्टर नरेश सिहाग के बाल साहित्य में बाल मनोविज्ञान का चित्रण :–

बाल साहित्य बच्चों के मानसिक, भावनात्मक और शैक्षिक विकास में अहम भूमिका निभाता है। यह साहित्य न केवल बच्चों का मनोरंजन करता है, बल्कि उनके व्यक्तित्व निर्माण और सोचने–समझने की क्षमताओं को भी विकसित करता है। बाल साहित्य में बाल मनोविज्ञान की समझ अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह लेखकों को बच्चों की भावनाओं, चिंताओं, और जिज्ञासाओं को समझने में सहायता करता है। इस संदर्भ में डॉक्टर नरेश सिहाग का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

डॉक्टर नरेश सिहाग हिंदी बाल साहित्य के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। उनका लेखन बच्चों की मानसिकता और उनकी भावनाओं को गहराई से समझने का परिणाम है। उनके साहित्य में बाल मनोविज्ञान का अद्भुत चित्रण मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में बच्चों के स्वाभाविक उत्सुकता, जिज्ञासा, खेल–खुद, नैतिकता और कल्पनाशीलता को बखूबी व्यक्त किया है।

बाल मनोविज्ञान का प्रभाव :–

डॉ. नरेश सिहाग की कहानियों और कविताओं में बच्चों की भावनाओं और उनके मानसिक संघर्षों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। उनके लेखन में बाल मनोविज्ञान के निम्न पहलुओं का चित्रण स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है :–

1. **जिज्ञासा और अन्वेषण :–**

बच्चों की स्वाभाविक जिज्ञासा उनके साहित्य में प्रमुखता से झलकती है। उनकी कहानियां बच्चों के प्रश्नों और खोजने की प्रवृत्ति को प्रेरित करती हैं।

2. **भावनात्मक जुड़ाव :–**

उनकी रचनाएं बच्चों की भावनाओं, जैसे खुशी, दुःख, भय, और आत्मविश्वास को बारीकी से व्यक्त करती हैं।

3. **नैतिक मूल्यों का शिक्षण :–**

डॉ. सिहाग की कहानियों में नैतिकता और सामाजिक मूल्यों को सरल और रोचक तरीके से प्रस्तुत किया गया है, ताकि बच्चे उन्हें सहजता से अपना सकें।

4. **समाज और परिवार का योगदान :–**

उनके साहित्य में बच्चों के परिवार और समाज के साथ उनके संबंधों का गहरा चित्रण मिलता है।

5. **कल्पनाशीलता और सृजनशीलता :–**

डॉ. सिहाग की कहानियां और कविताएं बच्चों की कल्पनाशक्ति को प्रोत्साहित करती हैं, जिससे वे नई दुनिया की खोज कर सकें।

उदाहरण :–

उनकी रचनाओं में ''फूलों की कहानी'', ''चुलबुल का सपना'', और ''आसमान के रंग'' जैसी कहानियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में बच्चों की छोटी–छोटी इच्छाओं और उनके संघर्षों का गहन वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष :–

डॉ. नरेश सिहाग का बाल साहित्य बच्चों के मानसिक और भावनात्मक विकास में एक प्रेरणास्त्रोत है। उनकी रचनाएं बाल मनोविज्ञान को समझने और बच्चों को सही मार्गदर्शन प्रदान करने का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनके साहित्य के माध्यम से बच्चों के व्यक्तित्व को विकसित करने और उन्हें नैतिकता, सृजनशीलता और जिज्ञासा की दिशा में प्रेरित करने का कार्य किया गया है। इस प्रकार, उनके योगदान को हिंदी बाल साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल शोध मंजूषा' के संपादक हैं, जो एक अंतरराष्ट्रीय स्तर की बहुविषयक और बहुभाषी शोध पत्रिका है। यह पत्रिका विभिन्न साहित्यिक और सामाजिक विषयों पर केंद्रित विशेषांकों का प्रकाशन करती है।

उदाहरण के लिए, 'बोहल शोध मंजूषा' ने 'साहित्य में गांधी एवं गांधी का साहित्य' विषय पर एक विशेषांक प्रकाशित किया, जिसमें गांधीवादी विचारधारा और साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति पर शोध आलेख आमंत्रित किए गए थे।

इसके अतिरिक्त, 'शोध समालोचन' नामक पत्रिका के संपादन में भी डॉ. सिहाग की भूमिका रही है, जिसका प्रभाव कारक (Impact Factor) 5.843 है।

डॉ. सिहाग की संपादकीय दृष्टि के तहत, 'बोहल शोध मंजूषा' ने 'किन्नर विमर्श : इतिहास, समाज, साहित्य के संदर्भ में' जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक विषयों पर भी विशेषांक प्रकाशित किए हैं, जिससे समाज में

जागरूकता और समावेशिता को बढ़ावा मिला है।

उनकी संपादकीय नेतृत्व में, पत्रिका ने विभिन्न साहित्यिक और सामाजिक विषयों पर विशेषांकों का प्रकाशन किया है, जिससे शोधकर्ताओं और पाठकों को महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री उपलब्ध हुई है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. साहित्य और अनुवाद प्रक्रिया सम्पादक : डॉ. नरेश सिहाग, गीना प्रकाशन 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी – 127021 हरियाणा
2. गूगल सर्च इंजन।
3. पशु–पक्षी हमारे मित्र (रचनाकार डॉ. नरेश कुमार सिहाग)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 178–187

Modern Bikaner's Architect : Maharaja Ganga Singh

आधुनिक बीकानेर के निर्माता के रूप में महाराजा गंगा सिंह

Bharat Bhoosan Chouhan S/o Kanaram Chouhan
PIOT NO. AA6 MAHAVEER NAGAR, BARMER (RAJ.)

प्रस्तावना :–

बीकानेर, राजस्थान का एक ऐतिहासिक शहर है, जो अपनी समृद्ध संस्कृति, परंपराओं और विरासत के लिए जाना जाता है। इस शहर का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें अनेक नायक और घटनाएँ शामिल हैं। इन सभी में महाराजा गंगा सिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महाराजा गंगा सिंह का योगदान आधुनिक बीकानेर के विकास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है। उनके शासनकाल में बीकानेर ने कई महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे, जो आज भी इस शहर की पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनका दृष्टिकोण, जो सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करता था, न केवल बीकानेर बल्कि पूरे राजस्थान के लिए एक प्रेरणा बना। महाराजा गंगा सिंह के कार्यकाल (1887–1943) में बीकानेर ने अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की। उनके शासनकाल में शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय पहल की गई। "उन्होंने कई विद्यालयों और कॉलेजों की स्थापना की, जिससे स्थानीय युवाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला।

उनके प्रयासों से बीकानेर में महिला शिक्षा को भी बढ़ावा मिला, जिससे महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ। (Sharma, 2019)। विकास के क्षेत्र में, महाराजा गंगा सिंह ने कृषि को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाओं को लागू किया। उन्होंने सिंचाई की सुविधा प्रदान करने के लिए नदियों और जलाशयों के विकास पर जोर दिया। "इसके फलस्वरूप, कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था में सुधार हुआ। प्रशासनिक सुधारों का कार्य भी उनके द्वारा किया गया, जिनसे सरकारी तंत्र में पारदर्शिता और कार्यक्षमता में वृद्धि हुई।" (Mehta, 2020)। महाराजा गंगा सिंह का शासन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संदर्भ की जरूरत महसूस करता है। उनके पूर्वज, जो बीकानेर राज्य के संस्थापक थे, ने इस क्षेत्र में अपनी शक्ति और प्रभाव को स्थापित किया। गंगा सिंह के पूर्वजों ने 14वीं सदी में बीकानेर को एक रणनीतिक क्षेत्र के रूप में विकसित किया था, जो आगे चलकर एक समृद्ध राज्य में परिवर्तित हुआ। गंगा सिंह ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ भारतीय स्वतंत्रता की दृष्टि को अपने राज्य में फैलाने का कार्य किया। उनका ऐतिहासिक दृष्टिकोण न केवल बीकानेर बल्कि पुरे भारत के लिए एक नया रास्ता बनाया। उनके

द्वारा स्थापित औद्योगिक और कृषि विकास परियोजनाएँ आज भी इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाए रखने में सहायक हैं (Rao, 2021)। सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में भी महाराजा गंगा सिंह का योगदान सराहनीय था। उन्होंने जनस्वास्थ्य, सार्वजनिक सेवाएं और आधारभूत संरचना में सुधार लाने के लिए कई योजनाएँ लागू कीं। यह सब कुछ बीकानेर के निवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए किया गया। उनकी दृष्टि ने बीकानेर को एक आधुनिक शहर के रूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की।

समग्रतः, महाराजा गंगा सिंह का योगदान केवल बीकानेर के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे राजस्थान के लिए एक मील का पत्थर माना जाता है। उनके दृष्टिकोण और कार्यों ने इस क्षेत्र की संवृद्धि की राह प्रशस्त की और आज हम जो आधुनिक बीकानेर देखते हैं, उसकी नींव उनके कार्यकाल में ही रखी गई थी (Patel, 2022)।

महाराजा गंगा सिंह का जीवन परिचय :-

महाराजा गंगा सिंह का जन्म 3 अक्टूबर, 1880 को राजस्थान के बीकानेर जिले में हुआ था। वह महाराजा रामसिंह के साथ—साथ रियासत के शासक तथा सामाजिक परंपराओं के अपार समृद्धि के धनी परिवार में जन्मे थे। गंगा सिंह का परिवार राजपूत जाति से संबंधित था, जिसके कारण उनके जीवन में दरबारी संस्कृतियों और शौर्य की परंपरा का गहरा प्रभाव था। उनके पिता महाराजा रामसिंह, एक प्रतिष्ठित शासक रहे हैं और अपने शासनकाल में उन्होंने राज्य में अनेक सुधार किए। माँ, महारानी हर्षा देवी, ने गंगा सिंह के मन में शिक्षा और संस्कृति के प्रति प्रेम को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने बचपन में ही अपने परिवार से न केवल राजनीतिक बल्कि सांस्कृतिक धरोहर को भी अच्छी तरह से ग्रहण किया। गंगा सिंह की प्रारंभिक शिक्षा बीकानेर के स्थानीय शिक्षकों से हुई। इसके बाद, उन्होंने अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाने के लिए ब्रिटेन के एक प्रतिष्ठित विद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ पर उनके अध्ययन का मुख्य ध्यान प्रशासन, सैन्य शास्त्र और राजनीतिक विज्ञान पर था। यह शिक्षा उनकी राजनीतिक दृष्टिकोण और सामाजिक दृष्टिकोण को आकार देने में सहायक सिद्ध हुई। गंगा सिंह ने अपने शिक्षकों तथा मित्रों से विभिन्न प्रकार की नवीनतम विचारधाराओं का ज्ञान लिया, जिससे उनकी सोच में व्यापकता आई। इस दौरान उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपरा की महानता को समझा और यह दृढ़ संकल्प किया कि वे अपनी रियासत के विकास में इसका समुचित प्रयोग करेंगे।

गद्दी के उदगम :-

गंगा सिंह का राज्य में गद्दी पर आसीन होना एक महत्वपूर्ण घटना थी। उनके पूर्वजों ने बीकानेर को एक समृद्ध राज्य के रूप में स्थापित किया था, लेकिन गंगा सिंह ने उस धरोहर को और भी विस्तार देना चाहा। 1887 में, गंगा सिंह को मात्र सात वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठाया गया। हालाँकि, वास्तविक सत्ता उनकी माँ और मंत्रियों के हाथों में थी, परंतु छोटे महाराजा ने न केवल अपने राज्य को संभालने के लिए अपनी नीति बनाई, बल्कि उन्होंने जल्दी ही अपनी शासकीय क्षमता का प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। गद्दी पर आने के बाद, गंगा सिंह ने अनेक सुधारों को आरंभ किया। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढाँचे के क्षेत्रों में सुधारों का कार्य शुरू किया। उनके उद्यमशीलता और स्थायी विकास की नीतियों ने बीकानेर को एक मॉडल राज्य के रूप में स्थापित किया। उन्होंने कृषि में सुधार के लिए भी कई योजनाएँ बनाई, जिनसे किसानों का जीवन स्तर सुधारने में मदद मिली। गंगा सिंह के गद्दी पर आने के बाद राज्य में कई सामाजिक और आर्थिक बदलाव देखने को मिले। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी विशेष भूमिका निभाई और अपने लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए

सक्रिय रूप से काम किया। उनकी दूरदर्शिता और नेतृत्व कौशल ने बीकानेर राज्य को एक नई दिशा दी। गंगा सिंह की व्यक्तिगत जिंदगी और उनकी शासन पद्धति में इस बात का गहरा संबंध था कि उन्होंने अपने विद्यालय के अध्ययन से जो सिद्धांत सीखे थे, उन्हें व्यवहार में लागू करने की कोशिश की। फलस्वरूप, उनका कार्यकाल राज्य के लिए एक सुनहरे दौर की शुरुआत करने वाला साबित हुआ। गंगा सिंह एक ऐसे शासक थे जिन्होंने अपने शासकीय दायित्वों को केवल शासन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने अपनी संस्कृति, इतिहास और विरासत को भी सहेजने का कार्य किया। उनका जीवन एक प्रेरणा स्रोत है, जो समर्पण, नीति और परिश्रम की मिसाल प्रस्तुत करता है। उन्हें भारतीय इतिहास में एक सक्रिय और प्रेरणादायक नेता के रूप में याद किया जाता है जो न केवल अपनी रियासत के लिए, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र के लिए एक प्रेरणा का स्रोत बने।

प्रशासनिक सुधार :–

प्रशासनिक सुधार का तात्पर्य उन समग्र उपायों और नीतियों से है, जिनका उद्देश्य सरकारी तंत्र की दक्षता, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को बढ़ाना है। प्रभावी प्रशासनिक सुधार केवल शासन प्रणाली को दुरुस्त करने में मदद नहीं करते, बल्कि वे समग्र सामाजिक–आर्थिक विकास को भी गति प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में, गणतंत्रों में, प्रशासनिक तंत्र की संरचना और कार्य प्रणाली का प्रभाव उस देश की राजनीतिक स्थिरता और विकास दर पर पड़ता है। शासन प्रणाली में सुधार का प्राथमिक उद्देश्य तंत्र की कार्यक्षमता को बढ़ाना है। इसमें प्रौद्योगिकी का समावेश, प्रक्रियाओं का सरलीकरण, और विभिन्न सरकारी विभागों के बीच समन्वय को बढ़ावा देना शामिल हैं। प्रशासनिक सुधारों का एक महत्वपूर्ण तत्व यह है कि वे नागरिकों को उनकी आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते हैं। इसके लिए, सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए, ई–गवर्नेंस को बढ़ावा दिया जा सकता है। ई–गवर्नेंस के माध्यम से नागरिक आसानी से सरकारी सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं तथा सरकारी प्रक्रियाओं में पारदर्शिता बढ़ती है (Kumar, 2020)। इसके साथ साथ न्याय प्रणाली में सुधार के अंतर्गत मुख्यतः न्यायालयों की कार्यप्रणाली, निर्णयों का समय, और नागरिकों के कानूनी अधिकारों का संरक्षण शामिल होता है। न्यायिक तत्परता सुनिश्चित करने के लिए अदालतों की प्रक्रिया को सरल बनाना आवश्यक है। इसमें मामलों का त्वरित निपटारा, न्यायालयों में तकनीकी अवसंरचना का सुधार और न्यायिक सुरक्षा का संवर्धन किया जाता है। इससे नागरिकों की कानून पर विश्वास बढ़ता है और वे न्याय के लिए समय पर अपील कर सकते हैं (Sharma, 2021)। प्रशासनिक तंत्र को सही धन से चलाने के लिए वित्तीय सुधार होना आती महतवपूर्ण है, गंगा सिंह ने कर प्रणाली में कई बदलाव किए, वित्तीय सुधारों का उद्देश्य सरकारी राजस्व संग्रहण की प्रणाली को सुधारना है। कर प्रणाली में बदलाव का अर्थ है कर की दरों में सुधार, कर आधार का विस्तार, और कर संग्रहण में पारदर्शिता लाना।

इस दिशा में 'गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स' (GST) जैसे सुधारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। GST ने कर के कई स्तरों को एकीकृत किया है, जिससे सरलता और पारदर्शिता बढ़ी है (Mehta, 2022)। इसका गहरा असर राज्य के आर्थिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। वित्तीय सुधारों का दीर्घकालिक दृष्टिकोण आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। जब कर प्रणाली में सुधार किया जाता है, तो यह निवेशकों के लिए एक बेहतर वातावरण का निर्माण करता है। कर प्रणाली में सुधार से सरकार के लिए अधिक धन उपलब्ध होता है, जिससे वह सामाजिक क्षेत्र में निवेश कर सकती है – जैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा और

अधोसंरचना में। इसके अलावा, सुधारों का उद्देश्य वित्तीय समावेशन को भी बढ़ावा देना है। जब छोटे और मध्यम उद्यमों को उचित वित्तीय सहायता मिलती है, तो इससे रोजगार के अवसर बढ़ते हैं और आर्थिक विकास में योगदान होता है (Bhatia, 2023)। प्रशासनिक और वित्तीय सुधारों का समग्र उद्देश्य एक सुदृढ़, पारदर्शी और उत्तरदायी शासन प्रणाली का निर्माण करना है। यह न केवल नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि एक विकासशील और समृद्ध समाज के निर्माण में भी मदद करता है। प्रशासन में सुधार करने के लिए आवश्यक है कि सभी स्तरों पर ठोस प्रयास किए जाएं, ताकि जनता की सेवा में अधिकतम सुधार लाया जा सके।

सड़कों और आधारभूत ढांचे का विकास :-

आधुनिक जीवन की गति और विकासशील समाज की आवश्यकताएँ आधारभूत ढांचे के विकास पर निर्भर करती हैं। सड़कें, परिवहन प्रणाली, जल आपूर्ति और सिंचाई जैसे तत्व किसी भी देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में, सड़कों और आधारभूत ढांचे का विकास न केवल नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, बल्कि राष्ट्र की समग्र विकास दर को भी प्रभावित करता है। परिवहन प्रणाली उस ढांचे को दर्शाती है, जिसके माध्यम से लोग और सामान एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाए जाते हैं। इसके अंतर्गत रेलवे का संजालन, सड़कें, और पुल शामिल हैं। रेलवे का विकास किसी भी देश के परिवहन नेटवर्क का एक अभिन्न हिस्सा है। यह न केवल यात्रियों के लिए सस्ती और सुरक्षित यात्रा का विकल्प प्रदान करता है, बल्कि माल परिवहन के लिए भी एक प्रभावी माध्यम है। रेलवे के सांविधानिक विस्तार से आंतरिक व्यापार को संचालित करने में सहायता मिलती है एवं औद्योगिक विकास को भी गति प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, भारत में भारतीय रेलवे की स्थापना और उसका विकास न केवल यातायात को सुगम बनाने में सहायक रहा है, बल्कि यह देश की अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (जस, ए., 2019)। रेलवे नेटवर्क के सुदृढ़ीकरण के लिए निवेश और तकनीकी उन्नति आवश्यक हैं ताकि सुरक्षा, समय पालन, और आधुनिक ट्रेनों का संचालन संभव हो सके। इसके अलावा सड़कें और पुल परिवहन की धमनियों के रूप में कार्य करते हैं। सड़क परिवहन तेजी से बढ़ रहा है और यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच संपर्क में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि, सड़क नेटवर्क की गुणवत्ता और क्षमता का होना अति आवश्यक है ताकि यातायात को सुगम बनाया जा सके। इसके साथ ही, विशेष रूप से पहाड़ी और कठिन भौगोलिक संरचनाओं में पुलों का निर्माण यात्रा को आसान बनाता है। अच्छी सड़क और पुल संरचना से न केवल व्यापार में सुधार होता है, बल्कि यह पर्यटन क्षेत्र को भी बढ़ावा देती है (सिंह, 2020)।

जल आपूर्ति और सिंचाई :-

जल आपूर्ति और सिंचाई का विकास कृषि और जनसंख्या के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन और जल संकट के काल में, जल प्रबंधन की रणनीतियों का विकास अत्यावश्यक हो गया है। नहर प्रणाली जल प्रबंधन का एक व्यापक तरीका है, जिसमें प्राकृतिक जल स्रोतों से कृषि भूमि तक जल पहुंचाने के लिए नहरों का निर्माण किया जाता है। यह प्रणाली फसल उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक जल आपूर्ति सुनिश्चित करती है। जहां एक तरफ यह कृषि की फसल उत्पादन को सुनिश्चित करती है, वहीं दूसरी तरफ यह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर भी उत्पन्न करती है (मिश्रा, 2021)। जल उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए सटीक योजना और उन्नत जल प्रबंधन तकनीकों का क्रियान्वयन आवश्यक है। जल प्रबंधन का

अर्थ है जल संसाधनों का सही उपयोग करना ताकि भविष्य की संतुलित आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। इसमें जल भंडारण, वितरण, और पुनर्चक्रण शामिल हैं। प्रभावी जल प्रबंधन न केवल कृषि में सिंचाई को बेहतर बनाता है, बल्कि यह पानी की उपलब्धता को भी सविस्तार बढ़ाने में मदद करता है। सामुदायिक जागरूकता और जनसंख्या की भागीदारी जल प्रबंधन के इस पहलू में महत्वपूर्ण है। जैसे–जैसे जल संकट गहरा हो रहा है, संवेदनशील और जिम्मेदार जल उपयोग की आवश्यकता स्पष्ट होती जा रही है (कुमार, 2022)। सड़कों और आधारभूत ढांचे का विकास किसी भी राष्ट्र की पहचान और आर्थिक समृद्धि का प्रमुख घटक है। परिवहन प्रणाली तथा जल आपूर्ति एवं सिंचाई केरल्दि के विकास के माध्यम से समाज में समावेश, संगठित रूप से विकास, और जीवन स्तर को बढ़ाया जा सकता है। यथासंभव प्रभावी योजना और कार्यान्वयन के साथ, इन क्षेत्रों में समय पर निवेश करना न केवल वर्तमान चुनौतियों का सामना कर सकता है, बल्कि भविष्य की संभावनाओं को भी सुरक्षित कर सकता है।

शिक्षा और संस्कृति का संवर्धन :–

शिक्षा और संस्कृति किसी भी समाज की आधारशिला होती हैं। ये दो क्षेत्र न केवल लोगों के व्यक्तिगत विकास को प्रेरित करते हैं, बल्कि सामूहिक रूप से समाज को सशक्त बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षा का विकास, विशेष रूप से स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना के माध्यम से, और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, कला, संगीत और परंपराओं के माध्यम से, समाज की समृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक है। शिक्षा की बुनियाद मजबूत करने के लिए स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना एक महत्वपूर्ण पहल है। यह सुनिश्चित करता है कि हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त हो। सरकारी और निजी क्षेत्र दोनों ने इस दिशा में कई प्रयास किए हैं। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत कम है, स्कूल खोलने और वहां शिक्षकों की नियुक्ति करना आवश्यक है। इससे न केवल शिक्षा का स्तर बढ़ता है, बल्कि आर्थिक विकास में भी सहायता मिलती है। शिक्षा की प्रणाली को अपडेट करना भी आवश्यक है, ताकि यह तकनीकी बदलावों और वैश्विक प्राथमिकताओं के साथ तालमेल बिठा सके। इसमें पेशेवर कौशल विकास और तकनीकी शिक्षा को भी शामिल किया जाना चाहिए, ताकि युवा रोजगार के लिए बेहतर तरीके से तैयार हो सकें। महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना भी आवश्यक है। कई विकासशील देशों में महिलाओं की शिक्षा का स्तर अभी भी चिंताजनक है। यदि समाज में लैंगिक असमानता को दूर करना है, तो महिलाओं को समान शिक्षा का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। विभिन्न सरकारी योजनाओं और एनजीओ द्वारा चलाए गए अभियानों के माध्यम से महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं। जैसे कि प्रधानमंत्री मोदी की 'बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ' योजना, जो न केवल महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देती है, बल्कि उनकी सुरक्षा और कल्याण के प्रति भी जागरूकता बढ़ाती है (Government of India, 2020)।

सांस्कृतिक विरासत :–

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण भी समाज के विकास में महत्वपूर्ण है। कला, संगीत और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियाँ किसी भी समाज की पहचान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में, विभिन्न कला रूप, जैसे लोक कला, शास्त्रीय नृत्य, गायन, और चित्रकला को संरक्षित करना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए कई गैर–लाभकारी संस्थाएँ और प्राधिकरण काम कर रहे हैं, जो कला के संरक्षण और संवर्धन

का कार्य कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय संगीत और नृत्य के विभिन्न रूपों को प्रमोट करने के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकारें विभिन्न महोत्सव और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करती हैं (Cultural Ministry of India, 2021)।

– **स्थानीय त्योहारों और परंपराओं का विकास :** स्थानीय त्योहारों और परंपराओं का विकास समाज की सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखने में सहायक है। विभिन्न त्योहार, जैसे कि दीवाली, होली, ईद, और क्रिसमस, समाज में एकता और भाईचारे का संदेश देते हैं। इन त्योहारों के दौरान आयोजित कार्यक्रम और गतिविधियाँ स्थानीय लोगों को अपने सांस्कृतिक रिवाजों से जोड़े रखती हैं। स्थानीय परंपराओं को बढ़ावा देने से न केवल उन परंपराओं का संरक्षण होता है, बल्कि यह आने वाली पीढ़ियों को भी अपने सांस्कृतिक मूल्य सीखने में मदद करता है। कई सरकारें और सांस्कृतिक संगठनों ने इस दिशा में कार्य करना शुरू कर दिया है, ताकि स्थानीय कलाओं और शिल्पों को बढ़ावा दिया जा सके और उन्हें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिल सके (Ministry of Culture, 2022)। शिक्षा और संस्कृति का संवर्धन एक सतत प्रक्रिया है, जो समाज की सामाजिक, आर्थिक और मानसिक विकास के लिए अनिवार्य है। शिक्षा के माध्यम से, हम एक सशक्त और जागरूक समाज का निर्माण कर सकते हैं, जबकि सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण हमारे इतिहास और पहचान को बनाए रखने में मदद करता है। इसलिए, दोनों क्षेत्रों में निरंतर प्रयास करना आवश्यक है, ताकि सभी वर्गों का विकास हो सके और समाज में संतुलन बना रहे।

सामाजिक सुधार :– सामाजिक सुधार का अर्थ है समाज के विभिन्न घटकों में सकारात्मक परिवर्तन लाना, ताकि समाज के सभी वर्गों के लिए समान अवसर और समरसता उपलब्ध हो सके। भारत में सामाजिक सुधार के कई क्षेत्र हैं, लेकिन हम विशेष रूप से जाति व्यवस्था में बदलाव और स्वास्थ्य सेवाओं के विकास पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

1. **जाति व्यवस्था में बदलाव :–** जाति व्यवस्था भारत के सामाजिक ताने–बाने का एक महत्वपूर्ण पहलू रही है, जो सदियों से सामाजिक असमानता और भेदभाव का कारण बनी हुई है। इस व्यवस्था में निम्न और उच्च जातियों के बीच गहरे विभाजन देखे जाते हैं, जिसके कारण समाज में तनाव और असमानता उत्पन्न होती है। सामाजिक समरसता के प्रयास इन्हीं सामाजिक विभाजनों को समाप्त करने की दिशा में अग्रसर हैं। समरसता के प्रयासों में शिक्षा, रोजगार और जागरूकता कार्यक्रम शामिल हैं। कई गैर–सरकारी संगठनों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेष योजनाएँ बनाई हैं। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बच्चों को विशेष छात्रवृत्तियाँ और मुफ्त शिक्षा प्रदान करने वाले कार्यक्रम चालू किए गए हैं (Kumar, 2020)।

इसके अलावा, समाज में मौजूद भेदभाव को समाप्त करने के लिए विभिन्न जागरूकता अभियान भी चलाए जाते हैं, जो इस समस्या पर चर्चा और विचार–विमर्श को बढ़ावा देते हैं। जाति व्यवस्था में बदलाव के लिए विभिन्न सुधारात्मक आंदोलनों का भी योगदान रहा है। महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे नेताओं ने जातिवाद का विरोध किया और सामाजिक सुधार के लिए अपने विचार व्यक्त किए। अंबेडकर ने भारतीय संविधान को तैयार करते समय जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधान शामिल किए (Sharma, 2021)। इन सुधारात्मक आंदोलनों ने न केवल सामाजिक ढांचे में बदलाव लाने में सहायता की, बल्कि उन समुदायों के लिए आत्म–सम्मान और समानता की दिशा में भी मार्ग प्रशस्त किया जो सदियों से भेदभाव का

शिकार हो रहे थे।

2. **स्वास्थ्य सेवाओं का विकास :–** स्वास्थ्य सेवाएँ किसी भी समाज के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। भारत में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली में सुधार की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही है। सरकारी और गैर–सरकारी दोनों क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार लाने के लिए कई प्रयास किए गए हैं।

सरकार ने आयुर्वेद, होम्योपैथी, और आधुनिक चिकित्सा सहित विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए योजनाएँ बनाई हैं। इसके अलावा, चिकित्सा की गुणवत्ता सुधारने के लिए अस्पतालों और क्लिनिकों की मानक स्थापना की गई है (Ravi, 2022)। जन स्वास्थ्य कैंप और योजनाएं स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में आवश्यक भूमिका निभाते हैं। सरकार द्वारा संचालित विभिन्न प्रकार के स्वास्थ्य कैंप जैसे टीकाकरण कैंप, मातृ और शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम, और रोग निवारण अभियान ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लोगों के स्वास्थ्य को सुधारने में मदद की है (Verma, 2023)। इन कैंपों का उद्देश्य न केवल रोगों की रोकथाम करना है, बल्कि लोगों को स्वस्थ जीवन शैली अपनाने के लिए प्रेरित करना भी है। ये सच है कि किसी भी समाज के स्वास्थ्य के मामले में जागरूकता, शिक्षा और सुविधाएँ होने से सामाजिक सुधार की संभावनाएँ बढ़ती हैं। सामाजिक सुधार में जाति व्यवस्था में बदलाव और स्वास्थ्य सेवाओं का विकास दोनों ही महत्वपूर्ण पहलू हैं। सामाजिक समरसता के प्रयासों के माध्यम से जातिगत भेदभाव को मिटाना और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार लाना केवल नीतियों का कार्य नहीं है, बल्कि यह एक आवश्यक सामाजिक आवश्यकता भी है। इन दोनों क्षेत्रों में किए गए प्रयास न केवल समाज को एकजुट करते हैं, बल्कि सभी वर्गों के लिए एक समान और स्वस्थ भविष्य की दिशा में भी बढ़ाते हैं।

महाराजा गंगा सिंह की विरासत :–

महाराजा गंगा सिंह का नाम भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनके योगदान और कार्यों ने न केवल बीकानेर रियासत की पहचान को स्थापित किया, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका ने उन्हें एक महान नेता के रूप में उभारा। इस लेख में हम महाराजा गंगा सिंह की विरासत का विस्तृत विश्लेषण करेंगे, जिसमें राजनीतिक दृष्टिकोण, स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान और बीकानेर की आधुनिक छवि को समझने का प्रयास करेंगे।

1. **राजनीतिक दृष्टिकोण :–** महाराजा गंगा सिंह ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने अपने समय के प्रमुख नेताओं के साथ मिलकर बहुत से आंदोलनों का समर्थन किया। विशेष रूप से महात्मा गांधी तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ उनके संबंध, स्वतंत्रता संग्राम को मजबूती प्रदान करने में मददगार साबित हुए। गंगा सिंह ने रियासत के भीतर स्वतंत्रता संग्राम के उद्देश्यों को फैलाने के लिए अनेक पहल की। उन्होंने रियासत की स्वायत्तता को बल देने के लिए सामूहिक प्रयासों का सहारा लिया और स्थानीय जनता को स्वतंत्रता के प्रति जागरूक किया (सिंह, 2015)। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ गंगा सिंह के संबंध न केवल बीकानेर में बल्कि पूरे देश में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ गहरे संवेदनशील संबंध स्थापित किए। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में अपने योगदान के माध्यम से सशक्त आवाज को प्रोत्साहित किया। बीकानेर में 'गंगा सागर' जैसे कई कार्यक्रमों का आयोजन करके उन्होंने स्वतंत्रता की दिशा में बड़े कदम उठाए। उनकी सोच व्यावहारिक और दूरदर्शी थी, जो उन्हें अन्य सामंतों से अलग बनाती थी, जो कि केवल अपनी रियासत की सीमाओं के भीतर ही सीमित रहे (कुमार, 2017)।

2. आधुनिक बीकानेर की छवि :– महाराजा गंगा सिंह की विरासत का प्रभाव आज के बीकानेर में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उनके द्वारा स्थापित संस्थाएं और परियोजनाएं, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में सुधार, आज भी लोगों के जीवन को प्रभावित कर रही हैं। उन्होंने जल आपूर्ति, सिंचाई और कृषि के क्षेत्रों में कई सुधार लाए, जो आज भी बीकानेर के ग्रामीण और शहरी जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं (मिश्रा, 2019)। बीकानेर का आधुनिक स्वरूप भी गंगा सिंह की दूरदर्शिता का परिणाम है। उन्होंने कई सार्वजनिक निर्माण कार्यों की शुरुआत की, जिनमें महलों, मंदिरों और विद्या केंद्रों का निर्माण शामिल है। इसलिए, गंगा सिंह का दृष्टिकोण न केवल राजनीतिक था, अपितु सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए भी उन्होंने महत्वपूर्ण कदम उठाए (त्रिवेदी, 2021)। महाराजा गंगा सिंह के योगदान का महत्व आज भी बीकानेर के नागरिकों और भारतीय समाज में महसूस किया जाता है। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी भूमिका ने उनके अनुयायियों को प्रेरित किया और रियासतों में सामंतवादी ढांचे के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके द्वारा दिए गए शिक्षा सुधारों ने एक नई पीढ़ी को तैयार किया, जो आज अपने ज्ञान और कौशल के साथ देश की प्रगति में जुटी हुई है।

वास्तव में, महाराजा गंगा सिंह की विरासत एक प्रेरणा स्रोत है। उनकी दूरदर्शिता, साहस और नेतृत्व कौशल ने बीकानेर को एक ऐसी पहचान दी, जो आज भी गर्व के साथ प्रस्तुत की जाती है। आज के बीकानेर के नागरिक, जिन्होंने अपने पूर्वजों की संघर्ष गाथाओं को जिया है, महाराजा गंगा सिंह की विद्यमान विचारधारा को अपनाते हुए एक नई दिशा में बढ़ रहे हैं, जिससे उनका योगदान सदा जीवित रहेगा (शर्मा, 2020)। महाराजा गंगा सिंह की विरासत केवल उनके द्वारा किए गए कार्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनके द्वारा आमजन को संजीवनी देने वाली सोच और दृष्टिकोण का भी परिचायक है। उनके योगदान ने न केवल बीकानेर की पहचान को संवारने में मदद की, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज हम जब उनके योगदान के महत्व का मूल्यांकन करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि वे केवल एक रियासत के शासक ही नहीं, बल्कि एक सच्चे राष्ट्रभक्त थे, जिनका कार्य आज भी भारतीय समाज में जीवित है।

निष्कर्ष :–

महाराजा गंगा सिंह, जो कि बीकानेर के 27वें महाराजा थे, ने अपने शासनकाल (1887—1943) में कई महत्वपूर्ण योगदान किए, जो न केवल उनकी रजवाड़ा को, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप को प्रभावित करने वाले थे। उनका शासनकाल विकास और सुधार का प्रतीक था। उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम उठाए। उनके द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थान तथा अस्पताल आज भी उनकी दूरदर्शिता के प्रतीक हैं। बीकानेर के राजसी स्थापत्य में जो नई शैली आई, वह भी उनके प्रयासों का परिणाम थी। विशेष रूप से, उन्होंने जल संक्रमण संबंधी परियोजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया, जिससे सूखे क्षेत्रों में जल उपलब्धता सुनिश्चित हुई (सिंह, 2010)। 2. आधुनिक बीकानेर के निर्माण में महाराजा गंगा सिंह प्रमुख भूमिका आधुनिक बीकानेर के निर्माण में भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने बीकानेर शहर को एक रणनीतिक और बुनियादी ढांचे के दृष्टिकोण से विकसित किया। उनके प्रयासों से बीकानेर में रेलवे लाईन बिछाई गई, जिससे व्यापार और परिवहन में सुधार हुआ। उन्होंने आधुनिक सड़कों, पुलों और भवनों का निर्माण कराया, जो आज भी शहर की पहचान का हिस्सा हैं। इसके साथ ही, उन्होंने शहर में जल निकासी एवं स्वच्छता के महत्व को समझा और

इसके लिए विस्तृत योजनाएँ बनाई। उन्होंने न केवल खूबसूरत इमारतों का निर्माण किया, बल्कि बीकानेर की सांस्कृतिक विरासत को भी संरक्षित रखा। उनके कार्य ने बीकानेर को एक आधुनिक और समृद्ध शहर में परिवर्तित किया, जिसमें व्यापार, संस्कृति, और शिक्षा का संपूर्ण समागम देखने को मिलता है (खत्री, 2015)।

3. **आगे के शोध के लिए संस्ताव :–** महाराजा गंगा सिंह के जीवन और उनके योगदानों पर अनुसंधान की स्पष्ट आवश्यकता है। उनके दूरदर्शी दृष्टिकोण और प्रयासों का गहराई से अध्ययन करना न केवल उनके द्वारा किए गए कार्यों की महत्ता को समझाता है, बल्कि हमें भारतीय रजवाड़ों की भूमिकाओं और योगदानों को भी समझाने में मदद करता है। आगे के शोध के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों में ध्यान केंद्रित करना महत्वपूर्ण होगा :– महाराजा गंगा सिंह द्वारा स्थापित संस्थानों, जैसे कि नवगठित शिक्षण संस्थान, अस्पताल, एवं मानव सेवा संगठनों का अध्ययन करना।

– उनकी जल संवर्धन नीतियों और उनकी दीर्घकालिक प्रभावशीलता पर शोध।
– बीकानेर शहर के सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना में उनके योगदान का विश्लेषण।
– भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य रजवाड़ों की शासकीय नीतियों की तुलना में गंगा सिंह की नीतियों की प्रभावशीलता और कार्यप्रणाली का अध्ययन।
– उनके द्वारा किए गए ऐतिहासिक कार्यों की विरासत तथा आज के समय में उनके महत्व का मूल्यांकन।

इस प्रकार, महाराजा गंगा सिंह की व्यक्तित्व और उनके कार्यों का शोध न केवल उनके कार्यकाल को समझने में सहायक होगा, बल्कि यह समय के साथ उनकी विरासत को अधिक प्रासंगिक बनाने का आधार भी प्रदान करेगा (तिवारी, 2018)।

संदर्भ :–

1. शर्मा, राजेश. (2019). 'महाराजा गंगा सिंह और शिक्षा का विकास'. राजस्थान ऐतिहासिक पत्रिका.
2. मेहता, सतीश. (2020). 'बीकानेर का सामाजिक–आर्थिक विकास : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य'. भारतीय इतिहास समीक्षा.
3. राव, अरुण. (2021). 'निर्माण के सिद्धांत : महाराजा गंगा सिंह के कार्यों की समीक्षा'. आधुनिक भारतीय इतिहास.
4. पटेल, मयूर. (2022). 'बीकानेर की आधुनिकता में महाराजा गंगा सिंह का योगदान'. राजस्थान विचारधारा.
5. Kumar, A. (2020). ई–गवर्नेंस और भारत : एक आलोचनात्मक समीक्षा. Public Administration Review.
6. Sharma, R. (2021). न्याय प्रणाली में सुधार के लिए रणनीतियाँ. Journal of Legal Studies.
7. Mehta, S. (2022). GST और भारतीय अर्थव्यवस्था : डिस्कोर्स और प्रभाव. Economic and Political Weekly.
8. Bhatia, P. (2023). वित्तीय सुधार और विकास की संभावनाएँ. International Journal of Economics and Finance.
9. जस, ए. (2019). रेलवे और अर्थव्यवस्था : एक अवलोकन. भारतीय रेलवे अध्ययन संस्थान।

10. सिंह, आर. (2020). सड़क परिवहन के विकास में पुलों की भूमिका. आधुनिक परिवहन शोध।
11. मिश्रा, पी. (2021). भारत में नहर प्रणाली और उसके सामाजिक–आर्थिक प्रभाव. जल संसाधन विकास जर्नल।
12. कुमार, एस. (2022). जल प्रबंधन के नए पहलुओं की पहचान. जल नीति अध्ययन।
13. Government of India. (2020). Beti Padhao Beti Bachao Scheme.
14. Cultural Ministry of India. (2021). Promotion of Indian Art and Culture.
15. Ministry of Culture. (2022). Cultural Heritage Conservation Initiatives.
16. कुमार, आर. (2020). 'भारत में जाति व्यवस्था : एक परिवर्तनशील परिप्रेक्ष्य'. सामाजिक अध्ययन जर्नल.
17. शर्मा, म. (2021). 'डॉ. भीमराव अंबेडकर और सामाजिक यथार्थता'. भारतीय मानविकी।
18. रवि, पी. (2022). 'भारत में स्वास्थ्य सेवा : वर्तमान स्थिति और सुधार–. स्वास्थ्य विज्ञापन।
19. वर्मा, एस. (2023). 'जन स्वास्थ्य कैंप का प्रभाव : एक समीक्षा'. चिकित्सा अनुसंधान पत्रिका।
20. सिंह, रामपाल. (2015). 'बीकानेर का इतिहास और संस्कृति'. बीकानेर : राजस्थान साहित्य अकादमी।
21. कुमार, राजेन्द्र. (2017). 'स्वतंत्रता संग्राम में राजस्थान का योगदान'. जयपुर : राजस्थानी प्रकाशन।
22. मिश्रा, सुनील. (2019). 'गंगा सिंह : एक विद्वान और राष्ट्रभक्त'. नई दिल्ली : भारतीय सांस्कृतिक केंद्र।
23. त्रिवेदी, अनिल. (2021). 'राजस्थान की रियासतें और उनकी विरासत'. जोधपुर : राजस्थानी भाषा विभाग।
24. शर्मा, सुमित. (2020). 'राष्ट्रवादी नेताओं का योगदान'. उदयपुर : राजस्थान विश्वविद्यालय।
25. सिंह, राजेन्द्र. (2010). बीकानेर का इतिहास और विकास. जयपुर : राजस्थान पुस्तकालय।
26. खत्री, सुरेश. (2015). महाराजा गंगा सिंह और उनके योगदान. दिल्ली : भारतीय संग्रहालय।
27. तिवारी, दीपक. (2018). रजवाड़ों का आधुनिक भारत में योगदान. वाराणसी : भारतीय विश्वविद्यालय।

Email : Bharatchouhan3534@ gmail.com
M. : 9001883534

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 188–192

सृजनात्मकता का आकलन और उसके सिद्वांत

प्रो. बी. एल. जैन, विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग
डॉ. अमिता जैन, सहायक प्रोफेसर,
शिक्षा विभाग, जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं।

सारांश :–

सृजनात्मकता का मतलब है नए, अनोखे और उपयोगी विचारों, समाधानों या उत्पादों का निर्माण करना। यह मानसिक प्रक्रिया किसी भी क्षेत्र में हो सकती है, जैसे कला, विज्ञान, साहित्य, व्यापार या व्यक्तिगत जीवन में। प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मकता का बीज छिपा होता है, उसे प्रस्फुटन करना है। सृजनात्मकता को अपसारी चिन्तन एवं स्वतंत्र वातावरण देकर संवर्धित किया जा सकता है। कला, आकृतियां, पेंटिंग, गीत, संगीत, रचना, लेखन, काव्यकला, चित्रकला, भवन निर्माण, सर्जरी करना आदि सृजनात्मकता के प्रत्यक्ष उदाहरण है। सृजनात्मकता में अनेक तत्व समाहित हैं, जिसमें प्रवाह, विविधता, मौलिकता, विस्तारण, कल्पना, खोज, लचीलापन, नवीनता, संवेदनशीलता आदि तत्व पाये जाते हैं। सृजनात्मकता केवल नवीनता से संबंधित नहीं है, बल्कि इसके परिणाम उपयोगी, सामर्थ्यपूर्ण और समाज में कुछ बदलाव लाने वाले होने चाहिए। यह किसी विचार या समाधान को पारंपरिक सोच से बाहर जाकर उत्पन्न करने की क्षमता को दर्शाती है।

प्रमुख शब्दावली :– वैचारिक प्रवाह, अभिव्यक्ति प्रवाह, साहचर्य प्रवाह तथा शब्द प्रवाह।

प्रस्तावना :–

सृजनात्मकता का गुण प्रत्येक सदस्य में पाया जाता है, लेकिन उसे फलीभूत व संपोषित करने की आवश्यकता है। सृजनात्मकता को अपसारी एवं स्वतंत्र वातावरण देकर संवर्धित किया जा सकता है। खुला वातावरण, बहुद्देश्यीय उपकरण, गत्यात्मक क्रियाओं, साहसिक खेल, विविध सामग्रियों का उपयोग, खोजबीन करने का माहौल, कुछ वस्तु निर्माण की प्रवृति, विविध संगीत संबंधी वाद्ययंत्र, बालकों की अंतःक्रिया, पर्यावरण में नवीनता, कल्पना शक्ति, नवाचार क्षमता, सहभागिता, अन्य क्रियाकलाप आदि विकास में अग्रसरित करेंगी। प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मकता का बीज छिपा होता है, उसे प्रस्फुटन करना है। सृजनात्मकता में किसी समस्या का हल अलग–अलग तरीके से देखने का अवसर प्राप्त होता है। सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्व हैं :–

1. **सृजनात्मक प्रवाह :–** सृजनात्मक प्रवाह से तात्पर्य है किसी भी समस्या पर हमारे विचार कितने प्रत्युत्तर प्रस्तुत करते हैं या उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं या किसी समस्या पर कितने विकल्प व्यक्ति के द्वारा दिए जाते हैं। जितने अधिक विकल्प दिए जाते हैं, उस व्यक्ति में उतनी ही प्रवाहशीलता पाई जाती है। प्रवाह को पुनः चार भागों में वर्गीकृत किया गया है :–

 वैचारिक प्रवाह :– वैचारिक प्रवाह से तात्पर्य विचारों में प्रवाहशीलता। व्यक्ति के विचार कितने धारा प्रवाह है। जैसे किसी भी कहानी या पैराग्राफ के कितने शीर्षक बना सकते हैं। किसी वस्तु के कितने उपयोग किये जा सकते हैं? उसके विषय में बताना। जैसे ईट के असाधारण उपयोग बताइए? इसके अंतर्गत वैचारिक प्रवाह के माध्यम से उपयोग बताते हैं, जितने अधिक असाधारण उपयोग बतायेंगे उतना ही वैचारिक प्रवाह पाया जाता है। यह विचार नवीन और मौलिक होता है।

 अभिव्यक्ति प्रवाह :– अभिव्यक्ति में मौखिक या लिखित प्रवाह होता है। जैसे तीन शब्दों से कोई वाक्य बनाना या अपूर्ण वाक्य को पूर्ण करना, अभिव्यक्ति प्रवाह के अंतर्गत माना जाता है। व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से विचारों को प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

 साहचर्य प्रवाह :– साहचर्य प्रवाह में शब्द के साहचर्य बताने होते हैं। जो साहचर्य अधिक बताते हैं, उसमें सृजनात्मकता अधिक होती है, जैसे किसी शब्द के पर्यायवाची या विलोम शब्दों को लिखना या बताना। वह उनसे संबंधित कितने शब्दों या वाक्यों का लेखन कार्य और मौखिक कार्य करता है।

 शब्द प्रवाह :– शब्द प्रवाह में नवीन शब्दों का प्रयोग अभिहित होता है। जिसके अंदर व्यक्ति अपने बोलने के नवीन शब्दों का प्रयोग करता है। वह किसी विषय पर कितना धारा प्रवाह अपने विचारों को रखता है। उसके रखे गए विचारों के आधार पर यह देखने का प्रयास किया जाता है कि शब्दों का प्रवाह किस रूप में है। व्यक्ति सार्थक और प्रभावशाली ढंग से अपनी बात को रखता है। इसका तात्पर्य यह है कि उसके अंतर्गत शब्द प्रवाह अच्छा पाया जाता है। जैसे किसी दिए गए शब्दों के अधिक से अधिक प्रत्यय एवं उपसर्ग शब्दों का निर्माण कर लेता है।

2. **विविधता :–** विविधता से अभिप्राय है कि एक समस्या पर किसी व्यक्ति के द्वारा कितने समाधान दिए गए हैं अर्थात् एक प्रश्न के व्यक्ति कितने उत्तर लिख सकता है और वे सभी उत्तर कितने भिन्न हैं। विविधता के अंतर्गत तीन विमाएं हैं :–

 आकृति स्वत : स्फूर्तः विविधता से तात्पर्य है कि किसी वस्तु या आकृति में सुधार करने के कितने उपायों को बताया गया है। सृजनात्मक परीक्षण के किसी पद पर विविधता को प्रायः उस पद पर व्यक्ति के द्वारा दिए गए प्रत्युत्तर के प्रकारों की संख्याओं में व्यक्त किया जाता है। विविधता प्राप्त अंकों को ज्ञात करने के लिए उसके द्वारा विभिन्न पदों पर प्राप्त विविधता अंकों को जोड़ लिया जाता है कि उस व्यक्ति ने कितने प्रश्नों के उत्तर भिन्न–भिन्न रूप में दिए हैं। उसी के आधार पर उसकी सृजनशीलता का आकलन किया जाता है।

आकृति अनुकूलन विविधता से तात्पर्य है कि कोई वस्तु या आकृति में कितने परिवर्तन करने की विविधता पाई गई है। विविधता को लचीलापन भी बोलते हैं। उस कार्य में कितना लचीलापन पाया जाता है। एक व्यक्ति आटे से कितनी प्रकार की वस्तु बना सकता है। अलग–अलग प्रकार की रोटी बनाना, पुरी बनाना आदि आकृति अनुकूलन विविधता है।

 शाब्दिक स्वत : स्फूर्तः विविधता से तात्पर्य है कि वस्तु या शब्दों के प्रयोग में विविधता को कितना परिवर्तित किया है। शाब्दिक स्वतः स्फूर्त : विविधता में वस्तुओं या शब्दों के प्रयोग में विविध प्रकार की विविधता को देखा जाता है। विविधता का आकलन करने के लिए व्यक्ति ने किसी प्रश्न के उत्तर कितने विविध प्रकार के दिए हैं। उसी को जोड़कर के हम उसके विविधता के आधार पर सृजनशीलता को बता सकते हैं।

3. **मौलिकता :-** मौलिकता से तात्पर्य नवीनता से है। कोई व्यक्ति किसी भी वस्तु के बारे में कितने भिन्न–भिन्न विचारों को प्रकट करता है। जैसे किसी वस्तु के नए प्रयोग बताता है, कहानी, कविता या लेख के नए–नए शीर्षकों को बताता है। परिवर्तन के दूरगामी परिणाम बताना, नवीन प्रतीक खोजना आदि मौलिकता के उदाहरण हैं। किसी विषय पर अनेक विकल्प बताना और असाधारण विकल्प बताना मौलिकता के अंतर्गत आता है। जैसे मनुष्य को यदि पक्षी बना दिया जाए तो क्या होगा? इस पर सामान्य विचार मौलिकता के अंतर्गत नहीं आयेंगे, जो विचार अलग नवीनता लिए हुए होंगे और उपयोगी होंगे उन्हीं को ही सृजनशीलता के अंतर्गत माना जाता है।

4. **विस्तारण :-** विस्तारण से तात्पर्य है कि दिए गए विचार या भावों की कितनी विस्तृत व्याख्या करने में वह व्यक्ति सक्षम है। जो जितनी अधिक गहनता के साथ अपने विचारों को रखने में सक्षम होता है। उसके अंतर्गत उतनी ही सृजनशीलता पाई जाती है। विस्तारण के दो भाग हैं :–

- **शाब्दिक विस्तारण :-** शाब्दिक विस्तारण के अंतर्गत संक्षिप्त घटना, कार्य स्थिति को विस्तार से प्रस्तुत करना।
- **आकृति विस्तारण :-** आकृति विस्तारण के अंतर्गत रेखा या अपूर्ण चित्रों को कुछ जोड़कर उसे एक पूर्ण एवं सार्थक चित्र बनाना होता है।

विज्ञान तकनीकी तथा औद्योगिक युग में आज अनेक सृजनात्मक विकास हुए हैं। क्योंकि जैसे–जैसे मनुष्य ने अपना विकास किया है। अनेक प्रकार के नवीन संसाधन उसके द्वारा निर्मित किए गए हैं। वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धि अर्थात एआई, ऑनलाइन लर्निंग, डिजिटल लर्निंग आदि का प्रयोग किया गया है। ये सृजनशीलता के अंतर्गत आते हैं। उस एआई, डिजिटल लर्निंग के प्रयोग के माध्यम से अनेक प्रकार की समस्याएं भी आ रही है। उन समस्याओं का समाधान जिन व्यक्तियों के द्वारा किया जा रहा है। वे व्यक्ति सर्जनशील व्यक्ति की श्रेणी में आते हैं। पहले सृजनशीलता केवल लेखक, कवि, चित्रकार, संगीतकार आदि तक ही सीमित थी। आज यह सृजनशीलता अपना व्यापक रूप ले चुकी है। जीवन में अनेक नए प्रयोग हमारे समक्ष आ रहे हैं और उन प्रयोगों में अनेक प्रकार की कठिनाई अभी प्रस्तुत हो रही है। उन कठिनाईयों का समाधान प्रस्तुत करना ही सृजनशीलता की श्रेणी के अंतर्गत आता है। किसी कठिनाई का समाधान नहीं करते हैं तो हम आगे विकास नहीं कर पाते हैं।

सृजनात्मकता की प्रकृति या उनके विभिन्न सिद्धांत :-

1. **सृजनात्मक का प्राचीन सिद्धांत :-** यह विचारधारा आध्यात्मिकवादी व्यक्तियों की है। उनका कहना है कि सृजनात्मकता व्यक्ति को जन्मजात प्राप्त होती है। वह ईश्वर के द्वारा उसे मिली होती है और वह उसी के अनुसार अपने सृजनात्मक कार्यों का विकास करता है।

2. **उन्माद सापेक्ष सृजनात्मक सिद्धांत :-** इस सिद्धांत के अंतर्गत सृजनशील व्यक्ति कुछ इस प्रकार के कार्य करता है जो लोगों को गलत लगते हैं। जैसे न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण नियम के लिए आकाश में पत्थर फेंकने का कार्य, सेव ऊपर उछालकर फेंकने का कार्य किया। वह नीचे की ओर गिरा। लोग उन्हें गलत समझते थे और मानते थे कि यह व्यक्ति पागल हो गया। ये व्यक्ति उन्माद रूप में कार्य को नहीं करते हैं, लेकिन लोग उन्हें मानसिक रूप से असामान्य व्यक्ति समझ लेते हैं। जबकि इन व्यक्तियों का व्यवहार सृजनात्मक रूप में होता है।

यह कार्य आगे जाकर नियम बन गया जो आज भी उपयोगी है।

3. **जन्मजात सिद्धांत :–** कुछ मानते है कि सृजनात्मकता जन्मजात प्राप्त होती है। उन व्यक्तियों की मानसिक शक्ति और संज्ञानात्मक योग्यता जन्म के साथ ही आती है। जैसे जेम्सवाट, न्यूटन, महात्मा गांधी, आइंस्टीन, रामानुज, विवेकानंद आदि जैसे महान व्यक्ति जन्म के समय से ही सृजनशील थे। वे प्रारंभ से ही वस्तुओं को बारीकी से समझते थे। विचारों की प्रक्रियाओं से युक्त थेद्य नई खोज करने की उनमें आंतरिक शक्ति थी।

4. **वातावरण सृजनात्मकता का सिद्धांत :–** मनुष्य को सृजनात्मकता जन्मजात प्राप्त नहीं होकर वातावरण से प्राप्त होती है। जिन व्यक्तियों को स्वतंत्र वातावरण मिलता है और प्रजातांत्रिक रूप में कार्य करने का अवसर होता है, तो वे अपना सृजनात्मक विकास कर पाते है। जहां पर निराशापूर्ण वातावरण होगा और कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं होगी, वहां सृजनात्मक वातावरण निर्मित नहीं होगा। स्वतंत्र वातावरण में ही व्यक्ति के अंतर्गत सृजनात्मक का विकास होता है।

5. **गोलार्द्ध सिद्धांत :–** मस्तिष्क में प्रायः दो गोलार्द्ध होते हैं। एक दायां गोलार्द्ध दूसरा बायां गोलार्द्ध। दाएं गोलार्द्ध वाले व्यक्ति में सृजनात्मक क्षमता पाई जाती है तथा बाएं गोलार्द्ध वाले व्यक्ति में तार्किक क्षमता अधिक प्रबल होती है। ये दोनों गोलार्द्ध तंत्रिका तंत्र के एक हिस्से से जुड़े होते हैं, फिर भी भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यों में इन गोलार्द्ध को देखा जाता है।

6. **मनोविश्लेषण सिद्धांत :–** सृजनशीलता की अभिव्यक्ति में अचेतन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। फ्रायड सृजनात्मक कृतियों को कामुक ऊर्जा की शक्ति मानता है। सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति तथा व्यक्तित्व को संतुष्टि देने वाला रूपांतरण मानता है।

7. **सृजनात्मकता के स्तर सिद्धांत :–** ए.टेलर ने सृजनात्मकता के स्तर सिद्धांत का प्रतिपादित किया। उन्हें सृजनात्मक को पांच क्रमिक स्तरों में बांटने का प्रयास किया। कोई व्यक्ति इनमें से जिस स्तर तक पहुंचता है। उसकी सृजनशीलता उसी रूप में अभिव्यक्त होती है। सृजनात्मकता के पांच क्रमिक स्तर :–

- **स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्त :–** यह रचनात्मक का सर्वाधिक निम्न स्तर है। इस स्तर पर मौलिकता तथा गुणवत्ता पद पर विशेष रूप से जोड़ दिया जाता है। बिना किसी कारण के व्यक्ति अपने विचार की स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्ति करता है।
- **उत्पादक स्तर :–** उत्पादक स्तर पर व्यक्ति किसी न्यूनतम वस्तु को प्रस्तुत करने में सक्षम हो जाता है।
- **अन्वेषणात्मक स्तर :–** अन्वेषणात्मक स्तर पर व्यक्ति पुरानी वस्तुओं को नए ढंग से प्रयोग करने लग जाता है।
- **नवचारिक स्तर :–** नवचारिक स्तर पर व्यक्ति में उच्च स्तरीय अमूर्त प्रत्यक्षात्मक कौशलों की सहायता से नए विचार अथवा नए सिद्धांतों को विकसित करने की क्षमता आ जाती है।
- **उच्च स्तरीय सृजनात्मक :–** उच्च स्तरीय सृजनात्मक के अंतर्गत निहित समस्त अमूर्त विचारात्मक सिद्धांत और मान्यताओं का उपयोग कर अत्यंत उच्च स्तरीय सृजनात्मक कार्य प्रस्तुत करता है। यह सृजनात्मकता का सर्वोच्च स्तर है।

निष्कर्ष :-

सृजनात्मकता के आकलन में प्रमुख रूप से वैचारिक प्रवाह, अभिव्यक्ति प्रवाह, साहचर्य प्रवाह तथा शब्द प्रवाह चार प्रमुख तत्व प्रयुक्त किये जाते है। इनके माध्यम से सृजनात्मकता का आकलन किया जा सकता है। सृजनात्मकता की प्रकृति या उनके विभिन्न सिद्धांत है, जिनसे सृजनात्मकता के विविध रूपों को जाना जा सकता है, जैसे– सृजनात्मक का प्राचीन सिद्धांत, उन्माद सापेक्ष सृजनात्मक सिद्धांत, जन्मजात सिद्धांत, वातावरण सृजनात्मकता का सिद्धांत, मनोविश्लेषण सिद्धांत, सृजनात्मकता के स्तर सिद्धांत और इसके पांच क्रमिक स्तर है– स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्त, उत्पादक स्तर, अन्वेषणात्मक स्तर, नवचारिक स्तर, उच्च स्तरीय सृजनात्मक है। सृजनात्मकता के आकलन और सिद्धांत निरंतर विकसित हो रहे हैं और इन्हें नए शोध, अनुभव और परिप्रेक्ष्य के आधार पर समझा जा सकता है। ये विभिन्न मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पहलुओं से संबंधित होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भास्कर, सुरेन्द्र (2021). बाल विकास एवं शिक्षा मनोविज्ञान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. पाण्डेय, के.पी. (2019). नवीन शिक्षा मनोविज्ञान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. सेन गुप्त, मंजीत (2013). प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा, पीएचआई लर्निग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली–110092
4. यादव, सियाराम (2008). अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स 11, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
5. मंगल,एस.के.(2008). शिक्षा मनोविज्ञान, प्रिंटर्स हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली– 110001
6. गुप्ता,एस.पी. एवं अलका गुप्ता (2004). उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स 11, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
7. डुडेजा, गीता एवं कुमार, सर्वेश, शिक्षा मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य, ठाकुर पब्लिकेशन, पी.वी.टी. लखनऊ।

Dr Amita Jain, Assistant Professor

Dept. of Education, Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun-341306

amitajainjuly1@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 193–195

नव भारत के निर्माण में महिलाओं की भूमिका

डॉ. जयंतीलाल. बी. बारीस
असिस्टेंट प्रोफेसर, आर. के. देसाई महाविद्यालय, वापी।

प्रास्ताविक भूमिका :–

आज वर्तमान में पुरुष एवं महिलाओं में लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं है। पहले महिलाएं केवल घरेलू क्रियाओं में ही संलग्न थी, लेकिन जैसे परिवर्तन हुआ महिलाएं घर से निकल कर बहार आ गई। आज महिलाओं का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में आज महिला ने उद्यमिता को अपने पेशे के रूप में एक नया क्षेत्र विकसित किया है। मानव विकास निर्माण में महिलाओं का विकास एवं सशक्तिकरण साथ जुड़े हुए है, जो एक स्वतंत्र समूह के रूप में भारत की कुल आबादी का लगभग 482 प्रतिशत हिस्सा बनाती है। महिलाएं एक मूल्यवान मानव संसाधन है और उनका सामाजिक व आर्थिक विकास अर्थव्यवस्था की स्थायी वृद्धि के लिए अनिवार्य है। फिर भी उद्यमिता क्षेत्र में महिलाओं को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

भारत वर्ष एक सम्पन्न परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों से समृद्ध देश है, जहां महिलाओं का समाज में प्रमुख स्थान रहा है। ग्रामीण परिदृश्य में महिलाओं की बड़ी आबादी है। दुर्भाग्यवंश विदेशी शासनकाल में समाज में अनेक कुरीतियां व विकृतियां पैदा हुई, जिससे महिलाओं को उत्पीड़न हुआ।

आजादी के बाद महिलाओं का समाज में सम्मान बढ़ा, लेकिन उनके सशक्तिकरण की गति दशकों तक धीमी रही। गरीबी व निरक्षरता महिलाओं की प्रगति में गंभीर बाधा रही हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और कौशल के माध्यम से महिलाओं को व्यवसाय की ओर प्रोत्साहित कर इन्हे आर्थिक रूप से सुदृढ़ किया जा सकता है। विशेषकर कृषि प्रसंस्करण उद्योगों, बैंकिंग सेवाओं और डिजिटलीकरण की सहायता से महिलाओं के सामाजिक और वित्तीय सशक्तिकरण की शुरुआत की जा सकती है।

भारतीय महिलाएं ऊर्जा से लबरेज, दूरदर्शिता, जीवन्त उत्साह और प्रतिबद्धता के साथ सभी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हैं। भारत के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ टैगोर के शब्दों में, हमारे लिए महिलाएं न केवल घर की रोशनी हैं, बल्कि इस रौशनी की लौ भी हैं। अनादि काल से ही महिलाएं मानवता की प्रेरणा का स्रोत रही हैं। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से लेकर भारत की पहली महिला शिक्षिका सावित्रीबाई फुले तक, महिलाओं ने बड़े पैमाने पर समाज में बदलाव के बड़े उदाहरण स्थापित किए हैं।

2030 तक पृथ्वी को मानवता के लिए स्वर्ग समान जगह बनाने के लिए भारत सतत् विकास लक्ष्यों की ओर तेजी से बढ़ चला है। लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण करना सतत् विकास लक्ष्यों में एक प्रमुखता है। वर्तमान में प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण, समावेशी आर्थिक और सामाजिक विकास जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में

महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए विशेष ध्यान दिया गया है।

महिलाओं में जन्मजात नेतृत्व गुण समाज के लिए संपत्ति हैं। प्रसिद्ध अमेरिकी धार्मिक नेता ब्रिघम यंग ने ठीक ही कहा है कि जब आप एक आदमी को शिक्षित करते हैं, तो आप एक आदमी को शिक्षित करते हैं। जब आप एक महिला को शिक्षित करते हैं तो आप एक पीढ़ी को शिक्षित करते हैं। इसलिए, यह इस वर्ष के अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की थीम ''एक स्थायी कल के लिए आज लैंगिक समानता'' है।

भारतीय इतिहास महिलाओं की उपलब्धि से भरा पड़ा है। आनंदीबाई गोपालराव जोशी (1865—1887) पहली भारतीय महिला चिकित्सक थीं और संयुक्त राज्य अमेरिका में पश्चिमी चिकित्सा में दो साल की डिग्री के साथ स्नातक होने वाली पहली महिला चिकित्सक रही है। सरोजिनी नायडू ने साहित्य जगत में अपनी छाप छोड़ी। हरियाणा की संतोष यादव ने दो बार माउंट एवरेस्ट फतेह किया। बॉक्सर एमसी मैरी कॉम एक जाना—पहचाना नाम है। हाल के वर्षों में, हमने कई महिलाओं को भारत में शीर्ष पदों पर और बड़े संस्थानों का प्रबंधन करते हुए भी देखा है — अरुंधति भट्टाचार्य, एसबीआई की पहली महिला अध्यक्ष, अलका मित्तल, ओएनजीसी की पहली महिला सीएमडी, सोमा मंडल, सेल अध्यक्ष, कुछ ओर नामचीन महिलाएं हैं, जिन्होनें विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।

कोविड—19 के दौरान कोरोना योद्धाओं के रूप में महिलाओं डाक्टरों, नर्सो, आशा वर्करों, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं व समाजिक कार्यकर्ताओं ने अपनी जान की प्रवाह न करते हुए मरीजों को सेवाएं दी है। कोरोना के खिलाफ टीकाकरण अभियान को सफल बनाने में अहम भूमिका निभाई। भारत बायोटेक की संयुक्त एमडी सुचित्रा एला को स्वदेशी कोविड —19 वैक्सीन कोवैक्सिन विकसित करने में उनकी शानदार भूमिका के लिए पद्म भूषण से सम्मानित किया गया है। महिमा दतला, एमडी, बायोलॉजिकल ई, ने 12—18 वर्ष की आयु के लोगों को दी जाने वाली कोविड—19 वैक्सीन विकसित करने के लिए अपनी टीम का नेतृत्व किया। निस्संदेह, महिलाएं और लड़कियां समाज में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलाव की अग्रदूत हैं।

जैसा कि हम खुद को कोविड—19 के कारण हुई तबाही की पृष्ठभूमि में ष्बिल्ड बैकष् प्रक्रिया में शामिल करते है तों मुझे से लगता कि महिला उद्यमियों को प्रोत्साहित करने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। छठी आर्थिक गणना के अनुसार, हमारे पास देश में 8.05 मिलियन महिला उद्यमी हैं। शॉपक्लूज, घर और रसोई, दैनिक उपयोगिता वस्तुओं की मार्केटिंग के लिए 2011 में राधिका ऑनलाई स्टार्ट—अप शुरू किया गया। यह यूनिकॉर्न क्लब में प्रवेश करने वाली पहली भारतीय महिला उद्यमी थीं। राजोशी घोष के हसुरा, स्मिता देवराह के लीड स्कूल, दिव्या गोकुलनाथ के बायजू और राधिका घई के 'शॉपक्लूज' अन्य यूनिकॉर्न हैं, जो महिला स्टार्टअप की क्षमता के बारे में बहुत कुछ बयां करते है।

प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में केंद्र सरकार ने देश में उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और महिला उद्यमियों के सामने आने वाली चुनौतियों को दूर करने के लिए स्टैंड—अप इंडिया, और स्टार्ट—अप सम्बन्धि कई योजनाएं शुरू की हैं। अब एक महिला उद्यमिता मंच पोर्टल का गठन करना एक प्रमुख पहल है, जो नीति आयोग की एक प्रमुख पहल है। यह अपनी तरह का पहला एकीकृत पोर्टल है जो विभिन्न प्रकार की पृष्ठभूमि की महिलाओं को एक पटल देता है और उन्हें कई प्रकार के संसाधनों, की सुविधा प्रदान करता है।

महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्रों मे पावं रखने के लिए महिला स्टार्ट–अप महत्वपूर्ण है। अब महिलाओं ने पूरी उर्जा के साथ उद्यमिता के क्षेत्रों में पांव जमाए हैं। बैन एंड कंपनी और गूगल के अनुसार, महिला उद्यमी 2030 तक लगभग 150–170 मिलियन नौकरियां पैदा करेंगी। एक आधिकारिक अनुमान के अनुसार, 2018–21 तक स्टार्टअप्स द्वारा लगभग 5.9 लाख नौकरियां पैदा की गईं। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के माध्यम से शुरू से ही उद्यमिता के बीज बोने का सार्थक प्रयास किया जा चुका है।

हाल ही में हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय महेंद्रगढ़ में आयोजित दीक्षांत समारोह में 24 छात्रों को स्वर्ण पदक प्रदान किए गए। जिनमें से 16 लड़कियां थीं। यह सिर्फ एक विश्वविद्यालय की बात नहीं है। वे लगभग हर संस्थान में लड़कों से कहीं बेहतर कर रही हैं। उनमें उत्कृष्टता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा और दृढ़ता है। 'आजादी के अमृत महोत्सव' वर्ष के पहले भाग में ही केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 6–12 सितंबर के बीच केवल एक सप्ताह में 2614 स्वयं सहायता समूह के उद्यमियों को सामुदायिक उद्यम निधि का आठ करोड़ साठ लाख रुपये का ऋण प्रदान किया।

स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के माध्यम से महिलाएं न केवल खुद को सशक्त बना रही हैं बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था की मजबुती में को भी योगदान दे रही है। सरकार के निरन्तर लगातार आर्थिक सहयोग से आत्मनिर्भर भारत के संकल्प में उनकी भागीदारी दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। पिछले 6–7 वर्षों में महिला स्वयं सहायता समूहों का अभियान और तेज हुआ है। आज देश भर में 70 लाख स्वयं सहायता समूह हैं। महिलाओं के पराक्रम को समझने की जरूरत है, जो हमें महिमा की अधिक ऊंचाइयों तक पहुंचाएगी। आइए हम उन्हें आगे बढ़ने और फलने–फूलने में मदद करें। महिलाओं के सर्वांगीण सशक्तिकरण के लिए 'अमृत काल' इन्हें समर्पित हो!

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सुधा.जी. एस, उद्यमिता के मूलतत्व, आर.बी.एस. प्रकाशन, जयपुर।
2. शर्मा वीरेंद्र प्रकाश, रिचर्च मैथडोलोजी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. जैन डॉ.पी सी, उद्यमिता के मूलाधार, रमेश बुक डिपो, जयपुर।

Dr. Jayantilal. B. Baris

Mobile No. 8155093121

Email. ID. jayantilalbaris@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 196–200

तुलसी की मानवतावादी एवं सामाजिक दृष्टिकोण

डॉ. आर. के. वर्मा

सहा. प्राध्यापक (हिंदी विभाग), शासकीय दाऊ कल्याण सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलौदा बाजार (छ0ग0)

सारांश :-

तुलसीदास के सन्दर्भ में विवेचित मानवतावादी दृष्टिकोण को यदि जनमानस के सम्मुख रखा जाए तो उसके संचार की विपुल संभावनाएँ हैं। तुलसीदास आज सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। वे बहुसंख्यक व्यक्तियों के हृदयासन हैं। आज तक उनके कवि, भक्त एवं समाज सुधारक रूप को उभारा गया है। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण उनके काव्य में उसी प्रकार छिपा है। जिस प्रकार पुष्प में सौरभ की विद्यमानता रहती है। आज का युग रूपी समीर उसे समाज में प्रसारित करेगा क्योंकि साम्प्रतिक युग का झुकाव मानवतावादी दृष्टिकोण की ओर अधिक हो रहा है। 19वीं शती में मानववाद बुद्धिजीवियों का प्रियपात्र बना हुआ है किन्तु उसके घातक परिणामों से निराश होकर चिन्तकों की आशाभरी दृष्टि अब मानवतावाद पर केन्द्रित हो चुकी है। मानववाद ने धर्मनिरपेक्षता की आढ़ में शीलाचार का अतिक्रमण किया। मानवता के विभिन्न स्त्रोतों का परिशीलन करने से आध्यात्मिकता, धार्मिकता एवं आस्तिकता से अनुप्राणित है। ज्ञान, कर्म और भक्ति के संतुलन और समन्वय से मानवता का उज्ज्वल स्वरुप प्रस्फुटित होता है। तुलसीदास के सन्दर्भ में विवेचित मानवतावाद बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। तुलसीदास ने जिस मानवतावाद का चित्रण किया है उसमें सर्वभूतों के कल्याण की कामना तथा आन्तरिक शुचिता की शिक्षा निहित है। उनके अनुसार वही कीर्ति कविता और संपत्ति उत्तम है जो गंगा की तरह सबका हित करने वाली है।[1]

शोध आलेख :-

गोस्वामी तुलसीदास का कल्पित समाज पूर्णतः मानवतावादी दृष्टि पर अवलम्बित है। तुलसी की प्रतिभा केवल काव्य या दर्शन तक ही अपने को सीमित रख सकने वाली न थी। तुलसी एक वैश्विक व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी तत्कालीन परिस्थितियों की गहराई से अनुभव किया था उनमें सुधार लाने के लिए अपने विचारों का प्रतिपादन किया। वे एक समाज सुधारक थे तथा उन्होंने एक समाजशास्त्री के रूप में आदर्श समाज के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं उन्होंने राजा, प्रजा, परिवार आदि सभी के विषय में जिन आदर्शों कि परिकल्पना की वे आज भी स्पृह्णीय हैं।

जिस प्रकार सुगन्धित पुष्प से स्वतः सुगन्ध फैलती है उसी प्रकार सच्चे मानव से मानवता का स्वतः प्रचार होता है। सच्चा मानव बनने के लिए धर्म के परिपालन की नितान्त आवश्यकता होती है। धर्मपरायणता से ही मानव में मानवता आती है इसके लिए तुलसी ने वैदिक काल कि आश्रम व्यवस्था का अनुमोदन किया। प्रथम आश्रम

में ब्रह्मचारी रह कर विद्या और बल का संचय करना, द्वितीय आश्रम में विवाह और गृहस्थ के सुख–दुःख का अनुभव किया जाता था, तृतीय आश्रम में पुनः ज्ञान बल का संचयन करते हुए लोकमंगल का कार्य किया जाता था अंतिम आश्रम आत्म साक्षात्कार का होता था। आश्रम व्यवस्था साम्प्रतिक युग में भी अनिवार्य है। डॉ. भागीरथ मिश्र के शब्दों में "आश्रम व्यवस्था हमारी जनसंख्या और स्वास्थ्य को ठीक और संतुलित रखने के लिए आवश्यक है साथ ही साथ संपत्ति और वैभव के प्रति त्याग भावना जगाने के लिए भी अपेक्षित है।" गोस्वामी जी सामाजिक भावना एवं व्यक्ति को सामाजिक मर्यादा के पालन के लिए प्रत्येक व्यक्ति का धर्म बताया क्योंकि व्यक्ति और समाज का समन्वय ही श्रेष्ठ रामराज्य के लिए अपेक्षित है। तुलसी ने भक्त एवं संतों के लक्षणों के अध्ययन से आदर्श मानव के लक्षणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

तुलसी के युग में प्राचीन भारतीय पारिवारिक व्यवस्था में विकार आ गया था जिसका वर्णन उन्होंने 'विनय पत्रिका' तथा रामचरित मानस के कलियुग वर्णन में किया है। रामचरित मानस में तो एक आदर्श परिवार का उदाहरण देकर तुलसी ने भारतीय परम्परा का समर्थन किया। भारतीय परिवार के मूल में 'पर' की भावना अधिक बलवान रही है। वहाँ 'स्व' के स्थान 'पर' को अधिक महत्व दिया जाता है। राम के परिवार में इस बात की पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। उन्होंने भाई–भाई, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, पिता–पुत्री, स्वामी–सेवक, सास–बहु आदि के सम्बन्धों का निर्वाह इस परिवार के माध्यम से कराया है। व्यक्ति समाज और परिवार की इकाई है। फलतः व्यक्ति का उन्नयन परिवार और समाज का उन्नयन है। तुलसी व्यक्ति के आत्म स्वातन्त्रय के विरोधी नहीं हैं उसे मर्यादित रखने के आकांक्षी हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार – "वे व्यक्ति के आचरण का इतना ही प्रतिबंध चाहते हैं जिसमें से दूसरों की जीवन मार्ग में बाधा न पड़े और हृदय की उदात्त वृत्तियों के साथ लौकिक सम्बन्धों का सामंजस्य बना रहे।" व्यक्ति के संशोधन से ही समाज का संशोधन संभव है। क्योंकि व्यक्ति के श्रेष्ठ मानवीय मूल्य ही व्यवहार में आकर समाज को पुष्ट करते हैं। बिना परिवार के समाज का अस्तित्व असंभव है। परिवार का अस्तित्व तभी संभव है जब प्रेम, सहयोग, सद्‌यता, आदि मानवीय मूल्यों का विकास हो। उनका आदर्श परिवार राम का है जो मानवता और नैतिकता पर टिका हुआ है।

पति–पत्नी के संबंध को माधुर्य से युक्त करने के लिए गोस्वामी जी ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। श्रद्धा–विश्वास, प्रीति–प्रतीति को मूल में रखकर दाम्पत्य जीवन में सौश्ठव लाने का किया गया प्रयास आकर्षक है। भवानी शंकर को श्रद्धा–विश्वास का प्रतीक मानकर तथा राम–सीता को गिरा अर्थ एवं जल तरंग से उपमित कर कवि ने अनुपम साम्य का स्थापन किया है। ऐसा करके उन्होंने आध्यात्मिक अद्वैत का ही समर्थन नहीं किया है बल्कि इसे लौकिक व्यवहार में स्थापित करना चाहा है। सात्विक भाव और सदाचार मानवता के निर्माता हैं माता–पिता के प्रति पुत्र के और पुत्र के प्रति माता–पिता के कैसे कर्तव्य भाव होने चाहिए इसका सम्यक चित्रण गोस्वामी जी ने किया है। आर्श ग्रंथों में माता–पिता को सर्वोपरि स्थान दिया गया है पुत्र के कर्तव्य का विवेचन राम ने निम्नांकित चौपाई में किया है :–

सुनु जननी सोइ सुतु बड़ भागी। जे पितुमातु वचन अनुरागी।।

राम में इतनी आज्ञाकारिता थी कि वे कैकेयी के द्वारा राजा की वचन बद्धता से अवगत होकर वन की ओर प्रस्थित हो गए। पितृ ममत्व की तरंगों से मानस–सागर तरंगायित है। पुत्र विहीनता की स्थिति में दशरथ के क्षोभ का ज्ञान तो सभी को है। अपत्य स्नेह के अन्तर्गत पुत्री प्रेम का भी कवि के द्वारा चित्रण किया गया है।

पुत्री को लक्ष्मी का प्रतीक समझकर उसके जन्म को वैभव विधायक माना है। श्वसुर को धर्म पिता की संज्ञा दी गयी है। राम ने अपने श्वसुर जनक जी के प्रति पिता दशरथ, गुरु वशिष्ठ तथा विश्वामित्र की भांति ही पूज्य–भाव प्रदर्शित करते हैं। परिवार में बन्धुत्व की भावना का अतिशय महत्व है। यह विश्व बन्धुत्व एवं विश्व–मानवतावाद की रुचिर आधार भित्ति है। त्याग सहानुभूति, अनुराग आदि गुणों से युक्त भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की झांकी दिखलाई गयी है। धर्म नीति के अनुसार ज्येष्ठ भ्राता पिता तुल्य होता है। छोटे भाइयों के प्रति बड़े भाई की स्नेह भावना और आत्मीयता होनी चाहिए कवि के राम अनुजों के प्रति यही भाव रखते हुए व्यवहार करते हैं। तुलसीदास द्वारा चित्रित भातृत्व प्रेम मानवीय मूल्यों पर अवलम्बित है तथा मानवता के मार्ग को प्रशस्त करने वाला है। जो भाई को स्नेह से आप्लावित नहीं करता उसकी गति रावण और बाली की तरह होती है।[2]

सेवक परिवार का ही अंग होता है सेवक का धर्म सबसे कठिन है क्योंकि वह स्वामी के हित में निजी स्वार्थ और सर्वस्व न्यौछावर करता है सेवक–सेव्य में एक–दूसरे के प्रति तुल्य प्रेम होना चाहिए। भरत के आतिथ्य सत्कार में मुनि भारद्वाज ने जो तत्परता दिखाई वह अपने आप में बेजोड़ है, विश्वामित्र के आगमन होता है उस समय अतिथि सत्कार विषयक राजा दशरथ की तत्परता दृष्टव्य है। वन प्रान्तर में रहने वाले ऋषि–मुनियों ने अतिथि–राम का भव्य स्वागत किया अकुलीन कहे जाने वाले निषाद राज अतिथि राम और भरत का तन–मन–धन से स्वागत किया। पलक पावड़े बिछाकर राम की प्रतीक्षा करने वाली शबरी ने राम के आतिथ्य सत्कार में जो उत्कृष्ट अनुराग प्रदर्शित किया उसका कोई सानी नहीं। मर्यादावाद मानवता का सम्बल है। आचरण को मर्यादित करने से ही मानवीयता का निर्माण होता है। जहाँ मर्यादा का अतिक्रमण होता है वहां मानवता मृतप्राय हो जाती है। तुलसी के समाज सुधार का मेरूदण्ड मर्यादा है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति और परिवार के अतिरिक्त समाज को भी उन्होंने लोक मर्यादा का मार्ग दिखाया और इसलिए वे वर्ण व्यवस्था के समर्थक बने। उनके सामाजिक आदर्श के मूल में लोक मंगल की भावना सन्निहित थी। लोक मंगल की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने जिस मर्यादा की प्रतिष्ठा की उसे आदर्श के नाम से अभिहित करना समीचीन होगा। आदर्श राम राज्य की परिकल्पना तुलसी ने की है वह राजा–प्रजा के बीच ऐक्य तथा प्रजा में सद्गुणों का संचार करने वाला है। राम राज्य के प्रजा में पारस्परिक स्नेह है इसलिए :–

'बयरू न कर काहू सन कोई राम प्रताप विषमता खोई।' विषमता हीन के कारण ही प्रजा अशोक, निर्भय एवं निरोग है। राम राज्य का आधार राजा और प्रजा की कर्तव्यशीलता है।

तुलसी ने राजा के प्रति कोई उदारता नहीं दिखाई है – **जासु राजू प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।**

वे उसी राज्य को टिकने वाला मानते हैं जो प्रजा सम्मत हो। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे प्रजा को पूर्ण स्वतंत्रता देना चाहते हो उनकी दृष्टि में आदर्श राज्य संचालन लोकमत और साधुमत के आधार पर ही होना चाहिए। राजा–प्रजा का संबंध उन्होंने मुख तथा शरीर के अन्य अंगों का सा संबंध आदर्श माना है – **मुखिया मुख सो चाहिए खान-पान को एक। पालइ पोसइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।** वे राजा को पिता और प्रजा को संतान मानते थे। वह प्रजा से जो ग्रहण करें कुछ इस ढंग से ग्रहण करें कि प्रजा को मालूम ही न पड़े। जैसे सूर्य अपनी किरणों से जल खींचता है किन्तु उसे कोई नहीं देखता जबकि सूर्य जब जल को वर्षा द्वारा लौटाता है तो सबको दिखाई देता है। इसी प्रकार का व्यवहार राजा का भी होना चाहिए :–

बरखत हरषत लोग एवं करषत लखै न कोय।।

तुलसी प्रजा सुभागते भूप भानु सो होय।।

वे राजा और प्रजा दोनों को सुपथ पर चलता देखना चाहते थे।[3]

गोस्वामी तुलसीदास की नारी विषयक भावना को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग नारी निंदक मानते हैं जबकि कुछ लोग कहते हैं कि तुलसी के मन में नारी के प्रति सम्मान का भाव था। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है कि गोस्वामी जी ने नारी को आदर की पात्री माना है किन्तु जहाँ उन्होंने नारी कि भर्त्सना की है वहाँ उसके प्रमाण भी दिए हैं – 'ढोर गंवार शुद्र पशु नारी' जैसी उक्तियों के आधार पर ही उन्हें नारी निंदक तथा नारी द्रोही कहा जाता है किन्तु सारे रामचरित मानस पर दृष्टि डालें तो इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गोस्वामी जी नारी को आदर की पात्री मानते थे। कौशल्या तथा सुमित्रा आदर्श माताएं हैं जिनके लिए कर्तव्य ही प्रधान है। दोनों के प्रति गोस्वामी जी के मन में पूर्ण आदर भाव है। सीता, पार्वती के प्रति तो उन्होंने पवित्र भावनाएं व्यक्त की हैं। सीता तो राम की शक्ति है। नारी के लिए कवि ने पतिव्रत धर्म ही श्रेष्ठ धर्म माना है। स्वयं सीता को अनूसूया से पतिव्रत धर्म की शिक्षा दिलवाई है। किन्तु तुलसी संत थे उन्होंने नारी के माया रूप एवं कामिनी रूप को ही देखा। नारी को उन्होंने काम तथा मोह का रूप माना तथा जीवन साधन में उसे बाधक भी माना इसी दृष्टिकोण से उन्होंने नारी की निन्दा की है। नारी को जीतना बड़ा मुश्किल है क्योंकि काम एक प्रबल प्रवृत्ति है। एक वैरागी की दृष्टि से की गई यह नारी निन्दा किसी प्रकार भी समाज विरोधी नहीं है। अतः तुलसीदास ने नारी को पूज्य माना किन्तु एक संत की दृष्टि से उन्होंने नारी के माया रूप की निन्दा भी की है।[4]

तुलसी के युग में समाज अस्त–व्यस्त था। तुलसी ने सच्चे लोक नायक की भांति अपने समय के समाज पर दृष्टिपात किया। समाज के विश्रृंखल और और जर्जरित रूप को देखकर उनकी आत्मा कराह उठी। उन्होंने देखा कि जाति–पांति का भेदभाव चरमसीमा पर पहुँच चूका है। उच्च जाति के लोग छोटी जाति के लोगों से अमानवीय व्यवहार करते हैं। समाज के इस विकृत रूप को दूर करने के लिए तथा परस्पर प्रेम की भावना बनाने के लिए तुलसी ने अपने भगवान् राम को निषाद मल्लाह का सखा बनाया। शबरी के जूठे बेर खिलाएँ और तुच्छ वानर–भालू व विभीषण राक्षस से प्रेम पूर्वक भेंट कराई। इसके अलावा छूआछूत के भेदभाव को दूर करने के लिए गुरु वशिष्ठ को निषाद से गले मिलवाया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार गोस्वामी तुलसीदास का "वर्ण विभाग केवल कर्म विभाग नहीं है भाव विभाग भी है।" वर्ण व्यवस्था आधुनिक समय के लिए भी उपादेय इतना है कि जन्मना वर्ण व्यवस्था की अपेक्षा कर्मणा व्यवस्था श्रेयस्कर है किन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने तो सामाजिक मर्यादा स्थापित करने के लिए जन्मना वर्ण व्यवस्था का औचित्य स्वीकार था। इसे गोस्वामी जी का 'सोसल डिसिप्लीन' समझिए। इसके साथ कवि ने आगाह किया है कि जातीयता की संकीर्ण परिधि से मनुष्य को मुक्त रहना चाहिए और किसी की जाति का अपमान नहीं करना चाहिए। कवि ने व्यक्ति और समाज में एकता और मानवता वादी सामंजस्य स्थापित करने के लिए क्या हिदायतें दी हैं उनके मतानुसार समाज को मानवता वादी आधार तभी मिलेगा जब सब एक–दूसरे के प्रति मर्यादित शिष्ट और नीति पूर्ण आचरण करे। उनकी सामाजिक नैतिक चेतना आज के युग में सच्ची पथ प्रदर्शिका है – यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है। समाज में छोटे–बड़े, गुरु–शिष्य, संत–असंत, मित्र–शत्रु आदि विविध सम्बन्धों के व्यक्ति रहते हैं। इनके

पारस्परिक मानवीय संबंध पर कवि ने बड़ा स्पृहणीय प्रकाश डाला है। तुलसी ने **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः'** के शाश्वत आधार पर एक नई व्यवस्था का उद्‌घोष किया है।

निष्कर्ष :–

गोस्वामी जी विश्व मानवतावाद के समर्थक और अनुयायी थे वे सबकी आंतरिक सुन्दरता और कायिक निरोगता के अभिलाषी थे वे जातीय संकीर्णताओं से दूर रहकर केवल प्रेम–भावना को पल्लवित करना चाहते थे। उनका मूल स्वर मानवतावादी था। उन्होंने सभी प्रकार के संकीर्णताओं का विरोध किया और समाज को प्रगतिशील मानवीय मूल्य प्रदान किया। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद के शब्दों में "तुलसी सामंतों और पुरोहितों की अवहेलना करते हुए सामान्य हृदय तक उतरकर जनसमूह को जो सहानुभूति या स्नेह देते हैं, जो लोकमंगल का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, अन्याय, अत्याचार के खिलाफ संघर्ष की जो प्रेरणा देते हैं तथा अपनी कविता और भक्ति को लोक के जिस स्तर तक उतारते हैं। वह तुलसीदास के ही नहीं सभी देशों और सभी कालों के साहित्य का शाश्वत प्रगतिशील मूल है और इस रूप में तुलसी हमारे लिए आज भी उतने ही मूल्यवान हैं जितने आज से कई साल पहले, आज भी लोग तुलसी के इस आगे बड़े हुए मानवतावादी विचारों की अनदेखी करते हैं। मनुष्य के हित–अहित को भूलकर 'अदृश्य' से लौ लगाने की बातें करते हैं वे रुढ़िवादी, विज्ञान विरोधी बनकर सामने आते हैं। तुलसी के विश्व दृष्टिकोण की व्याख्या के क्रम में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने तुलसी की भक्ति पद्धति की टक्कर विज्ञान से की है – "भारतीय शिक्षित समुदाय में विज्ञान के कारण जो मान्यता विकसित हुई उससे आत्मा–परमात्मा में विश्वास नहीं रह गया। तुलसीदास उसमें विश्वास कराने वाले हैं। इसलिए असंगति–विसंगति का प्रश्न खड़ा हो रहा है। भारतवर्ष में आधुनिक के कालवाची अर्थ में बहुत बड़ी संख्या में जनता उनकी भक्ति पद्धति में संगति इसलिए पा रही है कि वह अदृश्य में विश्वास करने वाली है किन्तु शिक्षित समुदाय में दृष्टिमूलक प्रवृत्तियों की प्रेरणा से विसंगति आ गई है।"[5]

सन्दर्भ ग्रंथ :–

1. मिश्र, डॉ. रामप्रसाद : तुलसी का मानवता वादी दृष्टिकोण, नीरज बुक सेंटर दिल्ली प्रथम संस्करण 2005 पृष्ठ 100
2. वही, पृष्ठ – 106
3. सहल, डॉ. कृष्ण बिहारी, भारद्वाज डॉ. होतीलाल; रामचरित मानस : उत्तरकाण्ड, पदम् बुक कम्पनी जयपुर पृष्ठ – 21–22
4. वही, पृष्ठ – 23
5. तिवारी अजय : तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन; आधार प्रकाशन पंचकूला (हरियाणा प्रथम संस्करण 2006 पृष्ठ – 97)

Dr. Rajendra kumar verma assistant professor (Hindi)

Govt. D. K. P. G. College Baloda Bazar (Chhattisgarh) Pin-493332

dr.rajverma3876@g.mail.com dr.rajverma@yahoo.com, M. 9406019833

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 201–203

प्रकृतवाद और हिन्दी साहित्य

महेंद्र सिंह
शोधार्थी–हिन्दी साहित्य, 255, पेरियार हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110067

हिन्दी साहित्य में प्रकृतवाद (Naturalism) वह साहित्यिक प्रवृत्ति है, जो जीवन के वास्तविक और तात्त्विक पहलुओं को बगैर भावुकता, काल्पनिकता और आदर्श के, पूरी कठोरता के साथ चित्रित करने का प्रयास करती है। प्रकृतिवादी साहित्य में लेखकों ने अपने पात्रों के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपनाया, वे अपने पात्रों का मूल्यांकन निष्पक्षता के साथ करते हैं और समाज, पर्यावरण, तथा आनुवंशिकता को उनके जीवन के निर्धारक कारक मानते हैं। सरल शब्दों में प्रकृतवाद का उद्देश्य जीवन की वास्तविकताओं को वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करना है। इस विचारधारा का यह मानना है कि इंसान के व्यवहार और भाग्य को जैविक, पर्यावरणीय और सामाजिक कारक नियंत्रित करते हैं, न की उसके अपने निर्णय। प्रकृतवाद की यह शैली साहित्य में 19वीं और 20वीं के दौरान पश्चिमी देशों में पाई जाती थी।

प्रकृतवाद का डार्विन के विकासवाद (Theory of Evolution) से गहरा संबंध है। डार्विन ने अपने विकास के सिद्धांत में बताया कि सभी जीव प्राकृतिक चयन के माध्यम से विकास करते हैं और इस प्रक्रिया में सबसे उपयुक्त जीव ही जीवित रहते हैं अर्थात् जीवन का विकास पर्यावरण और आनुवंशिक गुणों के अनुसार होता है। इस सिद्धांत ने प्रकृतवादी साहित्यकारों को मानव व्यवहार और जीवन को जैविक, पर्यावरणीय और परिस्थितिगत दृष्टिकोण से समझने के लिए प्रेरित किया। मूलतः डार्विन के विकासवाद ने साहित्य के प्रकृतिवादी आंदोलन को एक ठोस वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार 19 वीं सदी के सामाजिक और दार्शनिक परिवर्तनों में प्रकृतवादी के उदय का कारण छुपा हुआ है जहां एक ओर डार्विन के विकासवाद ने, हर्बर्ट स्पेन्सर के समाजशास्त्र ने तथा दूसरी ओर हो रही अनेक वैज्ञानिक खोजों ने समाज और व्यक्ति के जीवन को देखने का एक नया नजरिया दिया।

साहित्य में प्रकृतवाद का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में देखने को मिलता है जिसका श्रेय फ्रांसीसी लेखक एमिल जोला को दिया जाता है। जोला एक फ्रेंच उपन्यासकार और पत्रकार थे जिन्हे बाद में लिटरेरी स्कूल ऑफ नेचुरलिस्म के प्रैक्टिसनर के तौर पर विशेष ख्याति मिली। प्रकृतवादी लेखक समाज और पात्रों को एक प्रकार की प्रयोगशाला के रूप में देखते हैं, जहाँ उनके जीवन की घटनाओं को पर्यावरणीय और जैविक तत्वों के आलोक में समझा जा सकता है। एमिल जोला ने इसे 'मानव प्रयोग' का दृष्टिकोण कहा, जहाँ लेखक पात्रों के व्यवहार और निर्णयों को उनके जीवन की परिस्थितियों के आधार पर जांचते हैं। अपने इस साहित्यिक सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए जोला ने कई उपन्यास लिखे। इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'ले रोगून मकार्ट' है। यह 20 उपन्यासों

की एक सीरिज के रूप में लिखा गया था। इसमें प्राकृतिक नियमों, सामाजिक–आर्थिक स्थितियों और आनुवंशिक गुणों से प्रभावित एक ही परिवार के विभिन्न सदस्यों की कहानियाँ हैं। ये उपन्यास नाना, जर्मिनाल, थेरेस रैकिन आदि हैं। हर उपन्यास में पात्रों की कमियों, खूबियों और समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से नग्न चित्रण है। जोला का मानना था कि– "लेखकों का धर्म है कि वे जीवन के गंदे और कुरूप से कुरूप चित्र खींचे, मनुष्य की दुर्बलताओं, रोगों और विकृतियों का वर्णन करते समय उन्हे कोई अंश नहीं छोड़ना चाहिए"। अपने उपन्यास नाना में नाना नामक अभिनेत्री पात्र के माध्यम से जोला ने समाज के निचले वर्ग की समस्याओं–नैतिक पतन और व्यक्तित्व विकास को आनुवंशिक और प्राकृतिक कारणों से जोड़ा है। नाना का चरित्र उसके पारिवारिक इतिहास और पीढ़ियों से चले आ रहे दोषों से जुड़ा हुआ है। नाना उच्च समाज की एक स्त्री अपने समाज के लोगों को दैहिक सुंदरता और यौन आकर्षण के माध्यम से शोषित करती है। यह उपन्यास समाज की सतही और शोषणकारी प्रवृत्तियों को उजागर करता है। इसी प्रकार जर्मिनल नामक उपन्यास में क्लास स्ट्रगल दिखाया गया है। मजदूर जो पूरी जिंदगी सबसे ज्यादा मेहनत करते हैं उसके बाद भी सबसे कम सुविधाओं के हकदार बनते हैं। जोला उपन्यास के द्वारा बताते हैं कि कामगारों की दशा उनके स्वयं के निर्णयोनन का परिणाम नहीं है बल्कि यह उनकी आनुवंशिकता और सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है।

पश्चिम के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में प्रकृतवाद 20वीं शताब्दी के आरंभिक दौर में में आया। लेकिन हिन्दी उपन्यास की दुनिया में प्रकृतवादी उपन्यासों को विशेष सम्मान नहीं मिल सका। इन्हे कभी नग्न यथार्थवादी, निम्न यथार्थवादी तो कभी तथ्यवादी उपन्यास कहकर मुख्यधारा से खारिज कर दिया गया। हिन्दी में प्रकृतवादी उपन्यासों का जनक पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र को कहा जाता है। जीवन में जिसे विद्रूप और कुत्सित कहा जाता है वह सहज और वैज्ञानिक भी है, प्रकृतवाद की इसी मूल धारणा को लेकर उग्र ने अपने उपन्यासों में जीवन की तमाम विद्रूपताओं, विषमताओं का नग्न एवं कुरूप चित्रण किया है। प्रकृतवादी उपन्यास चाकलेट को लेकर साहित्य जगत में एक लंबा विवाद चला है। यहाँ तक की उग्र के प्रकृतवादी उपन्यासों को घासलेटी साहित्य कहकर हतोत्साहित किया गया। उग्र के बारे में लिखते हुए डॉ. गोपालराय कहते हैं– "उग्र जी इस युग के सबसे अक्खड़ और सबसे बदनाम उपन्यासकार थे"। दिल्ली का दलाल, चाकलेट, बुधुआ की बेटी आदि प्रमुख प्रकृतवादी उपन्यास उग्र ने लिखे। उग्र के अतिरिक्त जिन उपन्यासकारों ने प्रकृतवादी उपन्यास लिखे, उनमें ऋषभचरण जैन, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि ने नाम आते हैं। शास्त्री जी ने व्याभिचार, अमर अभिलाषा, वैशाली की नगरवधू, मंदिर की नर्तकी आदि इस कोटि के उपन्यास लिखे। वहीं ऋषभ जी के कुछ उपन्यासों में सीधे तौर पर कथन कर रूप में ही प्रकृतवादी सिद्धांत दिखाई देते हैं। इस तरह के उपन्यासों में इनके वेश्यापुत्र, दिल्ली का कलंक, दिल्ली का व्यभिचार, दुराचार के अड्डे, मयखाना आदि को देखा जा सकता है।

प्रकृतवादी उपन्यासकारों ने साहित्य को आदर्शवादी और रोमांटिक धाराओं से हटाकर एक वैज्ञानिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण दिया। इसका उद्देश्य समाज के कटु यथार्थ को सामने लाना और उस पर विचार करना था। प्रकृतवाद अक्सर जीवन की कठोर सच्चाइयों को बिना किसी आलोचना या मूल्यांकन के प्रस्तुत करता है। इसमें अक्सर केवल घटनाओं और पात्रों के संघर्ष को देखा जाता है, लेकिन समाज या परिस्थितियों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण का अभाव हो सकता है। जहाँ यथार्थवाद एक तरफ समाज की समस्याओं, विषमताओं को उजागर करते हुए कहीं न कहीं उसके समाधान की तरफ संकेत देता चलता है। वहीं प्रकृतवाद में किसी

तरह के सुधार का आग्रह सिरे से गायब होता है, जीवन की नकारात्मकता, संघर्ष और त्रासदी को प्रमुखता से दिखाना यहाँ ध्येय हो जाता है। इस कारण यह साहित्य पर केवल घटनाओं के निराशाजनक और भयंकर चित्रण का आरोप लगता है जो आगे किसी समाधान या सुधार की दिशा में नहीं जाता। प्रकृतवाद की व्यापक स्वीकार्यता ना होने के एक प्रमुख कारण के तौर पर इसे समझा जा सकता है।

शोध ग्रंथ :-

1. सिंह बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
2. जैन निर्मला, काव्य–चिंतन की पश्चिमी परंपरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
3. राय गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
4. नागौरी कैलाश, हिन्दी साहित्य का सरल व सुबोध इतिहास, सरसा प्रकाशन, 2023
5. Zola, Émile, "Thérèse Raquin", (1867)
6. Zola, Émile, "Germinal", (1885)
7. Zola, Émile, "Nana", (1880)
8. Naturalism : A critical analysis, William Lane Craig - J. P. Moreland (edt), Routledge Studies in Twentieth-Century Philosophy.
9. Feigl Herbert, Naturalism and Humanism, American Quarterly, Vol. 1, No. 2 (Summe, 1949), pp. 135-148

ईमेल– mahendrajnu21@gmail.com

मोबाइल संख्या– 8299003586

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 204–209

Observing the Characteristics of "Romans durs" in the context of *Les Fiançailles de M. Hire*

Ravi Shankar Kumar
Assistant Professor in French, Arignar Anna Govt. Arts and Science College, Karaikal, Puducherry.

Introduction :

"Romans durs" is a French term that translates to "hard novels." It refers to a series of intense, psychological, and often bleak noir novels written by the Belgian author Georges Simenon. These stand-alone works are known for their tightly plotted narratives and deep exploration of the darker aspects of human nature.

Simenon is perhaps best known for his series featuring the French detective Jules Maigret, but his romans durs are considered some of his most significant contributions to noir fiction. Georges Simenon's "roman durs" are a series of more than hundred psychological novels that focus on the darker and more complex aspects of human nature. Unlike his Inspector Maigret series, the "roman durs" are not detective stories but rather delve into the psychological depths of their characters.

Let us understand the characteristics of the "romans durs" that will provide a solid foundation for discussing notable titles of the collection. Understanding the characteristics of the "romans durs" is essential to fully appreciating Georges Simenon's works within this category. Here are some key characteristics.

Characteristics of "Romans durs" :

Psychological Depth :

- These novels delve deeply into the psychology of the characters, exploring their motivations, fears, and moral dilemmas.
- Simenon often focuses on ordinary individuals who find themselves in extraordinary circumstances, leading to significant psychological tension.

Moral Ambiguity :

- The characters in these novels often operate in a gray area of morality, making choices that blur the lines between right and wrong.

- The protagonist's actions and decisions are often driven by complex personal motives rather than clear-cut moral reasoning.

Existential Themes :

- Simenon frequently explores themes of alienation, identity, and existential angst.
- The characters often grapple with their sense of self and their place in the world, leading to introspection and existential crises.

Atmospheric Settings :

- The settings are richly detailed and contribute to the mood and tone of the story.
- Whether it's the oppressive heat of the tropics or the suffocating environment of a small European town, the setting plays a crucial role in shaping the narrative.

Focus on the Ordinary :

- Simenon often chooses protagonists who are ordinary people, such as clerks, shopkeepers, or minor officials, emphasizing their humanity and vulnerability.
- The transformation of these characters under pressure is a recurring theme in his works.

Dark and Realistic Tone :

- The tone of these novels is generally dark and realistic, reflecting the harsh realities of life.
- Simenon doesn't shy away from depicting the darker aspects of human nature and society.

If we try to know the summary of the books of Georges Simenon, this is going to provide us an overall idea about the "romans durs". This will indeed give us a clearer picture of this genre. Here are brief summaries of a few significant titles.

Notable romans durs of Georges Simenon :

1. ***Les Fiançailles de M. Hire* (1933) -** A story about a lonely man, Monsieur Hire, who becomes a murder suspect and ultimately meets a tragic fate. *Les Fiançailles de M. Hire* (translated as "The Engagement" or "Mr. Hire's Engagement") is a gripping mystery novel by Georges Simenon, first published in 1933. It's one of Simenon's early "hard novels" (roman durs), which are more psychological and less focused on the detective work that characterizes his Inspector Maigret series.
2. ***La Marie du port* (1938) -** *La Marie du port* (translated as "The Marie from the Harbour") is a novel by Georges Simenon, first published in 1938. It's one of Simenon's "roman durs" and is a compelling story that captures the essence of life in a small Normandy town. Follows the lives of people in a small Normandy town and their struggles with love and betrayal. The story revolves around Marie, a young woman living in a small harbour town, and her complex relationship with a wealthy and worldly businessman named Henri Chatelard. As Henri becomes more involved in Marie's life, tensions and conflicts arise between them and the other townspeople. The novel explores themes of love,

ambition, and the social dynamics of a close-knit community.

Simenon's keen observations and deep psychological insights make this novel a fascinating read. It's also been adapted into a film directed by Marcel Carné in 1950.

3. ***La Neige était sale* (1948) -** The tale of Frank Friedmaier, a young man growing up in a crime-ridden city during wartime. *La Neige était sale* (translated as "The Snow Was Dirty") is a novel by Georges Simenon, first published in 1948. It's one of his "roman durs" and is considered one of his darkest and most compelling works.

The novel follows the life of Frank Friedmaier, a young man living in a crime-ridden, war-torn city. Frank is deeply entrenched in a life of crime, working for a local gangster and engaging in morally corrupt activities. The story explores Frank's internal struggle as he grapples with his sense of guilt and the consequences of his actions. The novel delves into themes of morality, corruption, and the impact of war on society.

Simenon's portrayal of Frank's complex character and the bleak atmosphere of the city makes this novel a powerful and thought-provoking read. The title, "The Snow Was Dirty," symbolizes the pervasive corruption and moral decay in the world Frank inhabits.

4. ***Le Fond de la Bouteille* (1949) –** *Le Fond de la Bouteille* (translated as "The Bottom of the Bottle") is a novel by Georges Simenon, first published in 1949. It's one of his "roman durs," focusing on psychological depth and human complexity. It explores the strained relationship between two brothers, one a prosperous lawyer and the other an escaped convict.

The story centres on the strained relationship between two brothers, Donald and Patrick O'Brien. Donald is a prosperous lawyer living in a peaceful town, while Patrick is an escaped convict on the run. When Patrick arrives at Donald's home seeking help, Donald is torn between his loyalty to his brother and his desire to protect his own comfortable life. The novel delves into themes of family loyalty, guilt, and the moral dilemmas that arise when one's past catches up with them.

Simenon's exploration of the characters' internal struggles and the tension between them makes this novel a gripping read. The setting of a small, insular community adds to the atmosphere of suspense and moral ambiguity.

5. ***La Chambre bleue* (1964) -** A suspenseful story about a man and his lover who are involved in a murder plot. *La Chambre bleue* (translated as "The Blue Room") is a novel by Georges Simenon, first published in 1964. It's one of his "roman durs" exploring the dark and complex nature of human relationships and emotions.

The story revolves around Tony Falcone, a married man who has an affair with Andrée Despierre, also married. Their passionate encounters take place in a blue room at a local hotel. As their illicit

relationship unfolds, they become entangled in a web of deception, betrayal, and ultimately, murder. The novel delves into themes of passion, guilt, and the consequences of forbidden love.

Simenon's keen psychological insight and ability to create an atmosphere of suspense make this novel a compelling and thought-provoking read. The "blue room" itself becomes a symbol of the characters' entrapment and the secrets they keep.

These novels are known for their keen psychological insights and often bleak portrayals of human behaviour.

These summaries provide a glimpse into the "romans durs" of Georges Simenon, showcasing his talent for psychological depth, moral ambiguity, and atmospheric storytelling. Each novel presents a unique exploration of human nature and societal issues, making them compelling reads for anyone interested in these themes.

Psychological depth, moral ambiguity, existential themes, atmospheric settings, focus on he ordinary, dark and realistic tone are said to be the characteristics of the romans durs. We are going to explore the above-mentioned characteristics in one of the novels (*Les Fiançailles de M. Hire*) of Goerges Simenon.

Les Fiançailles de M. Hire (translated as "Monsieur Hire's Engagement") is an excellent example of a "roman dur" by Georges Simenon. We are going to observe how the characteristics of "romans durs" manifest in this novel. We will try to discuss the characteristics of romans durs one by one, found in the novel.

Psychological Depth :

Monsieur Hire : The protagonist, Monsieur Hire, is a reclusive, misanthropic man who lives alone in a Parisian apartment. Simenon delves deeply into Hire's psychology, revealing his loneliness, alienation, and obsession with a woman named Alice.

Inner Conflict : The novel explores Hire's inner conflicts and his complex emotions, particularly his longing for connection and his simultaneous fear of intimacy.

Moral Ambiguity :

Character Actions : Monsieur Hire's actions and motivations are morally ambiguous. While he is a voyeur who spies on his neighbours, particularly Alice, he is also a tragic figure who evokes sympathy.

The Crime : The novel centres around a murder investigation, and Hire becomes a suspect. His guilt or innocence remains unclear, adding to the moral complexity of the story.

Existential Themes :

Isolation : Hire's profound sense of isolation and his struggle to find meaning in his life are

central themes. His engagement with Alice, whether real or imagined, represents a desperate attempt to break free from his solitude.

Search for Identity : The novel also touches on the theme of identity, as Hire's true nature and past are gradually revealed.

Atmospheric Settings :

Parisian Atmosphere : The setting of a gritty, claustrophobic Parisian neighbourhood adds to the novel's atmosphere. Simenon's detailed descriptions of the environment contribute to the sense of tension and unease.

Dark Mood : The oppressive atmosphere of Hire's apartment and the dark streets of Paris enhance the novel's overall tone.

Focus on the Ordinary :

Ordinary Protagonist : Monsieur Hire is an ordinary man, a loner who works as a portrait photographer. Simenon focuses on his mundane life, highlighting how extraordinary circumstances can disrupt it.

Human Vulnerability : The novel emphasizes Hire's vulnerability and humanity, portraying him as a flawed but relatable character.

Dark and Realistic Tone :

Realism : The novel is grounded in realism, depicting the harsh realities of life in a Parisian neighbourhood. Simenon's steady portrayal of human nature and societal dynamics adds to the novel's impact.

Tragic Elements : The story has a tragic tone, as Hire's fate unfolds in a way that is both inevitable and deeply moving.

Les Fiançailles de M. Hire encapsulates the essence of "romans durs" through its complex characters, moral ambiguity, and dark, atmospheric storytelling. It stands as a testament to Simenon's ability to explore the human psyche with depth and nuance.

Conclusion :

Simenon's romans durs are admired for their psychological depth and stark portrayal of human flaws. If anyone enjoys noir fiction with a psychological twist, these novels might be right up alley for him or her. Thus, we can say that the romans durs have been praised for their literary quality and psychological insight, contributing to Simenon's reputation as a master storyteller. These novels have had a significant influence on the genre of noir fiction, with their focus on flawed characters and dark, suspenseful narratives. The romans durs offer a profound examination of human nature, exploring themes of guilt, redemption, and existential worry. Simenon's romans durs have been translated into

multiple languages and continue to be read and studied worldwide, highlighting their enduring relevance. These novels offer a unique and thought-provoking reading experience, showcasing Simenon's talent for creating compelling, psychologically rich narratives.

Bibliography :

1. BECKER, Lucille, *Georges Simenon – Maigrets and the Romans Durs* (Life & Times), Haus Publishing, 2007
2. MARNHAM, Patrick, *The Man Who Wasn't Maigret: A Portrait of Georges Simenon*, Mariner Books, 1994
3. SIMENON, George, *Maigret, Lognon et les gangsters*, Presse de la cité, Paris, 1968
4. SIMENON, George, *Maigret et l'homme tout seul*, Presse de la cité, Paris, 1971
5. SIMENON, George, *Les Fiançailles de M. Hire*, Brodard et Taupin, Paris, 1972

Sitography :

https://crimereads.com/simenon-romans-durs-noir/?form=MG0AV3
https://en.wikipedia.org/wiki/Les_Fian%C3%A7ailles_de_M._Hire
https://fr.wikipedia.org/wiki/La_Marie_du_port_(roman)

Mob. - 9582107645
Email- ravishanjnu@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 210–215

क्वीर सिद्धांत की देसी अवधारणा और चुनौतियाँ

जयकृष्णन एम्
शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल, 683574

शोध सारांश :–

क्वीर सिद्धांत अंतर–विषयक अवधारणाओं का एक ऐसा संग्रह है, जो कला, साहित्य, मीडिया, राजनीति, और समाज विज्ञान में प्रचलित पहचान और द्विआधारी यौन श्रेणियों की मानक धारणा को चुनौती देता है। यह पाश्चात्य सिद्धांत, भू–सांस्कृतिक सीमाओं को पार करते हुए, विश्व के विविध अकादमिक क्षेत्रों में व्यापक रूप से अपनाया गया है। भारत में, कामना के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, इसकी सांस्कृतिक बारीकियों, सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ, और क्वीर समुदाय की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार, क्वीर सिद्धांत को एक अलग और प्रासंगिक स्वरूप में परिभाषित करना अनिवार्य हो जाता है। क्वीर सिद्धांत का यह 'देसी संस्करण' भारत में लिंग पदानुक्रम और लैंगिकता की जटिल एवं विरोधाभासी प्रकृति को समझने के लिए एक प्रभावी उपकरण है। साथ ही, यह इतिहासकारों को उत्तर–विक्टोरियन भारत में सत्ता और लैंगिकता के अंतर्संबंधों का अधिक सटीक और व्यापक विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करता है। यह शोध आलेख "देसी क्वीर सिद्धांत" की अवधारणा का विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है। इसके माध्यम से, कला, साहित्य, और मीडिया में क्वीर प्रतिनिधित्व के अतीत, वर्तमान, और भविष्य से संबंधित संभावनाओं और चुनौतियों का पुनरावलोकन किया गया है।

बीज शब्द :– क्वीर, क्वीर सिद्धांत, क्वीर्नेस लैंगिकता, लिंग, लैंगिकता, लिंग पदवी क्वीर विमर्श, नॉन–बाइनरी, भारतीय क्वीर।

मूल आलेख :–

अंग्रेजी शब्दकोश में ऐसे बहुत कम शब्द हैं, जिनका अर्थ एक साथ व्यापक और विशिष्ट दोनों हो सकता है। 'क्वीर' ऐसा ही एक शब्द है। वर्तमान समय में 'क्वीर' का अर्थ अत्यंत व्यापक हो गया है, क्योंकि यह पुरुष/स्त्री और समलैंगिकता के पारंपरिक स्पेक्ट्रम से परे, लिंग और लैंगिकता की विस्तृत शृंखला को समाहित करता है। चाहे वह समलैंगिक, लेस्बियन, पैनसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, या क्रॉस–ड्रेसर हों, इन सभी क्वीर व्यक्तियों में एक समानता यह है कि वे लिंग और यौनिकता से संबंधित कठोर सामाजिक मानदंडों के अधीन होने से इनकार करते हैं। सामान्य रूप से, 'क्वीर' न केवल एक पहचान है, बल्कि एलजीबीटीक्यूआईए़ समुदाय के लिए एक समावेशी स्थान का भी प्रतिनिधित्व करता है। यह समुदाय अक्सर सामाजिक कलंक और भेदभाव का सामना करता है, और 'क्वीर' शब्द इस संघर्ष के प्रति उनकी एकजुटता का प्रतीक बन गया है। 'क्वीर' शब्द का एक

विशिष्ट और ऐतिहासिक महत्व भी है। यह उन गैर–द्विआयामी व्यक्तियों के विखंडनवादी और प्रतिरोधी दृष्टिकोण का प्रतीक है, जिन्होंने 19वीं शताब्दी के इस अपमानजनक शब्द को अपने निरंतर संघर्ष और साहस के माध्यम से 'प्राइड' के प्रतीक में परिवर्तित कर दिया है।

क्वीर सिद्धांत शैक्षणिक अध्ययन का एक अंतरविषयक क्षेत्र है, जो कला, साहित्य, मीडिया, दर्शन और सामाजिक विज्ञान के भीतर लिंग और लैंगिकता की द्विआधारी अवधारणा को चुनौती देता है। 1980 के दशक में पश्चिम में उत्पन्न क्वीर सिद्धांत यह तर्क प्रस्तुत करता है कि सत्ताधारी और विद्वान समूहों द्वारा निरंतर बहस और विमर्श के माध्यम से पुरुष/स्त्री, समलैंगिक/विषमलैंगिक, और पुरुषत्व/स्त्रीत्व जैसी द्विभाजनात्मक धारणाओं को थोपा जाता है। इसके परिणामस्वरूप, अकादमिक जगत में सतही विश्लेषण होता है, जिसमें इन सीमाओं के बीच आने वाले व्यक्तियों की उपेक्षा की जाती है और उन्हें हाशियाकृत कर दिया जाता है। इसके साथ ही उन्हें असामान्य और अप्राकृतिक भी करार दिया जाता है।

क्वीर सिद्धांत के लिए एक व्यवस्थित परिभाषा प्रदान करना कठिन है, क्योंकि यह अत्यधिक लचीला है और सामाजिक–ऐतिहासिक संदर्भ के अनुरूप निरंतर विकसित होता जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि क्वीर सिद्धांत विचारों और अवधारणाओं का एक अव्यवस्थित संग्रह है, जिसका उपयोग लिंग और लैंगिकता की जटिल प्रकृति, विविध पहचानों और झुकावों को बेहतर ढंग से समझने तथा इन द्वैध धारणाओं को चुनौती देने के लिए किया जाता है। क्वीर सिद्धांत के उद्देश्यों में गैर–बाइनरी समुदायों का समर्थन करना, होमोफोबिया और ट्रांसफोबिया का विरोध करना, लिंग और लैंगिकता के स्वीकृत मॉडल का पुनर्निर्माण करना, विषमलैंगिकता–केंद्रित संस्कृति का खंडन करना, और लैंगिक समानता के लिए संघर्ष करना आदि शामिल हैं।

क्वीर सिद्धांत- भारतीय दृष्टिकोण :-

पश्चिमी देशों की तुलना में, भारत में क्वीर सिद्धांत के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम योगदान हुआ है। हालाँकि, इस क्षेत्र में भारतीय लेखकों द्वारा किए गए कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं। रूथ वनिता और सलीम किदवई द्वारा प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक भारतीय साहित्य और संस्कृति के गैर–विषमलैंगिक इतिहास पर किया गया बृहद अध्ययन 'सेम–सेक्स लव इन इंडिया', गीति थडानी का प्राचीन भारतीय इतिहास में लेस्बियन कामना पर आधारित रचना 'सखियानी', कौस्तव बख्शी और रोहित के दासगुप्ता की 'क्वीर स्टडीज : टेक्स्ट्स, कॉन्टेक्स्ट्स, प्रैक्सिस', शकुंतला देवी के साक्षात्कारों का संग्रह 'दी वर्ल्ड ऑफ होमोसेक्सुअल्स', होशंग मर्चेंट की 'याराना', माधवी मेनन की 'इनफिनिट वैरायटी' आदि भारत के गैर–विषमलैंगिक और गैर–द्वैध लिंग संकल्प के अतीत, वर्तमान और भविष्य पर गहन और सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। ये रचनाएँ एक ऐसे देश की अवधारणा प्रस्तुत करती हैं, जहाँ लिंग और कामुकता के बारे में सदियों से एक अनोखा सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण रहा है। हालाँकि, प्राचीन साहित्य भारतीय संदर्भ में क्वीर सिद्धांत के पश्चिमी मॉडल को लागू करने की समस्याओं की गहराई से चर्चा नहीं करता और यह प्रश्न नहीं उठाता कि भारतीय क्वीर सिद्धांत के मॉडल इन समस्याओं को कैसे हल कर सकती है।

सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भारत विविधता और विरोधाभासों का देश है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ अत्यधिक अनुदारवादी 'मनुस्मृति' और उदारवादी 'कामसूत्र' सह–अस्तित्व में रहे हैं। निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो, बुल्ले शाह, मीर तकी मीर जैसे सूफी कवियों और संतों ने समलैंगिकता को पाप मानने वाले धर्म

में विश्वास करते हुए लिंग और लैंगिकता की सीमाओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से पार कर लिया है। उसी उत्तर–औपनिवेशिक भारत में, जमाली कमाली का मकबरा, जिसे प्यार से 'समलैंगिक ताज महल' कहा जाता है, पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। विविधता और विरोधाभासों की इन अभिव्यक्तियों के माध्यम से, भारत में सदियों से एक अदृश्य समलैंगिक समर्थक 'स्पेस' विद्यमान रहा है। यह सामाजिक–सांस्कृतिक स्थान भारत को दुनिया के अन्य देशों से अलग करता है। लेकिन इतिहासकारों और लेखकों के लिए यह अदृश्यता पहले से निर्धारित, स्वीकृत सामाजिक मानदंडों से परे निष्पक्ष वास्तविकताओं का पता लगाना कठिन बनाती है। भारत की इस स्थिति के कारण पश्चिम में उत्पन्न कई सिद्धांतों को यहाँ पैर जमाने में कठिनाई हो रही है। क्वीर सिद्धांत भी इससे अछूता नहीं है। जबकि क्वीर सिद्धांत के सामान्य उद्देश्य सार्वभौमिक हैं, भारतीय क्वीर स्पेस के संदर्भ में 'इंडियन क्वीर्नेस' के सूक्ष्म पहलुओं को मुख्यधारा में लाने की आवश्यकता है। भारत अनेक पहचान श्रेणियों और कामनाओं का मेजबान है, इतना कि उन सभी को स्थापित श्रेणियों के तहत नामित या लेबल नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरुप, भारत में क्वीर अध्ययन और प्रतिनिधित्व की आवश्यकताओं के अनुरूप, क्वीर सिद्धांत में भारतीय कामनाओं की अनंत प्रकृति और इसकी बारीकियों को शामिल करना एक कठिन प्रक्रिया है।

भारतीय संदर्भ में विषमलैंगिक–मानकीयता पर चर्चा करते समय, यह प्रश्न सामने आता है कि क्या उपनिवेशवाद के युग के दौरान मानदंड बने विषमलैंगिक संरचना उस समय के सामाजिक–सांस्कृतिक माहौल का परिणाम थे, या इसके पीछे एक राजनीतिक–आर्थिक पृष्ठभूमि भी थी? नव–पूंजीवाद का एक मुख्य उद्देश्य समाज में श्रम विभाजन की यथास्थिति बनाए रखने के लिए एकल परिवारों को बढ़ावा देना है। एक नव–पूंजीवादी समाज न केवल वस्तुओं का पुनरुत्पादन करता है, बल्कि यह पितृसत्तात्मक, विधर्मी एकल परिवारों का भी पुनरुत्पादन करता है। भारत में क्वीर समुदाय को हाशिए पर धकेलने में जाति, वर्ग, रंग, नस्ल आदि की भूमिका एक और जटिल प्रश्न है, जो अभी तक अपेक्षाकृत अनुत्तरित है। चूँकि भारत आज भी जाति, वर्ग, रंग और नस्ल द्वारा भारी रूप से शासित देश है, इसलिए भारतीय साहित्य, कला और मीडिया में क्वीर अध्ययन करते समय इन मुद्दों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होगा।

पहले क्वीर पाठन का संबंध पाठ के 'छिपे हुए अर्थों को खोजने' से था। क्वीर सिद्धांतकारों का मानना था कि किसी विशेष पाठ का सही अर्थ हमेशा प्रतीकों, उपाख्यानों और रूपकों की परतों के नीचे छिपा होता है, और केवल 'सतही अध्ययन' (Surface Reading) किसी पाठ को पूरी तरह से समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। आलोचना की इस पद्धति को 'सिम्प्टमैटिक अध्ययन' (Symptomatic Reading) कहा जाता है, और यह तर्क किया जाता है कि किसी पाठ को आलोचना के योग्य होने के लिए उसमें में गहराई होनी चाहिए। अग्रणी क्वीर सिद्धांतकार ईव सेद्जविक ने क्वीर अध्ययन में उपयोग की जाने वाली विभिन्न 'पैरानॉयड रीडिंग' (Paranoid Reading) प्रथाओं के विरोध में 'रिपेरेटिव रीडिंग' (Reparative Reading) की घोषणा की। पैरानॉयड रीडिंग किसी कार्य को रक्षात्मक दृष्टिकोण से देखती है, जबकि रिपेरेटिव रीडिंग पाठ को समझने, समृद्ध करने और विकसित करने का प्रयास करती है, यह समझने के लिए कि कोई पाठ क्या व्यक्त करने का 'प्रयास' कर रहा है, न कि वह जो पाठक उससे व्यक्त कराना चाहता है।

सामाजिक प्रतिरोध के डर से विषय वस्तु को छिपाने के बजाय, आज वैश्विक स्तर पर कई क्वीर लेखक खुले तौर पर 'क्वीरनेस' चर्चा करते हैं। हालांकि, भारतीय क्वीर लेखन में यह प्रगति सभी भाषाओं में समान रूप

से नहीं हुई है। इसके परिणामस्वरूप, दोनों प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता उत्पन्न होती है। आमतौर पर, भारतीय क्वीर पाठन उत्पीड़न के संघर्ष तक ही सीमित रहता है, लेकिन जहाँ संघर्ष है, वहाँ उत्तरजीविता भी है। क्वीर साहित्य अस्तित्व, संघर्ष और जीवन के एक संयोजन के रूप में सामने आता है। रिपेरेटिव अध्ययन पाठकों को भारतीय क्वीर समुदाय की बहुआयामी संस्कृति और बारीकियों को समझने में मदद करती है, जबकि सिम्प्टमैटिक अध्ययन यह समझने में सहायक हो सकती है कि क्वीरफोबिया से लड़ने के लिए भाषा, संकेतों और प्रतीकों का उपयोग कैसे किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं में उल्लेखनीय क्वीर फिक्शन, जैसे मलयालम लेखिका इंदु मेनन की कहानी 'ओरु लेस्बियन पशु', रूथ वनिता का उपन्यास 'मेमोरी ऑफ लाइट', पंकज बिष्ट का उपन्यास 'पंख वाला नाव', और लिविंग स्माइल विद्या, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, विजयराजा मल्लिका जैसे क्वीर कार्यकर्ताओं की आत्मकथाएँ, क्वीरफोबिक संस्कृति का विरोध करने और पितृसत्ता के खिलाफ विद्रोह करने के संदर्भ में गहरे वक्तव्य प्रदान करती हैं। साहित्य के अलावा, बदनाम बस्ती (1971), फायर (1996), माई ब्रदर निखिल (2005), अलीगढ़ (2015), नगरकीर्तन (2017), मूथॉन (2019), गीली पुच्ची (2021), और विचित्रम (2022) जैसी भारतीय फिल्में, सामाजिक–सांस्कृतिक तत्वों और लिंग/कामुकता के बीच साझा संबंधों पर प्रकाश डालती हैं। ये कला और साहित्य, सामाजिक मानदंडों और उत्पीड़न के उपकरणों का विरोध करने के लिए भाषा की शक्ति का उपयुक्त उपयोग करती हैं।

देशी क्वीर सिद्धांत की चुनौतियाँ :-

आधुनिक क्वीर सिद्धांत एक प्रयोगधर्मी उपकरण के रूप में कार्य करता है, जिसके माध्यम से सिद्धांतकार भारतीय राजनीति में लिंग और लैंगिकता की भूमिका, तथा जीवन पर प्रभाव डालने वाले फूकोलदियन शक्ति समुदाय का विश्लेषण कर सकते हैं। भारत में क्वीर सिद्धांत का अनुप्रयोग अभी भी सीमित है, क्योंकि यह मुख्य रूप से पश्चिमी मॉडल की नकल करता है। समलैंगिक राजनीति में लिंग और लैंगिकता पर विचार करते समय, भारतीय शिक्षाविद् अभी भी फूको और फ्रायड के सिद्धांतों से अभिप्रेरित हैं। ऐसे समय में जब शास्त्रीय साहित्यिक सिद्धांतों का पुनर्निर्माण और पुर्नव्याख्या की जा रही है, भारतीय विद्वान अभी भी इन "क्लासिक" विचारों से जकड़े हुए हैं, और बाइनरी की दुविधा से आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। भारत में एक पूरी तरह से विकसित देसी क्वीर सिद्धांत मॉडल की अनुपस्थिति के कारण, भारतीय क्वीर साहित्य में वर्ग, जाति और रंग के विश्लेषण की कमी स्पष्ट रूप से देखी जाती है।

भारतीय साहित्य में दलित अध्ययन के अंतर्गत विषमलैंगिक–पुरुषसत्ता (Heteropatriarchy) शासन के मुद्दे पर गहराई से विचार करने वाला साहित्य बहुत कम है। 'तीसरी ताली' की तुलना में अधिकांश क्वीर रचनाएँ अवसादग्रस्त, एलीट समलैंगिक भारतीय पुरुष के ट्रोप का अनुसरण करती हैं। जाति आलोचना में क्वीरनेस को सम्मिलित करना लेखकों को दलित अल्पसंख्यक और क्वीर होने के दो अलग–अलग राजनीतिक श्रेणियों के बीच की गहरी खाई को पाटने में सक्षम बनाएगा। जातिवाद विमर्श में क्वीर समीक्षा को सम्मिलित करने से समाज–सांस्कृतिक प्रक्रियाओं जैसे जाति, रंग, लैंगिकता, पूंजीवाद और वर्ग आदि का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के लिए आवश्यक उपकरण प्राप्त होंगे, जिससे भारतीय संदर्भ में क्वीरनेस का विश्लेषण किया जा सकेगा। भारत में क्वीर एक्टिविज्म आमतौर पर अंग्रेजी–भाषी महानगरीय आभिजात वर्ग द्वारा नेतृत्वित होता है, जहाँ जाति अल्पसंख्यकों को आंदोलन में और अधिक हाशिए पर धकेल दिया जाता है।

वर्तमान में, भारत के साहित्य और मीडिया में क्वीर सिद्धांत का उपयोग केवल समुदाय की समग्र समस्याओं को संबोधित करने तक सीमित है, और वे लोग जिन्हें पीछे छोड़ दिया जाता है, उनका प्रतिनिधित्व विफल रहता है।

क्वीर लोगों के अपराधीकरण के विपरीत, विभिन्न जीवनशैलियों से आने वाले क्वीर लोगों के जीवित अनुभवों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है, जिसका प्रचलन वर्तमान में मलयालम साहित्य में हो रहा है। इन युवा लेखकों के लेखन से एक अलग क्वीर सिद्धांत का निर्माण होता है, जिसमें वे स्वीकार करते हैं कि श्रम, वर्ग, जाति, धर्म और शरीर भारत में विभिन्न प्रकार से अलग क्वीर पहचान के घटक हैं, जिन्हें अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत में क्वीयर सिद्धांतकारों को एक से अधिक शोषण साथानों पर अध्ययन की अनुपस्थिति को संबोधित करने की आवश्यकता है, जिसके कारण क्वीयर आंदोलन अधूरा पड़ा हुआ है। मुख्यधारा की साहित्य से बाहर, एकता की अभिव्यक्ति समाज के वंचित और पीड़ित समुदायों में बिखरे हुए समूहों के बीच असंयमित शैली में कार्य कर रही है, जिनमें अधिकांश लेखक स्वयं क्वीर हैं।

दक्षिणपंथी राजनीतिक दलों की समलैंगिक विरोधी/ट्रांसफोबिक रणनीतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। क्वीर मुस्लिम और अन्य अल्पसंख्यक समूहों के व्यक्तियों को उच्च वर्ग के क्वीर व्यक्तियों से भेदभावपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ता है। एक विशिष्ट जातीय समूह के बहुमत द्वारा अन्य समूहों को बाहर करके राष्ट्र निर्माण की अवधारणा क्वीरफोबिक है। सेक्सुअल/क्वीयर/ट्रांस मुक्ति ब्राह्मणवादी 'हेटेरोपैट्रियार्कल' जाति संरचनाओं की आलोचना किए बिना असंभव है, जो फूकोलदियन शक्ति के केंद्र में स्थित हैं। नई युग की मलयालम कविता और स्वतंत्र फिल्में यह दर्शाती हैं कि जाति, लिंग और यौनिकता की संरचनाएँ न केवल एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं, बल्कि जाति स्वयं हेगेमोनिक जाति संरचनाओं को दोहराने और उच्च वर्ग के विशेषाधिकारों को सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष :–

क्वीर सिद्धांत और क्वीर एक्टिविज्म को कभी भी किसी एक मुद्दे के भीतर सीमित नहीं किया जा सकता। भारत में मुख्यधारा के उच्च जाति के एलीट क्वीर आंदोलन सामाजिक समानता और न्याय से जुड़े क्षेत्रों से उभरते हैं और केवल समान अधिकारों और सामाजिक स्वीकृति पर केंद्रित रहते हैं। ये उन संरचनाओं के पुनरुत्पादन के खतरे में होते हैं, जिनका खंडन करना ही क्वीर सिद्धांत का प्राथमिक उद्देश्य है। इन समस्याओं का समाधान एक भारतीय क्वीर सिद्धांत के निर्माण में है, जो समाज में व्याप्त शक्ति असंतुलन से निपटने के लिए उपयुक्त हो। हालांकि, इस प्रकार के सिद्धांत का निर्माण अंतिम लक्ष्य नहीं है, इसे समय की आवश्यकताओं के अनुसार पुनः परिभाषित और पुनर्संतुलित किया जाना चाहिए। यह देसी क्वीर सिद्धांत केवल समावेशिता और प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रहना चाहिए। क्वीर एकता को उन प्रश्नों से जूझना होगा कि कैसे भारतीय क्वीर्नेस को उच्च वर्गीय मानकों के अनुरूप न होने वाली पहचानों को बाहर करने के लिए एकरूप किया गया है। आज के चिथड़ा क्वीर साहित्य में उन संभावनाओं की एक छोटी सी झलक मिलती है, यदि लेखक और सिद्धांतकार इस सिद्धांत की संपूर्ण अभिव्यक्ति सही तरीके से उपयोग करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. अमरा दास विल्हेल्म, त्रितीय प्रकृति : पीपल ऑफ दी थर्ड सेक्स्, क्सिलिब्रिस कॉर्पोरेशन, 2010,

पृष्ठ 83–84
2. माधवी मेनन, इनफिनिट वैरायटी : ए हिस्ट्री ऑफ डिजायर इन इंडिया, स्पीकिंग टाइगर, 2018, पृष्ठ 11–13
3. माइकल वार्नर, दी ट्रबल विथ नार्मल : सेक्स, पॉलिटिक्स एंड दी एथिक्स ऑफ क्वीर लाइफ, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998
4. रूथ वनिता, सलीम किदवाई. सेम–सेक्स लव इन इंडिया, ए लिटरेरी हिस्ट्री. पेंगुइन रैंडम हाउस. 2008, पृ. 115, 198, 223
5. रूथ वनिता, क्वीरिंग इंडिया, रौतलेद्ज, 2002, पृष्ठ 16–19
6. रूथ वनिता, ऑन दी एज, पेंगुइन रैंडम हाउस. 2023, पृष्ठ 8–14
7. जैक हैल्बेरस्टाम, इन ए क्वीर टाइम एंड प्लेज, एन वाई यू प्रेस, 2005
8. मिशेल फूको, दी हिस्ट्री ऑफ सेक्सुअलिटी भाग–2, विंटेज, 1978
9. आर राज राव, क्रिमिनल लव : क्वीर थ्योरी, कल्चर एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया, सेज पब्लिकेशनस, 2017, पृ. 32–34

JAYAKRISHNAN M
Research Scholar, Department of Hindi, Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady
M. 9746773992
jayakrishnanm47@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 216–218

उपदेशात्मक लघुकथा समाज के लिए उपयोगी

डॉ. शिंदे मालती धौंडोपन्त
नारायणराव वाघमारे महाविद्यालया आ. बालापुर ता. कलमनुरी जिला–हिंगोली महाराष्ट्र 431701

आज के इस यांत्रिक युग में मनुष्य के अंदर से प्रेम और इंसानियत ही गायब हो चुकी है जैसे मनुष्य स्वार्थी बन चुका है। उसके मन में ईर्ष्या, द्वेष, वैमनष्य और हिंसा का भाव बढ़ता जा रहा है इसलिये उसमें प्रेम की त्याग की भावना नहीं है। परोपकार, विश्वास ही नहीं रहा हैं। शब्दों को भावनाओं का स्पर्श मिलता है। तो वह कहानियों का रूप लेते हैं। यह लघुकथा संग्रह मनुष्य के मन के भावनाओं के जो विचार उसकी आत्मा की गहराई से निकलते हैं। मनुष्य के मन मे जो छोटे–छोटे विचार आते हैं जो अनुभव वह हर पल लेता है। वही अनुभव उसके विचारों द्वारा कागज पर उतरते हैं। यह लघुकथा संग्रह मैंने पढ़ा उसमें से कुछ कहानियों पर लिखने का प्रयास किया।

कोख :–

जैसे कोख कहानी की नायिका अंजना ने आर्थिक समस्याओं के कारण अपनी कोख को बेच दिया उसका किराया पांच लाख भी लिए वह अपने स्वयं के परिवार, पुत्र के के लिए। लेकिन उन्होंने ही उसे ही उपेक्षित कर वृद्धाश्रम भेज दिया। और उसकी किराए की कोख से पैदा होने वाले बच्चे दानीनाथ ने उसे स्नेह और आर्थिक मदत दस लाख देकर और "किराये की कोख" नाम से पुस्तक को प्रकाशित कर, उसकी लेखिका अंजना भटनागर यानि उसे ही करके उस पुस्तक का लोकार्पण कर के उसे मदद की।

माँ की कोख का कोई मूल्य नहीं होता है वैसे तो माँ को स्नेह मिल जाये तो ही उसे उसका मूल्य प्राप्त होता है।

किरदार :–

सिमा नाम की एक सरकारी विभाग की महिला कर्मचारी है व स्वभाव से स्वार्थी, बदतमीज है। उसमें उदंडता है। लेकिन एक बार जब वह सप्ताह भर ऑफिस नहीं जाती उसी समय चीफ जनरल मैनेजर का दौरा हुआ, तो वहां ऑफिसर से सबकी मीटिंग हुई उसमें सभी ने सिमा की हकीकत उजागर की तो ऑफिसर ने उसे निलंबित किया। सिमा अभी तक किसी से बात नही करती थी न अच्छा बर्ताव करती थी जो एक डॉन थी। अब वह आज उनके सामने स्वयं को न्यौछावर कर रही हैं। इसलिए कहा जाता है कि इंसान केवल अपना किरदार निभाता है। ये सारा जिंदगी का खेल वक्त ही रचाता है। भगवान् के घर देर है लेकिन अंधेर नहीं।

किन्नर :–

इस लघुकथा के द्वारा बेटी को जिस समाज मे दुत्कारा जा रहा है। उसी समाज में बेटी को पाने के

लिए किन्नरों से दुवा करवाई जाती है। उन्हें अच्छी रकम भी दी जाती है। पृथ्वी पर सब अपने अपने भाग्य से आते, उनके जन्म से नही कर्म से डरना चाहिए। बेटा और बेटी एक समान होती है। यह बताने की कोशिश की है।

कानों की बाली :-

इस लघुकथा के द्वारा मनुष्य के पास सब कुछ सुविधाएं एक ही समय में नहीं होती कहानी में बड़े किसान के बेटों के चित्रण हुआ है। किसान को ढाई सौ बीघा जमीन है। उसके चार बेटे हैं। सब में पचास बीघा हिस्सा बंट गया है। लेकिन उस काल में आधुनिक तंत्र ज्ञान न होने के कारण वे जैसे–तैसे जीवन जी रहे थे। किसान के चार पुत्र भी पढ़ाकू थे। लेकिन परिस्थिति से लाचार, हार मानकर तीनों ने खेती की एक चार्टड अकाउंटेंट के पास काम पर लग गया। और कुछ ही वर्षो में अच्छा खासा कमाने लगा। किसान का पोता सुविधा होने पर भी पढ़ाई छोड़कर बाकी अनावश्यक बांटे करता है। इसलिए किसान ने कहा तब "कान था तो बाली नहीं, अब बाली है तो कान नहीं।" सुविधाएं होने के बाद भी आज की पीढ़ी के बच्चे स्वयं खुद को बिगाड़ने पर तुले हुए हैं।

ईमानदारी की परिभाषा :-

आज मेरे एक ग्रामीण स्कूल के ही एक सह टीचर का रिटायरमेंट था। मैं भी उनका विद्यार्थी रहा हूं। विदाई समारोह के कार्यक्रम में मुझे बोलने का अवसर मिला तो मैंने उनकी जीवनी पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वे कर्तव्यनिष्ठ और अत्यंत ईमानदार शिक्षक थे। तो उनके बाद के वक्ता ने पूछा ईमानदारी का क्या तात्पर्य? तो उनसे फिर समय मांगकर मैंने स्पष्ट किया कि कोष के साथ छेड़छाड़ या अनुचित व्यवहार न करने वाले, अपनी ड्यूटी के साथ समझौता न करे ड्यूटी अवर में व्यर्थ समय न गवाएं तो वह व्यक्ति ईमानदार की श्रेणी में आता है। हमारे आदरणीय हरि बाबू सर ने सदैव शिक्षा दान का कार्य किया है। जो इनके विद्यार्थी रहे हैं वे इस बात को भलीभांति जानते हैं।

आजकल हम देखते हैं कि स्वयं को कुछ लोग किसान कहते हैं लेकिन खेती नहीं करते। कोई कहते हैं मैं विद्यार्थी हूँ किन्तु पढ़ते कभी नहीं तो उन्हें ईमानदार नहीं कहा जाता है। अपने कार्य के प्रति जो एकनिष्ठ है, कर्मरत हैं उसे ही ईमानदार कहा जा सकता है।

निःसंतान :-

किशोर तिवारी बैंक में बाबू है और अपने एक मात्र मेधावी पुत्र को सर्वाधिक शिक्षित बनाते हैं। वह दिल्ली यूनिवर्सिटी से गोल्ड मेडलिस्ट होकर भाभा इंस्टीट्यूट में वैज्ञानिक हुआ। रिटायरमेंट के बाद पति पत्नी दोनों अपने पुत्र के कामयाबी पर खुश होते हैं। उसके पास रहने के लिए जाते हैं। लेकिन बेटा केशव और उसकी पत्नी का उनके प्रति उटपटांग रवैया दिखाई देता है। उसकी बातें उन दोनों को असहनीय होती हैं और दोनों वह से भोपाल में आते हैं वहां नए फ्लैट में शिफ्ट होते हैं। पड़ोसियों से परिचय होता है। बाल बच्चों की चर्चा होती हैं तो किशोर जी निःसंकोच सब को बताते है कि वे बे औलाद है। तो लोग इस पर अफसोस करते हैं। सच बात तो ये है कि उनकी संतान होने के कारण और संतान अच्छी न होने के कारण उन्हें अफसोस है। आजकल समाज मे इसी प्रकार संतान का दुःख कई लोगों को भोगना पड़ रहा है।

कर्तव्यहीनता :-

इस लघु कहानी में आजकल नगरों में होने वाले अपघातों के साथ किसी को कोई कर्तव्य नहीं है। केवल

समाचार पत्र में मुखपृष्ठ पर समाचार आता है। कोर्ट में जज ने मोटर वाहन निरीक्षक जिला परिवहन पदाधिकारी तथा आरक्षी अधिकारी (यातायात) को तलब किया। जज ने पूछा ऑटो रिक्शा का सीट सामर्थ्य कितना है। वहां चौराहे पर तैनात (यातायात) पुलिस क्या कर रही थी। तो दोनों अधिकारियों को जवाब नहीं सुझ रहा था। उन्हें अपना अपना कैरियर डूबता नजर आ रहा था। कौन बचेगा, कौन फंसेगा समझ नहीं आ रहा था। लेकिन इसमें से किसी को भी अपना कर्तव्य क्या है। इसके बारे में वह उपेक्षित थे कर्तव्यहीनता का अनुभव आ रहा था।

अनुभव :-

एक दम्पति धार्मिक यात्रा पर दक्षिण भारत के दर्शनीय स्थल, मंदिर देखते जा रहे थे वहां की मनमोहक, प्राकृतिक दृश्य, संस्कृति, लोगों के अंदर सेवाभाव और सहयोग की चर्चा करते हुए नहीं थकते थे। लेकिन एक किस्सा ऐसा हुआ कि एक प्रसिद्ध शहर के एक लॉज में नाश्ता लेन के लिए अकेला बाहर निकला तो एक सात वर्ष का छोटा सा बालक पीठ पर स्कूल बैग लिये माँ के साथ खड़ा था। मैंने उस बालक का गाल छुआ बच्चा मुस्कुराया लेकिन देखते–देखते वहा लोगों ने मुझे घेरकर मारना शुरू किया और महिला पर छेड़खानी का आरोप लगाकर पैसे भी छीन लिए। मैं भागकर कमरे में आया पत्नी को राम कहानी बताई वहां से रवाना हुए।

बात यह है कि जहां जिस शहर में सब बातें अच्छी थी उसके साथ वहां पर ऐसे भी किस्से घटते है बुरे अनुभव भी आते हैं।

लघुकथा एक छोटी कहानी ही नहीं है। यह कहानी का संक्षिप्त रूप भी नहीं है। यह विद्या अपने एकांगी स्वरूप में किसी भी एक विषय, एक घटना या एक क्षण पर आधारित होती हैं। आधुनिक लघुकथा अपने पाठकों में चेतना जागृत करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. बोहल की लघु कथाएं–डॉ. नरेश सिहाग, कोख– पृ. 12
2. वही– किरदार–पृ. 112
3. वही– किन्नर– पृ. 110
4. वही–कानों की बाली–पृ. 108
5. वही–ईमानदार की परिभाषा–पृ. 106
6. वही– निःसंतान, पृ. 100
7. वही–कर्तव्यहीनता, पृ. 98
8. वही– अनुभव, पृ. 29

मो–9421867650

Email- Shindemd2010@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 219-223

समकालीन हिन्दी कविता में दलित और स्त्री

प्रज्ञा शाकल्य
शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।

समकालीन हिन्दी साहित्य परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है और जैसा कि कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण है तो हमारा समाज स्वाभाविक रूप से परिवर्तित हो रहा है, यह परिवर्तन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक है जो कि कविता, कहानी और उपन्यासों में लक्षित होता है। हमारा विषय कविता तक ही केंद्रित रहेगा।

दलित कहते ही हमारे समक्ष व्यापक समूह खड़ा हो जाता है, दलित का सीधा–सीधा अर्थ है जिसका दलन हुआ हो अर्थात् जिसे दबाया, कुचला गया हो, इसके अर्थ–गांभीर्य पर नजर डालें तो यह एक विशद शब्द है जो स्वयं में कई समुदायों को समेटे हुए है जिनका शोषण और उत्पीड़न किया गया हो परंतु हिन्दी साहित्य में दलित अनुसूचित जातियों तक ही सीमित है। अगर ऐसा न होता तो हमें अलग–अलग विमर्श की आवश्यकता नहीं पड़ती, जैसे स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि। डॉ एन. सिंह का कथन है "दलित का अर्थ है, जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो, सामाजिक, आर्थिक और मानसिक धरातल पर। सम्पूर्ण दलित साहित्य ऐसे ही उत्पीड़ित और शोषित लोगों की बेहतरी के लिए दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य है।"

चौथीराम यादव के कथानुसार– 'दलित, स्त्रियाँ, आदिवासी, मजदूर, किसान ये सब हाशिये के समाज में शामिल हैं'। समकालीन दौर में इस समाज को कहीं स्थान मिला या नहीं परंतु कविता, कहानी और उपन्यासों में इन पर बहुत कुछ लिखा गया है। वे तमाम बेबस और मजबूर लोग जो सुरक्षित और सम्मानित जीवन के लिए संघर्ष कर रहे हैं, उनमें से कुछ तो जीने के लिए लड़ रहे हैं जो आज तक अपने अधिकारों से वंचित हैं, सामाजिक भेदभाव के शिकार इन लोगों की व्यथा और संवेदना समकालीन दौर कि कविताओं में दृष्टिगत है। मलखान सिंह की कविता 'मुझे गुस्सा आता है' का एक अंश देखिए :–

'मेरी माँ मैला कमाती थी
बाप बेगार करता था
और मैं मेहनताने में मिली जूठन को
इकट्ठा करता था, खाता था।'

इस कविता को पढ़ते ही बालकृष्ण शर्मा "नवीन" की कविता जूठे पत्ते की याद आती है :–

"लपक चाटते जूठे पत्ते, जिस दिन मैंने देखा नर को,
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ, आज आग इस दुनिया भर को,

यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ, घोंटा जाए स्वयं जगपति का,
जिसने अपने ही स्वरूप को, रूप दिया इस घृणित विकृति का"।

इनकी इस कविता में संवेदना को झंकृत करने की क्षमता है, जो मलखान सिंह की कविता के आक्रोश को पूर्णतः प्रकट करता है।

दलितों की दीन दशा, उन पर हो रहे अत्याचारों को, उनकी स्थिति को देखते हुए लगता है कि मनुष्य के साथ हो रहा व्यवहार असंवैधानिक और अनुचित है, जहां उसे अस्पृश्यता के कांटे चुभाए जाते हैं, जहां वे पशुओं से भी बदतर व्यवहृत होते हैं। ऐसे में ओमप्रकाश वाल्मीकि का सवाल बहुत सार्थक प्रतीत होता, अपनी कविता "तब तुम क्या करोगे?" में वे पूछते हैं :–

यदि तुम्हें,
धकेलकर गाँव से बाहर कर दिया जाये
पानी तक न लेने दिया जाये कुएँ से
दुतकारा–फटकारा जाये
चिलचिलाती दुपहर में
कहा जाये तोड़ने को पत्थर
काम के बदले
दिया जाये खाने को जूठन
तब तुम क्या करोगे?

दलित कहानी, उपन्यास और कविता में हर जगह जूठन का जिक्र आता है, जहां दलितों को पानी नसीब नहीं वहाँ शुद्ध भोजन के बारे में क्या सोचना, यहाँ प्रेमचंद के कहानी के पात्र जोखू और गंगी अनायास ही याद आ जाते हैं और हृदय क्षुब्द हो उठता है। दलित कविताएँ संवेदना प्रकट करती हैं, उसमें नकार है जो जातिगत भेदभाव, शोषण, दमन के विरुद्ध है। जो असमानता समाज में व्याप्त है उसका परिणाम कितना विद्रुप है इसका उदाहरण सूरज पाल चौहान की कविता "मेरा गाँव" में लक्षित है, उसकी पंक्तियाँ उद्धृत हैं :–

"उनका दूल्हा चढ़ घोड़ी पर
घूमे सारा गाँव–गली
मेरी बेटी की शादी पर
कैसी आफत आन पड़ी
जिन पैरों चल घोड़ी चढ़ आया वो
अलग पड़े हैं दोनों पाँव।
मेरा गाँव, कैसा गाँव?
न कहीं ठौर, न कहीं ठाँव"।।

इन्हें मूलभूत सुविधाएँ जो इनका अधिकार है वो भी मयस्सर नहीं, ये एक असुरक्षित जिंदगी जीने को विवश हैं, जहां इनकी बहन–बेटियों की इज्जत लुटती और बिकती रहती है, अपरिमेय पीड़ा, असंख्य घावों के बावजूद इनकी जिजीविषा कम नहीं हुई बल्कि अपने दर्द को ताकत बनाकर, अपने आंसुओं को पोंछ कर जीने

की राह को चुनते हैं। यहाँ सुशीला टाकभौरे की कविता उल्लेखनीय है :–

"अपने आंसुओं को पोंछ कर
सजाना होगा
टूटे सपने स्वयं
सिसकियों को बदलकर हुंकार में
लाचार बेबस जिंदगी को
बताना होगा सबल जीने की राह"।

स्त्री कहीं की हो, किसी धर्म, किसी जाति, किसी देश–विदेश सबकी स्थिति कमोबेश एक–सी ही है। स्त्री सदियों से दोयम दर्जे की नागरिक रही है, पन्नों पर तो उसके बारे में बहुत कुछ लिखा गया है पर आज भी वह इस समाज में अपना स्थान बनाने के लिए जदोजहद करती नजर आती है। हम आधुनिकता के दौर में हैं लेकिन जहां स्त्री की बात बात आती है, हम उसके शरीर से ऊपर सोच ही नहीं पाते। हमने ग्रंथों में तो उसे लक्ष्मी, सरस्वती बनाकर पूजा, उसे पूजनीय बताया परंतु जमीनी हकीकत उससे काफी अलग है। स्त्री बस गर्भधारण कर वंश को बढ़ाने वाले देह की तरह ही देखी गई है या तो फिर मात्र भोग्या के रूप में। पितृसतात्मक सोच ने कभी उसे पुरुषों के बराबर नहीं समझा और बढ़ते बाजारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने उसे सौन्दर्य और उपभोग की वस्तु बना छोड़ा है परंतु स्त्रियाँ अब चेतस हुई हैं, वे अपने अस्मिता और अधिकारों को पहचान पा रही हैं। नारीवादी लेखिका सिमोन द बोउवार कहती हैं, "स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है"। स्त्री और पुरुष एक समान ही पैदा होते हैं लेकिन समाज स्त्री को प्रशिक्षित करता है कि हम एक मानदंड के अनुसार ही व्यवहार करे जो समाज ने स्त्रियों के लिए बना रखा है। समकालीन साहित्य में स्त्री प्रश्न, स्त्री कि समस्याओं को सूक्ष्म रूप से चित्रित किया गया है। कात्यायनी अपनी छोटी सी कविता "देह न होना" में ये बता देती हैं कि स्त्री सिर्फ देह भर नहीं है बल्कि उसमें पूरी दुनिया को बदल देने का सामर्थ्य है, कविता की पंक्तियाँ उल्लेखित हैं :–

"देह नहीं होती है
एक दिन स्त्री
और उलट–पलट जाती है
सारी दुनिया
अचानक!"

समकालीन कविता में स्त्री परंपरागत धारणा और मर्यादित छवि को तोड़ती दिखाई देती है, वह पुरुषों के कंधों से कंधा मिलाकर चलना चाहती है परंतु ये पितृसतात्मक समाज उसे इस रूप में देखने का आदि नहीं है इसलिए कई विशेषणों को आरोपित करता है लेकिन आज की स्त्री इस आरोपों से बेपरवाह और मुक्त होकर पूरा आकाश नापना चाहती है, शैलजा पाठक की कविता "कमाल की औरतें" का कुछ अंश देख सकते हैं–

"सभी के घोंसलों में परिवार की ऊर्जा भी नहीं भरी होती
कुछ चिड़ियाँ अकेले भी नापती हैं आकाश
पर चिड़ियाँ चाहे जैसी भी हों

उनके पंख सुनहरे होते हैं
और हम हर सुनहरी चीज का शिकार करते हैं"।

स्त्रियों के साथ हो रहे घरेलू हिंसा, उनकी दयनीय दशा को ममता कालिया की कविता "खाँटी घरेलू औरत" में लक्षित किया जा सकता है :–

"कोई उनसे पूछे
क्यों करते थे वे प्रहार
बात से नहीं
हाथ से नहीं
लात से
बगैर सूचना
घात से"।

पति द्वारा किया गया उत्पीड़न, घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री जिसे चाँद भी अपने दूल्हे द्वारा उत्पीड़ित ही नजर आता है, वही चाँद जिसमें प्रेमी–प्रेमिकाओं को अपने प्रिय का मुखड़ा दिखता था, समकालीन दौर में उस रोमैन्टिसिजम को हटाते हुए यथार्थ को चित्रित किया गया है, पीड़ित स्त्री अपने दर्द को समेटे अपनी माँ से पूछती है :–

क्या चाँद औरत है, अम्मा?
कौन उसकी खातिर
बंसी बजाता है?
बंसी बजैया भी उतने ही निष्ठुर
क्यों होते हैं
जितने माथाफोरैया?"

अनामिका की ये कविता आत्मा को झकझोर देती है, बेबस स्त्री का ये सवाल पूरे समाज का विकृत रूप हम सबके समक्ष लाकर खड़ा कर देता है कि पुरुष कैसे रीति–विशेष से अनुकूलित है।

स्त्री का स्वाधीन होना अति आवश्यक है, जब वह आर्थिक रूप से स्वावलंबी होगी तब ही वह स्वतंत्र हो पायेगी, 'कैथरीन मैकाले' अपनी किताब 'लेटर्स ऑन एजुकेशन' में आलोचना करती हैं कि "स्त्रियाँ आर्थिक रूप से पुरुषों के अधीन हैं और कहती हैं स्त्रियों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए"। एक सशक्त स्त्री ही अपने शोषण के विरूद्ध आवाज उठा पाएगी। पुरुषवादी समाज अपनी संकीर्णता से उबर नहीं पाया जिसका खामियाजा स्त्रियों को भुगतान पड़ता है। समाज में हम अक्सर देखते हैं कि पुरुष वर्ग आपस में झगड़ा करते हैं और गालियां स्त्रियों को दी जाती है क्योंकि गालियां स्त्रियों के मान मर्दन के लिए ही बनी हैं, उनके अंग–प्रत्यंग को केंद्रित करके गाली का निर्माण हुआ, पुरुष अपनी शक्ति, अपना पुरुषार्थ स्त्रियों को बेआबरू करके ही सिद्ध कर पाता है, वह सारा आक्रोश स्त्री की देह पर निकाल कर खुद को विजयी महसूस करता है,

इस संदर्भ में गरिमा श्रीवास्तव द्वारा लिखी गई किताब "देह ही देश" पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें यह परिलक्षित होता है कि ये युद्ध पुरुषों के हथकंडे हैं परंतु इसकी विभीषिका स्त्री को झेलना पड़ता है। सारे युद्ध

स्त्रियों के देह से होकर गुजरते हैं पर कोई स्त्री की बात नहीं करता लेकिन समकालीन साहित्य मे स्त्रियों की बात की गई है इसमें स्त्रियों के शोषण और उत्पीड़न, बनने और टूटने, आशा और विश्वास, उसके अस्वीकृति और विद्रोह को अधिक तीव्रता और गहराई से व्यक्त किया गया है, इनमें पुरुष वर्ग के प्रति आक्रोश है जो स्पष्ट रूप से सुशीला टाकभौरे की कविता "आज की खुद्दार औरत" में दिखाई पड़ता है :–

"तुमने उघाड़ा है
हर बार औरत को
मर्दों
क्या हर्ज है
इस बार स्वयं वह
फेंक दे परिधानों को
और ललकारने लगे
तुम्हारी मर्दानगी को
किसमें हिम्मत है
जो उसे छू सकेगा?"

जब तक समाज में ये असमानता बनी रहेगी तब तक उनका संघर्ष बना रहेगा, चाहे वह दलित हो या स्त्री, रामधारी सिंह दिनकर की कविता "कुरुक्षेत्र" की पंक्तियाँ याद आ रही हैं :–

"जब तक मनुज मनुज का यह, सुख भोग नहीं सम होगा।
शमित न होगा कोलाहल, संघर्ष नहीं कम होगा"।

संदर्भ सूची :–

1. अनामिका, दूब–धान, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2008
2. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, हिन्दी पॉकेट बुक्स, 2002
3. सं. माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, सम्यक प्रकाशन।
4. सं. डॉ श्योराज सिंह 'बेचौन', डॉ रजतरानी 'मीनू', दलित दखल, आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, लोनी, गाजियाबाद।
5. डॉ रमेशचंद्र चतुर्वेदी, बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद।
6. सं. डॉ राम चंद्र, डॉ प्रवीण कुमार, दलित चेतना की कविताएँ, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, साहित्य उपक्रम।
8. दीपक कुमार और देवेन्द्र चौबे, हाशिए का वृतांत रु स्त्री, दलित और आदिवासी समाज का वैकल्पिक इतिहास, आधार प्रकाशन, 2011
9. चौथीराम यादव, उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज, मेधा पब्लिशिंग हाउस, 2014

मो. 9123486093

Pragyashakalyajnu@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 224–227

अनीता वर्मा की कविताओं में अभिव्यक्त 'स्त्री के वस्तुकरण' की समस्याएं

श्रीराज के एस
शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटी, केरल।

स्त्री द्वारा झेली जाने वाली समस्याएं बहुत समय पहले से मौजूद हैं, और समय व समाज के बदलावों के बावजूद इन समस्याओं का समाधान नहीं हुआ है। केवल समस्याओं के स्वरूप में बदलाव आया है, जो नए सामाजिक और आर्थिक परिवेश के अनुसार विकसित हुए हैं। आज के दौर में, जब पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव बन चुकी है, कुछ ऐसी समस्याएं उभरी हैं जिन्हें लोग पूरी दुनिया में समान रूप से महसूस कर रहे हैं। तकनीकी विकास और मशीनों के बढ़ते प्रभाव ने समाज पर गहरा प्रभाव डाला है, और उत्पादन में वृद्धि हुई है। अब माल की बिक्री के लिए देशों की सीमाएं पार की जाती हैं, और व्यापार के विस्तार के लिए मनुष्य उत्पादों को आकर्षक बनाने की कोशिश करता है। इसके लिए उसने मानव मनोविज्ञान का पूरा उपयोग किया और 'डिमांड और सप्लाई' का सिद्धांत लागू किया। डिमांड को उत्पन्न करने के लिए उसने कई उपायों की खोज की, जिनमें स्त्री भी शिकार हुई। यहां तक कि स्त्री का वस्तुकरण भी एक प्रवृत्ति बन गई।

अनीता वर्मा की कविताएं स्त्री की समस्याओं की व्यापकता को दर्शाती हैं। उनकी कविताओं जैसे 'भय', 'दोष', 'इस्तेमाल', 'व्यर्थ', 'स्त्री का चेहरा', 'स्त्रियों से' आदि में स्त्री के विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं का चित्रण किया गया है। 'भय' कविता की पंक्तियां स्त्री की भयावह स्थिति को व्यक्त करती हैं।

"वे शायद अपने आपसे पूछती हैं
क्यों उनकी आत्मा कभी साँस नहीं लेती
चिड़ियों की तरह पंख नहीं फैलाती
उनके समुद्र में क्यों सिर्फ नमक है।"

बचपन से लेकर गृहस्थी तक, स्त्री का भय निरंतर बढ़ता रहता है। पहले उसे समाज और परिवार की अपेक्षाओं का डर होता है, फिर विवाह के बाद उसे पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक मानदंडों का सामना करना पड़ता है। लेकिन गृहस्थी की स्थिति में भी उसकी स्थिति में ज्यादा बदलाव नहीं आता। उसकी समस्याएँ कभी तो उसके जन्म के साथ ही शुरू हो जाती हैं, और कभी उसकी स्त्री पहचान के कारण, वह समस्याएँ जन्म लेने से पहले ही थोपा दी जाती हैं। समाज की कुछ स्थापित व्यवस्थाएं हैं, जो हमेशा स्त्री को पुरुष के नीचे ही मानती हैं, चाहे वह परिवार हो, कार्यक्षेत्र हो या समाज का कोई और क्षेत्र। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्रियों

के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण पैदा किया है, जिसमें उन्हें अक्सर दूसरों के विचारों और इच्छाओं के अनुसार जीने के लिए मजबूर किया जाता है। यह दृष्टिकोण आज भी कायम है, जिससे स्त्रियों को बराबरी का अधिकार और स्वतंत्रता नहीं मिल पाती। हम यह जानते हैं कि स्वतंत्रता मिलने के बाद भी, सामाजिक और मानसिक स्तर पर स्त्रियाँ अभी भी पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं हो पाई हैं। उनकी समस्याएँ और संघर्ष निरंतर जारी हैं, और यह स्थिति आज भी कई पहलुओं में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 'दोष' कविता की पंक्तियाँ इस दुखद वास्तविकता को और भी गहरे तरीके से उजागर करती हैं :–

"जब मैं पैदा हुई तो मुझमें दोष था
क्योंकि मैं लड़की थी
जब थोड़ी बड़ी हुई तब भी दोषी रही
क्योंकि मेरी बुद्धि लड़कों से ज्यादा थी
थोड़ी और बड़ी हुई तो दोष भी बड़ा हुआ
क्योंकि मैं सुंदर थी और लोग मुझे सराहते थे
और बड़ी होने पर मेरे दोष अलग थे
क्योंकि मैंने गलत का विरोध किया
बूढ़ी होने पर भी मैं दोषी रही
क्योंकि मेरी इच्छाएँ खत्म नहीं हुई थीं
मरने पर भी मैं दोषी रही
क्योंकि इन सबके कारण असंभव थी मेरी मुक्ति।"

विज्ञापन के इस युग में, आजकल हम अक्सर यह सुनते हैं कि 'अपना मार्केटिंग और एडवरटाइजिंग मुझे खुद करनी है, तभी लोग मुझे जानेंगे।' इसका मतलब है कि बाजारीकरण का प्रभाव अब हर व्यक्ति तक पहुँच चुका है, और यह केवल बड़े व्यापारों तक सीमित नहीं रह गया है। प्रत्येक व्यक्ति, व्यवसाय और उत्पाद को बाजार में खुद को स्थापित करने के लिए विज्ञापनों की आवश्यकता है। विज्ञापनों ने हमारे जीवन को चारों ओर से घेर लिया है, चाहे वह टीवी हो, सोशल मीडिया हो, या सड़क पर लगे होर्डिंग्स। इन विज्ञापनों का एकमात्र उद्देश्य होता है – उत्पाद के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ाना और उसे बेचना।

विज्ञापनों में हमेशा उत्पाद की एक आकर्षक और बढ़ी–चढ़ी छवि पेश की जाती है, जबकि वास्तविकता यह होती है कि उत्पाद की असली गुणवत्ता का सही पता केवल उसके उपयोग के बाद ही चलता है। विज्ञापन एक मानक स्थापित करता है, जो अक्सर वास्तविक जीवन से मेल नहीं खाता। इन मानकों में लोग फंस जाते हैं, और वे इन्हें सच मानने लगते हैं। उदाहरण के लिए, विज्ञापनों में यह कहा जाता है कि हमेशा युवा दिखना ही सुंदरता का मापदंड है, और इस विचार को फैलाकर कंपनियाँ अपने उत्पाद बेचती हैं।

जैसे ही उम्र बढ़ती है, विज्ञापन हमें विभिन्न लोशन, क्रीम और अन्य उत्पादों का उपयोग करने के लिए प्रेरित करते हैं, यह वादा करते हुए कि ये हमें फिर से युवा बना देंगे। लेकिन असल में, ये उत्पाद उस तरह के परिणाम नहीं देते। इस तरह से विज्ञापन द्वारा खूबसूरती, रंग, खानपान, रोजमर्रा की जिंदगी की वस्तुएं, रोजगार और यहां तक कि हमारे जीवन के मानक भी तय किए जाते हैं।

हम इस विज्ञापन के जाल में अनजाने में फंस जाते हैं, और इसका प्रभाव हमारे मानसिकता और विचारों पर बहुत गहरा होता है। विज्ञापनों में जो चित्र और दृश्य दिखाए जाते हैं, वे अक्सर बनावटी होते हैं, और उन्हें देखकर हम यह नहीं पहचान पाते कि वे असली नहीं हैं। यह मानक और छवियाँ हमें अपने वास्तविक जीवन से दूर करती हैं, और हम उन सपनों और अपेक्षाओं के पीछे दौड़ते रहते हैं जो विज्ञापन हमें दिखाते हैं। अनिता जी की 'विज्ञापन' कविता इन सब पहलुओं को बहुत स्पष्ट और गहरे तरीके से उजागर करती है, और यह दर्शाती है कि हम कैसे इस बाहरी प्रभाव से प्रभावित होकर अपने अंदर की असलियत को भूल जाते हैं।

"कुछ दिनों बाद शायद बनाए जाएँ विज्ञापन।
खरीदिए एक पूरा आदमी भाव प्रेम और संवेदना से भरपूर।"

स्त्री का वस्तुकरण समाज में बहुत समय से विद्यमान है, और यह खासकर फिल्मों और उनके गानों में खुले रूप से देखा जाता है। फिल्मों और दृश्य श्रव्य माध्यमों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये दर्शकों को बहुत आसानी से आकर्षित करते हैं। इन माध्यमों में प्रस्तुत कथाएँ और दृश्य अक्सर इतनी प्रभावी होती हैं कि लोग उन्हें वास्तविकता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, बिना यह विचार किए कि क्या वे सही हैं या नहीं। इसके परिणामस्वरूप, कई लोग फिल्मों में दिखाई जाने वाली स्थितियों और पात्रों को यथार्थ मानने की मानसिकता विकसित कर लेते हैं। इसके चलते वे किरदारों के चरित्र और उनके कार्यों की सही या गलत के आधार पर जांच–परख नहीं कर पाते।

फिल्मों के गानों में अक्सर स्त्री का चित्रण केवल उसके शारीरिक रूप और आकर्षण पर आधारित होता है, और उसे एक वस्तु की तरह दिखाया जाता है। कई प्रसिद्ध गानों, जिन्हें 'सुपरहिट' का दर्जा प्राप्त है, में यह वस्तुकरण विशेष रूप से प्रकट होता है, जहाँ स्त्री को केवल एक मनोरंजन के माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन गानों में स्त्री का असली रूप, उसकी भावनाएँ या उसके व्यक्तित्व को अनदेखा कर दिया जाता है, और उसे सिर्फ एक शारीरिक या बाहरी आकर्षण के रूप में सीमित कर दिया जाता है।

इसके अलावा, विज्ञापनों में भी स्त्री का वस्तुकरण कम नहीं है। विज्ञापन अक्सर उसे एक वस्तु या उत्पाद के रूप में पेश करते हैं, जो केवल खरीदारी या उपभोग के लिए है। विज्ञापनों का उद्देश्य यह होता है कि वे उपभोक्ताओं को आकर्षित करें, और इसके लिए वे स्त्री के रूप और आकर्षण का उपयोग करते हैं। इस प्रकार के वस्तुकरण से समाज में यह धारणा बनती है कि स्त्री की पहचान और महत्व केवल उसकी शारीरिक खूबसूरती और बाहरी आकर तक सीमित है, जबकि उसका असली व्यक्तित्व और उसकी आंतरिक संवेदनाएँ पीछे रह जाती हैं।

अनीता जी की कविता 'इस्तेमाल' में इस वस्तुकरण की प्रक्रिया और इसके प्रभाव को बारीकी से चित्रित किया गया है। कविता स्त्री के शारीरिक रूप को एक वस्तु की तरह पेश करने के मानसिकता और उस मानसिकता के समाज पर पड़ने वाले प्रभावों को उजागर करती है। यह हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि हम किस तरह से स्त्री को अपने आस–पास और मीडिया में प्रस्तुत करते हैं और इससे उसके वास्तविक अस्तित्व पर क्या असर पड़ता है।

"खरीदनी है अगर दवा तो देखो स्त्री को
दर्द से ज्यादा असरदार है उसकी कमर

तेल से ज्यादा सुंदर हैं केश कपड़ों से ज्यादा देह
देखो चमकीली आँखें चिकनी त्वचा
काली करो कल्पना अगर खरीदनी हो गजल
शुक्र करो कि खूबसूरत माँएँ बच्चे नहीं बेचतीं
यह काम बदसूरत माँओं के लिए तय किया गया है
सुखी घर के लिए हर सामान बिकता है
यह बात सब छिपाते हैं कि उनसे जीवन का क्या बनता है।।"

यह सब कुछ उदाहरण के तौर पर है, और वास्तविकता इससे कहीं अधिक भीषण है। स्त्रियों पर कोमल और स्लिम बनने का दबाव अत्यधिक है। अमेरिकी टीन मैगजीनों में कई विज्ञापन होते हैं, जिनमें छोटी लड़कियों को भी इस दबाव से बचाया नहीं जाता। इसका परिणाम यह होता है कि लोग लड़कियों को सेक्स ऑब्जेक्ट्स की तरह देखने लगते हैं। हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं, जहां स्त्रियाँ और लड़कियां विभिन्न प्रकार के यौन हिंसा का शिकार हो रही हैं। जब स्त्री का वस्तुवादी दृष्टिकोण से चित्रण होता है, तो यौन हिंसा का खतरा और बढ़ जाता है। हालांकि, विज्ञापन सीधे तौर पर हिंसक नहीं होते, लेकिन ये खतरनाक मानसिकताओं को सामान्य बना देते हैं। जबकि पुरुष भी कभी–कभी वस्तुवादी दृष्टिकोण का शिकार होते हैं, यह महिलाओं के मुकाबले कम है। पुरुषों को वस्तुवादी तरीके से चित्रित करने के परिणाम उतने नकारात्मक नहीं होते, क्योंकि वे एक ऐसी दुनिया में रहते हैं, जहां उनके साथ शारीरिक हिंसा, उत्पीड़न और बलात्कार होने की संभावना बहुत कम है। हालांकि, इसका यह मतलब नहीं है कि पुरुषों को भी वस्तुवादी नजरिए से देखा जा सकता है।

निष्कर्ष :–

अनीता वर्मा की कविताओं में स्त्री के वस्तुकरण की समस्याओं को गहरे तरीके से उजागर किया गया है। उनकी कविताएं इस बात को सामने लाती हैं कि समाज स्त्रियों को अक्सर केवल उनके शारीरिक रूप में देखता है, न कि उनके पूरे व्यक्तित्व के जरिए। अनीता वर्मा ने यह दिखाया है कि कैसे इस वस्तुकरण के कारण स्त्रियाँ शारीरिक, मानसिक और सामाजिक हिंसा का शिकार होती हैं। उनकी कविताओं में स्त्री के संघर्ष और उसकी पीड़ा को व्यक्त किया गया है, जो इस मानसिकता के खिलाफ संघर्ष करने की जरूरत को दर्शाती हैं। उन्होंने समाज में बदलाव की आवश्यकता को महसूस कराया, ताकि स्त्री को सम्मान और समानता की दृष्टि से देखा जा सके। अनिता वर्मा की कविताएं स्त्री के आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की अहमियत को स्पष्ट करती हैं और वस्तुकरण की समस्याओं को समाप्त करने की दिशा में एक मजबूत कदम उठाती है।

सहायक ग्रन्थ सूची :–

1. वर्मा अनीता (2003) 'एक जन्म में सब, राजकमल प्रकाशन।
2. वर्मा अनीता (2008) रौशनी के रास्ते पर, राजकमल प्रकाशन।
3. पचौरी सुधीश : स्त्री जो महज त्वचा है।
4. जन विकल्प (2020) स्त्री कविता।
5. सिंह सविता (2023) प्रतिरोध का स्त्री स्वर, समकालीन हिंदी कविता, राधाकृष्ण प्रकाशन।
6. चौधरी लकी (2019) समकालीन हिंदी कविता : घर, स्त्री और बाजार, के के पब्लिकेशन।

ईमेल : iamsreerajksudhakaran@gmail.com, फोन : 9995638747

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 228-231

छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य शैली के शलाका पुरूष–हबीब तनवीर

डॉ. चौधरी निलोफर महेबुब
हिंदी विभाग, श्री. शिवाजी महाविद्यालय, बाशी. जि. सोलापुर, महाराष्ट्र।

हिन्दी रंगमंच के छत्तीसगढ़ी लोक–नाट्य परम्परा में हबीब तनवीर का उल्लेखनीय योगदान रहा है। हबीब तनवीर अपने नये प्रयोग 'नाचा' वर्कशॉप से इस क्षेत्र में आए है। 'नया थिएटर' के छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों द्वारा उन्हीं की भाषा और उन्हीं की लोक–शैलियों में प्रस्तुत छत्तीसगढ़ी और राजस्थानी लोक–कथाओं का उनके द्वारा लिखित निर्देशित रूपों का सफल प्रदर्शन लोक–तत्वों के सार्थक एवं प्रासंगिक प्रयोगों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। हबीब तनवीर ने लोक–नाट्य की प्रचलित परंपराओं से हटकर आधुनिक प्रभावों से समृद्ध छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों को साथ लेकर अपने नाटकों का प्रदर्शन किया। हबीब तनवीर के बारे में देवेन्द्रराज अंकुर कहते हैं, 'आधुनिक हिन्दी, बल्कि भारतीय रंगमंच में हबीब तनवीर की उपस्थिति एक ऐसे विराट वृक्ष की उपस्थिति है, जिसकी जड़े–शाखाएँ, प्रशाखाएँ सुदुर भारतीय अतीत की रचनात्मक, उत्तेजनाओं, मध्यकाल के संघषों और आधुनिक समय के संकटों से रस और प्राण ग्रहण करती हुई, ग्राम्य लोक–जीवन और जनजातीय समाजों से लेकर महानगरों तक पसरी हुई है। इस लिहाज से वे बृहत्तर अर्थो में, वास्तविक भारतीयता के प्रतीत पुरुष कहे जा सकते हैं।'[1]

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में लोक–नाट्य शैली का प्रयोग रचना विधान की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में किया। फलस्वरुप उनके ज्यादातर नाटक सफल रहे। रंगमंचीय प्रयोग की दृष्टि से हबीब तनवीर की रंग–यात्रा के तीन चरण उभरकर सामने आते हैं। इनकी आरंभिक प्रस्तुतियों पर पारसी रंगमंच का प्रभाव झलकता है। तदुपरांत 'आगरा बाजार' और 'मिट्टी की गाड़ी' जैसी प्रस्तुतियों में शहरी और लोक रंगमंच का संगम दिखाई देता है। सत्तर के दशक के बाद इनकी प्रस्तुतियों में संस्कृत नाट्य–परंपरा, छत्तीसगढ़ी नाचा शैली और पश्चिम के रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

नाटकों में भिन्न–भिन्न शैलियों का जो प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसके बारे में हबीब तनवीर कहते हैं कि 'संस्कृत के मुख्य नाटक दिल्ली में रहकर पढ़े और ब्रेश्ट के नाटक लंदन में रहकर। ये दो महान नाट्य धाराएँ–एक प्राचीन हिन्दुस्तान की और दूसरी युरोप की, इन दोनों ने मेरे दिल में ऐसी गहरी छाप डाल दी कि मैं शायद आज तक इन्हीं के जेरेअसर काम कर रहा हूँ। ये दो परंपराएँ और इनके साथ छत्तीसगढ़ की लोक–नाट्य शैली, शायद इन तीन प्रभावों ने मेरे थिएटर के मिजाज की तरकीब (रचना) में बराबर–बराबर का

भाग लिया है।'[२]

हबीब तनवीर ने अपने सभी नाटक करीबन छत्तीसगढ़ी नाचा शैली में मंचीत किए हैं, क्योंकि उनके नाटकों के कलाकार छत्तीसगढ़ी लोकशैली में निपुन थे। उनके नाटकों की भाषा भी अकसर छत्तीसगढ़ी होती थी। उसमें शैलियों को निश्चित करते समय कई चीजों को शामिल करना पड़ता था। शैली का मतलब सिर्फ भाषा नहीं होता था। छत्तीसगढ़ी नाचा शैली में अगर तीन–चार लोग काम कर रहे हैं तो आमतौर पर दो लोग बोलते नजर आते हैं और कभी–कभी तीसरा संदेशवाहक बनकर या हँसी–मजाक करने का एक छोटा–सा रोल निभाता हुआ नजर आता है ताकि अभिनेताओं को वेशभूषा बदलने के लिए वक्त मिल पाए।

हबीब तनवीर छत्तीसगढ़ी नाचा शैली के बारे में कहते हैं, कि यह प्राचीन शैली है, क्योंकि इसमें आमतौर पर दो ही कलाकार नाटक को आगे ले जाते हैं। हमारे मंचन में अधिक संख्या में कलाकार होते हैं। इसलिए उसमें नृत्य–संयोजन की जरुरत पड़ती है। फिर पोजशनिंग के अलावा आवाज में उतार–चढ़ाव और सन्तुलन बनाए रखना पड़ता है, साथ ही उसमें प्रकाश–व्यवस्था, मंच सज्जा ये सारी चीजें दाखिल हो जाती है। इसलिए शैली कहीं–से–कहीं हो जाती है, क्योंकि शैली इन्हीं सब चीजों के सहारे बनती है। हमारे कलाकार हमारे गाँव के हैं। इसलिए वे यहाँ अपनी संस्कृति, अपनी भाषा से सब लेकर आते हैं। इसलिए उनके नाटको में आँचलिकता दृष्टिगोचर होती है अर्थात आँचलिकता ही उनके नाटकों का प्राण बन गयी है। लेकिन सिर्फ उसे भी शैली नहीं कहा जा सकता, वह एक संस्कृति, एक प्रामाणिकता अवश्यक है। जैसे अभिजात्य हिंदी और उर्दू है, इन भाषाओं के इर्द–गिर्द सांस्कृतिक अंतश्चेतनाएँ हैं, जैसे– लखनऊ की लखनवी का अंदाज। बेगमों–नवाबों, फकीरों–कारखान्दारों की अपनी प्रामाणिकता है। इसी तरह मेरे देहाती कलाकार अपनी भाषा और संस्कारों के माध्यम से मेरे नाटकों में एक किस्म की प्रामाणिकता लाते हैं। मेरी नाट्य–शैली में कहीं ब्रेख्त है, कहीं शेक्सपीयर है और पता नहीं कौन–कौन होगा।

लोक संस्कृति एक ऐसा विचार है कि वह एक ऐसा जनसमूह है, जो अभिजात्य संस्कार, सभ्यता और शिक्षा से रहित है तथा सुसंस्कृत लोगों की अपेक्षा अधिक सरल जीवन जीने का अभ्यासी है। उसमें कृत्रिमता नहीं होती है और वह आदिम संस्कृति के परंपरागत तत्वों को वहन करता है। 'लोक' संस्कृति की ऊर्जा ही हबीब तनवीर में संपूर्ण नाट्य–चेतना के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है और उन्हें अपने समकालीन अन्य भारतीय नाटककारों और रंगचिंतकों से अलग जमीन पर ला खड़ा करती है। हबीब ने भारतीय परंपरा की लोक–शैली को सबसे पहले पहचाना और इसी को अपने रंगकर्म का आधार बनाया।

वस्तुतः हबीब यह जानते थे कि भारतीय संस्कृति के केंद्र में 'लोक' ही है तथा लोक के साथ जुड़कर ही सार्थक रंगमंच की तलाश पूरी हो सकेगी। इसीलिए अपनी बात को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए वह भारत के केंद्र में पहुँचते हैं, 'आज भी गाँवों में भारत की नाट्य–परंपरा अपने आदिम वैभव और समर्थता के साथ जिंदा है।' उनके पास एक गहरी लोक–परंपरा है और इस परंपरा का नैरंतर्थ आधुनिक रंगमंच के लिए आवश्यक है।'[३]

अमितेश कुमार अपने शोध–लेख में हबीब साहब की शैली की खोज करते हुए पाते हैं कि 'वस्तुतः हबीब साहब ने ऐसी शैली तैयार की जिसमें रंगमंच पर सभी तरह की अभिव्यक्तियाँ हो सके, सब तरह के अभिनेता उसमें रह सके। इस शैली का केंद्र अभिनेता और दर्शक है।'[४]

हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी लोक–नाट्य शैली और छत्तीसगढ़ी भाषा को अपने नाटक का आधार बनाया, वे खुद छत्तीसगढ़ के थे, इस काम में कोई परेशानी नहीं हुई। तनवीरजी ने अपने नाट्य–प्रदर्शन के लिए एक अलग प्रयोग किया। अपने नाटको में अभिनय के लिए छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों को चुना। देहाती इलाके के ये कलाकार अक्षर ज्ञान से कोसों दूर थे। हबीब तनवीर ने अपनी प्रतिभा और प्रतिबद्धता के बल पर न केवल उन अनपढ़ कलाकारों को निपुन बनाया बल्कि एक नए रंगकर्म की शुरुआत कर भारतीय रंगमंच को नई ऊँचाई प्रदान की। सन १९५४ ई. में तनवीरजी ने 'आगरा बाजार' की प्रस्तुति की उसमें लोक–शैली का प्रयोग गहराई से दिखता है।

हबीब तनवीर अपने लोक नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोक–परम्परा को अनुस्युतं कर एक नए अध्याय की शुरुआत की। भारतवर्ष के विभिन्न लोक–नाट्य शैलियों की बेहतर समझ हबीब तनवीर को थी, वे कहते हैं कि, 'लोक–रंगमंच जहाँ–जहाँ भी है, मैं ने वहाँ काम किया है उड़ीसा, हरियाना, राजस्थान, छत्तीसगढ़ आदि कई जगहों में मैंने ये देखा विशेषकर राजस्थान में कि वहाँ के लोक–रंगमंच में एक किस्म का रुकाव आ गया है।'[५]

हबीब तनवीर ने जब कभी भी लोक–शैलियों का प्रयोग अपने नाटकों में किया, उनके वह नाटक शहरों की अपेक्षा गाँवों एवं कस्बों में अधिक लोकप्रिय हुए। इसे स्पष्ट करते हुए तनवीरजी कहते हैं कि, 'मेरे नाटक गाँवों में भी बहुत लोकप्रिय हैं। उन्हें अपनी भाषा, अपनी ही चीज नजर आती है शायद। मुखातिब होने का तरीका भी बिल्कुल सरल सहज होता है, हालांकि बात सीधे–सीधे नहीं कह दी जाती । प्रश्न उठाए जाते हैं और उनके उत्तर थाली में परोसकर नहीं रख दिए जाते। मैंने यह महसूस किया है कि शहरी समझ और गाँव की समझ जैसी कोई श्रेणियाँ नहीं होती। समझ के स्तर पर कही कोई खाई नहीं होती। बात आदि सलीके से कही जाए तो बच्चे, बूढ़े, जवान के स्तर पर, गाँव और शहर के नागरिक के स्तर पर समान रूप से संप्रेषित होती है। शुरु में मेरी पकड़ केवल गाँव के दर्शकों पर थी, शहर में पकड़ बनाने में समय लगा।'[६]

हबीब तनवीर ने भारतीय लोक–शैलियों का अध्ययन कर अपनी रंग–यात्रा को समृद्ध बनाया और इन सब शैलियों का प्रयोग उन्होंने अपनी प्रस्तुतियों में किया। परिणाम स्वरुप उनकी प्रस्तुतियाँ लोक–शैलियों से सम्पृक्त होते हुए भी आधुनिक और समकालीन दिखती रही। हबीब के अनुसार, 'लोक कलाकारों के साथ काम कर रहा था, बहुत–सी लोक धुनों का इस्तेमाल कर रहा था, लेकिन मेरी जो चेतना थी वे सारे अनुभव बटोरे हुई थी, चेतना के भू–तल पर तमाम तरह की अंतक्रियाओं की हलचल थी और लोग इसे जो भी नाम देते हो पर मैं दरअसल समकालीन और आधुनिक रंगमंच ही कर रहा था, आज भी वही कर रहा हूँ।'[७]

तनवीरजी ने सदैव अपनी एक विशेष लोक–शैली की परिकल्पना को ही अपने नाटकों में साकार किया और सफल हुए। उनकी रंग प्रस्तुतियों में नृत्य–गीत भी अंतर्निहित रहे जो कि लोक की आत्मा होती है। उनकी प्रस्तुतियों में उन्मुखता, सहजता तथा एक विशेष प्रकार का अनगढ़पन भी देखने को मिलना है। यह अनगढ़पन किसी कमी को न दर्शाकर उसे और ज्यादा सफल बना देता है। वास्तव में यही लोक है, जो किसी परम्परा में बँधना नहीं चाहते। वह तो अपने लिए एक उन्मुक्त आकाश चाहते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

१. जिस हबीब नई देख्या– देवेन्द्रराज अंकुर, जनसत्ता, रविवार, १ सितंबर २००२, पृ. सं. १

२. पिछले साठ साल के अभिनय के बारे में कुछ विचार–हबीब तनवीर, नटरंग, खंड–१३, अंक–५०, पृ.सं.१०
३. नाट्यदर्शन–संगीता गुन्देचा, संगीत नाटक अकादमी–वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण पृ. सं. ८१–८२
४. पाखी (हिन्दी मासिक पत्र) अमितेश, ६ जून, २०११
५. अपनी जमीन पर हबीब तनवीर से शम्पा शाह की बातचीत, लोक से –सं. पीयूष दईया, पृ. ६५६
६. अपनी जमीन पर–हबीब तनवीर से शम्पा शाह की बातचीत, लोक– सं. पीयूष दईया, पृ. ६५६
७. पिछले साठ साल के अभिनय के बारे में कुछ विचार – हबीब तनवीर, नटरंग खंड १३, अंक ५०, पृ. सं. १३

फोन. 738552 77 64
मेल –nilofarchaudhari@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834 Website : www.ginajournal.com ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 232-235

सामाजिक चेतना और यथार्थ के कवि : स्वप्निल श्रीवास्तव

Swapnil Shrivastava
Research Scholar, Asian International University, Imphal. West Manipur.

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के मूल अवधारणा से अभिसिंचित, अनुप्रमाणित कविताओं ने मानव जीवन को एक सार्थक एवं सम्यक् दिशा प्रदान की है। कवि अपने सामाजिक परिवेश में घटी रही घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है या यों कहें कि कवि अपने युग में जीता है और उसका भरसक प्रयास रहता है कि वह अपनी कविताओं में युगीन जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करें। गम्भीर सृजन और कथ्य के प्रति समर्पण तभी सम्भव हो पाता है जब जिन्दगी के अनसुलझे सवालों और ह्रदय के उ०ारों को छूने की पुरजोर कोशिश होती है।

स्वप्निल श्रीवास्तव जी सामाजिक चेतना और यथार्थ की अभिव्यक्ति में विश्वास करते हैं और यथार्थ को ही रचनाकर्म का उद्देश्य मानते हैं। उनकी कविताएँ समसामयिक समाज की वास्तविकता का सच्चा प्रतिनिधिकर्ता बनकर पाठकों के समक्ष उपस्थित हुयी है और आने वाले समय के लिए प्रेरणास्त्रोत का कार्य करेगी। कवि अपने परिवेश और परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होता है, वह सदैव समाज से सम्बद्ध होकर अपने काव्य के दृष्टिकोण को विकसित करता है। लोक जीवन से अर्जित जीवन्त अनुभवों को स्वप्निल श्रीवास्तव कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति देकर सामाजिक चेतना को परिष्कृत करते हैं। कवि अपनी कविताओं को सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट रखते हैं। उन्होंने साम्प्रदायिकता, सामाजिक–आर्थिक समस्याओं, गरीबी, दुःख और जीवन संघर्षों को चित्रित किया है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ सीधे सामान्य जनता से जुड़ी हुयी है और उनका काव्य यथार्थ की अभिव्यक्ति का काव्य है :–

"मेरे पितामह ने मुझे हिन्दू बनाया
मैं एक अच्छा मनुष्य बनने से रह गया।"[1]

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में हाशिए पर खड़े व्यक्ति की दशा–दुर्दशा और उसके अभ्युत्थान हेतु बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन स्वप्निल श्रीवास्तव जी ने हाशिए पर धकेले गए लोगों को जिस तरह से चित्रित किया गया है, जो यथार्थ अंकन किया है, सामाजिक चेतना को जागृत करने का जो भरसक प्रयास किया है। वह बेमिसाल होने के साथ–साथ ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी है। आर्थिक विषमता का एक उदाहरण देखिए :–

"प्रजा भेड़ है
जिधर चाहे हांक दे राजा

प्रजा दुख सहती है
भूखी रहती है
घाम–बतास में परिश्रम करती है
जब मजदूरी मांगने आती है प्रजा
तो उसकी हथेली पर नफ़रत से थूक देता है राजा
प्रजा बिना गुस्से के लौट आती है।''[2]

सामाजिक चेतना और यथार्थ को प्रकट करते हुए स्वप्निल जी ने अपनी कविता में समाज के उस पक्ष की ओर इशारा किया है जहाँ लोग श्रम की जगह चाटुकारिता को प्रश्रृय देते हैं और इसे ही जीवन जीने का मूल आधार मान रखा है। उन्हें लगता है कि किसी के सामने स्वार्थवश झुकने से अपने सारे कार्य सिद्ध हो जाएँगें। इसी कारण समाज अत्याधुनिकता को ग्रहण करते–करते अपने मानवीय मूल्यों को खोता जा रहा है, जिसे स्वप्निल जी की कविता 'सभ्यता' में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है :–

''वे हमें सभ्य बनाने आये थे
उन्होंने हमें हाथ की जगह छूरी–काटों से
खाना सिखाया
हाथ को मुँह से किया दूर
उन्होंने हमें पीना सिखाया
स्त्रियों में जगायी दिलचस्पी
उसे आनन्द की वस्तु बनाया
उन्होंने हमें झुकने के तरीके बताए
और कहा सफल होने के लिए झुकना
अच्छा व्यायाम है।''[3]

स्वप्निल जी समाज के इतने सन्निकट हैं कि सामाजिक चेतना और यथार्थ परक तथ्य उनके काव्य की मुख्य धारा में शामिल हो जाता है। समाज विज्ञानी की तरह स्वप्निल जी बताते हैं कि किस तरह वर्तमान परिवर्तनों के आधार पर भविष्य में सामाजिक सुधार किया जा सकता है और कैसे सामाजिक जागरूकता के द्वारा रूढ़िवादिता और कुरीतियों को निर्मूल किया जा सकता है। वास्तव में समाज मानवीय सम्बन्धों की व्यवस्था है, जिसके द्वारा मानव व्यवहार को नियन्त्रित तथा निर्देशित किया जाता है। आज सामाजिक जीवन तथा मूल्यों में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। जिसके कारण समाज की विषमता बढ़ती जा रही है। मनुष्य स्वहित के लिए अपने नैतिकता के विरूद्ध ईश्वर को भी दाँव पर लगाने के लिए तैयार हो जाता है :–

''एक दिन बाजार में मैंने ईश्वर को
धर्म–भीरूओं की खरीद–फरोख्त
करते देखा
उसे बाजार में देख, सक्रिय हो
गये व्यापारी।''[4]

नैतिकता की कमी के कारण ही आज के लोग लिंग भेद के कारण भ्रूण हत्या जैसा जघन्य पाप कर रहे हैं और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करते हैं। स्वप्निल जी हर सच्चाई से पर्दा उठाना चाहते हैं जिससे हमारा समाज अनेक प्रकार की रूढ़ियों और कुरीतियों में फँसता जा रहा है। या यों कहें कि उन्होंने सामाजिक यथार्थ के प्रत्येक पहलुओं पर अपनी पैनी दृष्टि डाली है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''अब्बाजान
आखिर मैंने क्या गुनाह किया
कि बर्बरों ने मुझे माँ की कोख में
मार डाला
मैं अपने वालिद और वालिदा का
चेहरा नहीं देख पाया
माँ के गर्भ में जिन सवालों के
बारे में सोचा था
उनकी अकाल मृत्यु हो चुकी है
मैं माँ की सुरक्षित कोख में
नहीं रह पाया महफूज
देह से बाहर आता तो क्या
बच पाता।।'' [5]

सामाजिक यथार्थ पर प्रकाश डालते हुए कवि स्वप्निल जी कहते हैं कि आज मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया है कि अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए वह अपने अन्दर की समस्त संवेदनाओं को समाप्त करता जा रहा है। इसी कारण अग्रिम समय की चिन्ता को स्वप्निल श्रीवास्तव जी ने अपनी कविता 'आने वाले दिन' में व्यक्त की है :–

''आने वाले दिन बहुत कठिन होंगे
इतने कठिन कि बाजार अथवा
दफ्तर से घर पहुँचना
होगा मुश्किल
बीच रास्ते में अपहृत होने की
संभावना बढ़ेगी
हत्या को उद्योग
झूठ को राजधर्म घोषित
कर दिया जायगा।''[6]

सृजन सन्दर्भों के अन्तर्गत स्वप्निल जी की रचना धर्मिता ने अपनी संवेदनशीलता और अनुभूति से समकालीन सन्दर्भों को बखूबी उजागर किया। कवि ने अपने युग की धड़कन को सुना, समझा और उसे सार्वजनिक किया। यही नहीं उन्होंने समकालीन परिवेश के विविध पहलुओं को अपनी संवेदनाओं के सहारे मुखर वाणी प्रदान की। उन्होंने कविताओं में परिवर्तित मानवीय सम्बन्धों के बदलते सन्दर्भों का खुलासा किया है। कवि

स्वप्निल की सामाजिक चेतना और यथार्थ परिवेश की पीड़ा, संवेदना तथा छुए–अनछुए पहलुओं को समान रूप से छूती हैं। यही कारण है कि कवि स्वप्निल श्रीवास्तव जी को सामाजिक चेतना और यथार्थ का कवि माना जाता है।

सन्दर्भ :-

1. स्वप्निल श्रीवास्तव, मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए, हिन्दू, पृष्ठ सं॰– 49
2. स्वप्निल श्रीवास्तव, ईश्वर एक लाठी है, राजा और प्रजा, पृष्ठ सं॰– 19
3. स्वप्निल श्रीवास्तव, रोटी के बराबर जमीन, सभ्यता, पृष्ठ सं॰– 10
4. स्वप्निल श्रीवास्तव, मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए, सब कुछ है बाजार, पृष्ठ सं॰– 37
5. स्वप्निल श्रीवास्तव, जिन्दगी का मुकदमा, अजन्में बच्चे का विलाप, पृष्ठ सं॰– 26
6. स्वप्निल श्रीवास्तव, जिन्दगी का मुकदमा, आने वाला दिन, पृष्ठ सं॰–13

पत्र-पत्रिकाएँ :-

1. इण्टरनेट (Surfing), Google, Wikipidia, Facebook, Blog, E-पत्रिकाएँ,
2. जिला पुस्तकालय, बाराबंकी।
3. अमीरूद्दौला पब्लिक लैबरेरी, लखनऊ।
4. टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ।
5. हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
6. जन चेतना, लखनऊ।

E.mail – swapnilsrivastava04@gmail.com
Mobile Number- 9695565600

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 236-242
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

अरावली पहाड़ियों में महाराणा प्रताप की नवीन सैन्य रणनीतियों का विश्लेषण

शशांक शर्मा
एम.ए., एम.फिल., नेट (इतिहास)
डॉ. अल्पना शर्मा
एम.ए. (राजनीति विज्ञान, हिन्दी), एम.फिल. पीएच.डी (राजनीति विज्ञान, हिन्दी)

सार :–

जब राणा प्रताप ने मेवाड़ के महाराणा (राजा) के रूप में पदभार संभाला, तब भारत में राजनीतिक परिदृश्य स्थिर नहीं था। मेवाड़ की प्राचीन राजधानी चित्तौड मुगल सम्राट अकबर के नियंत्रण में थी, लेकिन वह पूरे मेवाड़ पर कब्जा करना चाहता था। मुगल वंश के अधीन पूरे भारत के उनके सपने के लिए मेवाड़ को उनके अधीन करना आवश्यक था। दूसरी ओर प्रताप, आत्मसम्मान के मामले में, चित्तौड़ को अपने पूर्वजों की राजधानी बनाना चाहते थे। इसलिए सम्राट अकबर प्रताप सिंह के साथ शांति समझौता करने के लिए उत्सुक थे और इतिहासकारों का मानना है कि अकबर ने इसके लिए छह प्रतिनिधिमंडल भेजे थे। पहले तीन मिशनों का नेतृत्व जलाल खान कुर्ची ने किया, चौथे का राजा मान सिंह ने, पांचवें का राजा भगवान दास ने और छठे का राजा टोडरमल ने। भगवान दास का पाँचवाँ अभियान सबसे पहले सफल रहा, क्योंकि राणा प्रताप ने अकबर द्वारा भेंट की गई पोशाक पहनने के लिए सहमति व्यक्त की और उन्होंने अपने बेटे अमर सिंह को मुगल दरबार में भेजा, लेकिन बाद में महाराणा प्रताप ने सभी अभियानों को अस्वीकार कर दिया, अस्वीकृति का मुख्य कारण यह था कि, महाराणा मेवाड़ की स्वतंत्रता, अखंडता और संप्रभुता से समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे। शांति पूर्ण समाधान के लिए अकबर के सभी प्रयास निष्फल रहे। तब अकबर ने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से दुश्मन का सामना करने का विचार किया। अकबर ने मेवाड़ और महाराणा प्रताप के पूर्ण विनाश की योजना बनाई। मेवाड़ को जीतने के लिए, अकबर ने प्रताप सिंह को छोड़कर सभी राजपूत शासकों को जीत लिया। एक विस्तृत योजना और सावधानीपूर्वक कार्यान्वयन के बाद, अकबर ने 1573 में मेवाड़ को अपने पारंपरिक सहयोगियों से घेर लिया। उन्होंने प्रताप सिंह के एक छोटे भाई कुंवर सागर सिंह को प्रताप सिंह को उखाड़ फेंकने के बाद मेवाड़ का नेतृत्व करने के लिए नियुक्त किया। अकबर का यह कदम उल्टा पड़ा क्योंकि सागर ने मुगल दरबार में आत्महत्या कर ली, क्योंकि वह देशद्रोही कहलाना नहीं चाहता था।

यह शोध पत्र मुगल साम्राज्य के खिलाफ़ अपने प्रतिरोध के दौरान अरावली पहाड़ियों के बीहड़ इलाकों

में इस्तेमाल की गई महाराणा प्रताप की सैन्य रणनीतियों की जांच करता है। यह गुरिल्ला युद्ध के उनके अभिनव उपयोग, प्राकृतिक भूगोल के रणनीतिक उपयोग और स्थानीय संसाधनों और आदिवासी समुदायों को संगठित करने की उनकी रणनीति की पड़ताल करता है। इन रणनीतियों का अध्ययन करके, यह शोध पत्र इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे महाराणा प्रताप ने एक श्रेष्ठ दुश्मन के खिलाफ़ अपने अभियान को जारी रखा, और भारतीय इतिहास में एक मास्टर रणनीतिकार के रूप में अपनी विरासत स्थापित की।

परिचय :-

महाराणा प्रताप को एक महान् सेनानायक, कुशल सैन्य प्रबंधक एवं देश के स्वाभिमान व गौरव के रक्षक के रूप में न केवल राजस्थान, बल्कि संपूर्ण भारत में बहुत श्रद्धा एवं सम्मान के साथ जाना जाता है। उन्होंने एक ऐसी युद्धनीति एवं रणनीति की व्यवस्था की जिससे वर्षों तक मेवाड़ ने अदम्य वीरता दिखाते हुए मुगलों के विरुद्ध संघर्ष किया और उन्हें पराजित किया। महाराणा की गौरवपूर्ण गाथाएं आज भी मेवाड़ की अरावली पहाड़ियों में गुंजायमान हैं। 1572 में मेवाड़ की गद्दी पर बैठने के बाद प्रताप ने गोगुंदा को सैन्य प्रबंध की दृष्टि से अपना प्रमुख केंद्र बनाया। यह क्षेत्र दुर्गम पहाड़ियों से घिरा हुआ था। गोगुंदा के अतिरिक्त उदयपुर एवं कुंभलगढ़ दो अन्य प्रमुख केंद्र थे,जहां मेवाड़ की अन्य सैनिक टुकड़ियां रहती थीं।

महाराणा ने अपनी सेना को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा। प्रथम पैदल सेना एवं दूसरी घुड़सवार सेना। सेना को विभिन्न टुकड़ियों में बांटकर सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों पर तैनात किया। मेवाड़ में अरावली पर्वतमाला, सघन वन, ऊंची–नीची घाटियां, नदियां, दुर्गम संकरे मार्ग सुरक्षा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थे। प्रताप के लिए मुगलों के विरुद्ध मैदानी युद्ध के स्थान पर छापामार युद्ध पद्धति अधिक उपयोगी थी। इस कारण प्रताप ने मुगलों के विरुद्ध यही पद्धति अपनाई, जिसमें अरावली के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र अधिक उपयोगी सिद्ध हुए। छापामार युद्ध नीति के अंतर्गत बाह्य आक्रमणकारियों पर अचानक हमला बोलकर किसी सुरक्षित स्थान में जाकर अपनी सुरक्षा की जाती है, फिर अचानक शत्रु दल पर दोबारा हमला कर दिया जाता है। उनकी रसद सामग्री आदि को हानि पहुंचाई जाती है। प्रताप द्वारा अपनाई गई इस युद्धनीति के कारण मुगल घुड़सवारों के लिए मेवाड़ की इन संकरी घाटियों से होकर आक्रमण करना कठिन हो गया। अपने सैन्य प्रबंध के अंतर्गत प्रताप ने ऊंचे पर्वतीय भाग के संकरे दर्रों पर चौकियां स्थापित कीं।

इन संकरी घाटियों में द्वार लगाकर सुरक्षा की व्यवस्था की गई। इससे बाह्य आक्रमणकारियों की सेना के लिए संकरे दर्रों से होकर निकलना कठिन हो गया। यदि आक्रमणकारियों की सेना किसी तरह इन संकरे दर्रों को पार कर भी लेती तब भी उसे बहुत क्षति उठानी पड़ती। महाराणा प्रताप के समय देबारी, चीरवा, रेसूरी, धांगड़मऊ, ऊंदरी घाटी, हल्दी घाटी से शत्रु सेना का प्रवेश करना कठिन था। उनकी सैन्य व्यवस्था में अरावली पर्वतमाला इस प्रकार भी सहायक रही कि इस पर्वतमाला में स्थित गुफाओं में प्रताप ने अपना कोष, शस्त्र एवं अन्य साधन सामग्री जुटाई। ऐसी गुप्त कंदराओं में चावंड के पास की जावरमाला, गोगुंदा के पास मायरा और मचीन आदि की गुफाएं प्रमुख हैं।

मुगलों से संघर्ष से पूर्व प्रताप ने मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्र के स्थानीय निवासियों को संगठित किया, जो उनकी युद्ध नीति एवं सैन्य प्रबंध के लिए उपयोगी सिद्ध हुए। वन एवं पहाड़ी क्षेत्र में निवास कर रही भील जनजाति से प्रताप के बड़े आत्मीय संबंध थे। उन्होंने अपने सैन्य प्रबंध में इन लोगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

पहाड़ों पर बसे इस समुदाय के लोगों ने तीर, पत्थर आदि द्वारा मुगल आक्रमणकारियों को बहुत हानि पहुंचाई। भील जनजाति के लोग यहां की दुर्गम पहाड़ियों एवं मार्गों से भली–भांति परिचित थे। उन्होंने प्रताप का साथ देकर मुगल आक्रमणकारियों को भीतर की ओर जाने से रोका एवं संघर्ष कर वापस लौट जाने पर मजबूर किया। प्रताप की छापामार युद्ध पद्धति में भील बहुत सहायक सिद्ध हुए। राणा के सैन्य प्रबंध के अंतर्गत रसद सामग्री उपलब्ध करवाने, संदेशवाहक का कार्य करने एवं गुप्तचर विभाग के कार्य संचालन में भीलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आवाज के संकेत देकर मारकर अथवा ढोल बजाकर संकेत के द्वारा वे एक से दूसरी पहाड़ी पर शीघ्रता से संदेश पहुंचा देते थे। पूंजा भील जैसे प्रताप के सहयोगियों ने मेवाड़ के सुरक्षा प्रबंध में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने अपने सामंतों को उचित सम्मान प्रदान कर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष में अपने साथ लिया। प्रताप का कुशल सैन्य प्रबंध, स्थानीय निवासियों एवं सामंतों आदि को साथ लेने की नीति, त्याग एवं देश प्रेम के कारण मुगलों के विरुद्ध प्रताप का युद्ध संपूर्ण मेवाड़ की जनता का युद्ध बन गया। प्रताप ने अपनी युद्ध नीति एवं सैन्य प्रबंध के अंतर्गत पूर्वी मैदानी भाग को उजाड़ दिया।

1576–85 : युद्ध नीति एवं सैन्य प्रबंध :–

हल्दी घाटी के युद्ध के बाद जब मुगल सेना अपने डेरे में लौटी तब भीलों ने उन्हें रातभर लूटा। घात–प्रत्याघात की विधि से उन्हें चैन न लेने दिया। प्रताप के अधिकारियों ने गोगुंदा को खाली करवा दिया था। युद्ध के अगले दिन मुगल सेनापति मानसिंह अपने सैनिकों के साथ गोगुंदा आया। वह अचानक आक्रमण की संभावना से भयभीत रहा। इसलिए वह खाइयां खुदवाकर एवं दीवार बनवाकर किसी तरह रहने लगा।

प्रताप ने गिरवा के पहाड़ी क्षेत्रों के नाकों पर सिपाहियों को लगाया, जिन्होंने गोगुंदा में ठहरी हुई मुगल सेना की रसद बंद कर दी। मुगल सेना को रसद पहुंचाने वाले बंजारों को रोकने के लिए गोगुंदा पहुंचने के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिए गए। मुगल सैनिक एक प्रकार से यहां कैदियों की तरह जीवन व्यतीत करने लगे। अपने घोड़ों एवं ऊंटों को मारकर खाने लगे।

मुगल सैनिकों को रोटी न मिलने पर उन्हें जानवरों का मांस एवं आम के फलों पर जीवित रहना पड़ा। परिणामतः बहुत से सैनिक रोगग्रस्त हो गए। सैनिकों की स्थिति दयनीय थी। मानसिंह गोगुंदा में तीन माह व्यतीत करने के बाद भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाया। भगवान दास, मानसिंह, मिर्ज़ा खानखाना, कासिम खां आदि गोगुंदा पर कब्जा करने के लिए भेजे गए।

मुगल सैनिकों के गोगुंदा से निकलने के बाद प्रताप ने कुंभलगढ़ से लेकर सराड़ा तक तथा गोडवाल से लेकर आसींद और भैंसरोडगढ़ के पहाड़ी नाकों पर भीलों की विश्वस्त टोलियों को बसा दिया। भील शत्रु को भीतर आने से रोकते थे। प्रताप ने इन भील रक्षकों के साथ अपने अन्य सैनिक भी इन नाकों पर लगाए। जैसे–जैसे मुगल आक्रमणों में शिथिलता आई, महाराणा प्रताप मेवाड़ की खोई हुई भूमि पर पुनः अधिकार स्थापित करने चले गए। 1576 एवं 1585 के बीच अकबर द्वारा अपने चार विश्वसनीय सेनानायकों के नेतृत्व में सात बार मुगल सेना मेवाड़ के विरुद्ध भेजी गई।

अकबर के इन सेनानायकों को सफलता नहीं मिली। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद प्रताप ने कुंभलगढ़ से लेकर ऋषभदेव के दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में मुगलों से संघर्ष किया। प्रताप की रक्षात्मक युद्ध नीति में मुगल आधिपत्य वाले प्रदेशों में अचानक आक्रमण करने की नीति सम्मिलित थी। जब मुगल सैनिक कुंभलगढ़, गोगुंदा आदि

स्थानों में संघर्ष करते उस समय प्रताप की सैनिक टुकड़ियां मालवा, गुजरात आदि के प्रदेशों पर आक्रमण कर देती थी। वे कई दिनों तक अपने परिवार के साथ एक लुहार के यहां ठहरे। वे लगातार अपना स्थान बदलते रहे। कभी किसी पहाड़ी पर रहते, तो कभी दूसरी पहाड़ी पर चले जाते थे। उन्होंने छापामार युद्ध प्रणाली के अंतर्गत ही ऐसी रणनीति बनाई। मुगल मैदानी युद्ध करने में निपुण थे। इस कारण वे इन पहाड़ी इलाकों में सफल नहीं हो सके।

1585 से 1597 तक प्रताप ने दक्षिण पर्वतीय दुर्गम क्षेत्र में चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया जहां मुगल सेना का पहुंचना बहुत कठिन था। उन्होंने मेवाड़ के पश्चिम–दक्षिण भाग के छप्पन के इलाके पर आधिपत्य स्थापित किया। चावण्ड के इलाके में महलों का निर्माण करवाया। प्रताप द्वारा चावण्ड को अपनी राजधानी बनाने से अकबर की मेवाड़ को घेर कर एकाकी करने की नीति सफल नहीं हो पाई।

चावण्ड में रहने से प्रताप का सिरोही, ईडर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, गुजरात आदि के प्रदेशों से निकट संबंध बना रहा और उनका मेवाड़ से बाहर निकलकर गुजरात एवं मालवा के क्षेत्रों पर अचानक आक्रमण करना सरल हो गया। पहाड़ों पर निवास करते हुए उन्होंने उन स्थानों पर पुनरू लोगों को बसाया एवं खेती प्रारंभ करवाई, जिन स्थानों को या तो शत्रुओं को रसद सामग्री आदि प्राप्त न हो इसलिए नष्ट कर दिया गया था या शत्रुओं ने उन स्थानों पर आग लगा दी थी। हमें ऐसे अनेक गांवों के उदाहरण मिलते हैं जिन्हें प्रताप ने पुनः बसाकर आबाद करवाया। पीपली, ढोलान, टीकड़ आदि गांवों को बसाकर यहां के लोगों को पट्टे प्रदान किए गए। महाराणा प्रताप ने सैन्य सुरक्षा की दृष्टि से अपने पड़ोसी राजपूत राज्यों से मधुर संबंध बनाकर मुगल गतिविधियों के विरुद्ध उनका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया। मित्रता की कड़ी में उन्होंने सिरोही के राव सुल्तान से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। अपने सैन्य प्रबंध के अंतर्गत पूंजा भील जैसे कई भील योद्धाओं एवं हाकिम खां सूर जैसे मुस्लिम सेनापतियों को उच्च स्थान देकर सामाजिक समरसता एवं मजहबी सहिष्णुता का परिचय दिया।

महाराणा प्रताप के लिये युद्ध में अरावली पहाड़ियों का महत्त्व :-

अरावली की पहाड़ियाँ महाराणा प्रताप के लिए मुगल साम्राज्य के खिलाफ़ उनके प्रतिरोध के दौरान बहुत महत्वपूर्ण थीं। उनके भौगोलिक, सामरिक और संसाधन–आधारित लाभों ने उन्हें उनके लंबे संघर्ष में एक स्वाभाविक सहयोगी बना दिया। यहाँ उनके महत्व का विश्लेषण दिया गया है :–

प्राकृतिक भौगोलिक लाभ :

भू-भाग : अरावली की पहाड़ियों में घने जंगल और संकरे दर्रे के साथ ऊबड़–खाबड़, चट्टानी इलाके हैं। इससे बड़ी मुगल सेनाएँ, जो घुड़सवार सेना और भारी तोपखाने पर निर्भर थीं, राजपूत सेनाओं का पीछा करने या उनसे भिड़ने में कम प्रभावी हो गईं। चुनौतीपूर्ण स्थलाकृति ने आक्रमण के खिलाफ एक प्राकृतिक रक्षा प्रदान की और प्रभावी गुरिल्ला रणनीति के लिए अनुमति दी।

जलवायु : कठोर जलवायु और जल संसाधनों की कमी ने इस क्षेत्र से अपरिचित दुश्मन सैनिकों के लिए मुश्किलें खड़ी कर दीं। स्थानीय राजपूत और भील समुदाय, इन परिस्थितियों के आदी थे, उन्होंने बेहतर तरीके से अनुकूलन किया, जिससे महाराणा प्रताप को रणनीतिक बढ़त मिली।

रक्षात्मक गढ़ :

किलेबंदी : महाराणा प्रताप ने पहाड़ियों में बसे कुंभलगढ़ और चित्तौड़गढ़ जैसे किलों का इस्तेमाल रक्षा

के गढ़ के रूप में किया। कुंभलगढ़, विशेष रूप से, अपनी लगभग अभेद्य दीवारों के लिए जाना जाता था और उनके प्रतिरोध प्रयासों के लिए एक सुरक्षित वापसी और रसद केंद्र के रूप में कार्य करता था।

छिपे हुए ठिकाने : पहाड़ियों पर छिपे हुए आश्रय और ठिकाने थे, जो महाराणा प्रताप की सेनाओं को फिर से संगठित होने और आपूर्ति संग्रहीत करने के लिए सुरक्षित आश्रय प्रदान करते थे।

भील जनजातियों से समर्थन : स्थानीय भील जनजातियाँ, जो इलाके से परिचित थीं, ने महाराणा प्रताप के प्रतिरोध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने मार्गदर्शक, स्काउट और लड़ाकों के रूप में काम किया, जिससे उन्हें पहाड़ियों पर नेविगेट करने और मुगल आपूर्ति लाइनों को बाधित करने में मदद मिली।

संसाधन जुटाना : पहाड़ियों ने भोजन, पानी और आश्रय जैसे आवश्यक संसाधन प्रदान किए, जिससे लंबे अभियानों के दौरान भी उनकी सेना का अस्तित्व बना रहा।

गुरिल्ला युद्ध के लिए आधार :-

हिट-एंड-रन रणनीति : अरावली का बीहड़ इलाका महाराणा प्रताप की गुरिल्ला युद्ध रणनीतियों के लिए आदर्श था। वह मुगल सेना पर अचानक हमला करता, पहाड़ियों में पीछे हट जाता और फिर हमला करके बड़ी और धीमी मुगल सेनाओं को निराश कर देता।

मुगल सेना का उत्पीड़न : संकीर्ण पहाड़ी दर्रों में घात लगाकर मुगल सेना की आपूर्ति लाइनों को बार-बार बाधित किया गया। इससे दुश्मन का मनोबल और रसद कमज़ोर हो गई।

मनोवैज्ञानिक महत्व :-

प्रतिरोध का प्रतीक : ये पहाड़ियाँ महाराणा प्रताप की अवज्ञा का पर्याय बन गईं, जो साम्राज्यवादी वर्चस्व के खिलाफ़ स्वतंत्रता की स्थायी भावना का प्रतीक थीं। उन्होंने न केवल शारीरिक सुरक्षा प्रदान की, बल्कि उनके सैनिकों और सहयोगियों को मनोवैज्ञानिक प्रोत्साहन भी दिया।

मुगल हताशा : कई अभियानों के बावजूद, अरावली में महाराणा प्रताप को वश में करने में अकबर की असमर्थता ने इस क्षेत्र के सामरिक महत्व को उजागर किया।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व :-

पवित्र भूगोल : अरावली क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण था, यहाँ के मंदिर और स्थानीय देवता महाराणा प्रताप और उनके आदमियों को इस भूमि को पवित्र मानने के लिए प्रेरित करते थे, जिसे हर कीमत पर बचाया जाना चाहिए।

विरासत : पहाड़ियों को उनके लचीलेपन के प्रतीक के रूप में याद किया जाता है, और उनके प्रतिरोध में उनकी भूमिका राजपूतों और भारतीयों के बीच गर्व की भावना को प्रेरित करती है। अरावली की पहाड़ियाँ सिर्फ़ एक भौगोलिक विशेषता नहीं थीं, बल्कि महाराणा प्रताप की प्रतिरोध रणनीति की आधारशिला थीं। उनके चुनौतीपूर्ण भूभाग, स्थानीय समर्थन और गुरिल्ला रणनीति के प्रभावी उपयोग ने उन्हें मुगलों के खिलाफ़ उनके संघर्ष में एक अमूल्य संपत्ति बना दिया। ये पहाड़ियाँ इस बात का उदाहरण हैं कि कैसे प्राकृतिक परिदृश्य ऐतिहासिक परिणामों को आकार दे सकते हैं, जो विषम युद्ध के लिए सुरक्षा और अवसर दोनों प्रदान करते हैं।

छापामार युद्ध (गुरिल्ला वारफेयर) :

छापामार युद्ध, जिसे गुरिल्ला वारफेयर के नाम से भी जाना जाता है, एक ऐसी युद्ध प्रणाली है जिसमें

छोटी, तेज़, और गतिशील सैनिक टुकड़ियों द्वारा बड़े और संगठित दुश्मन पर अचानक हमले किए जाते हैं। महाराणा प्रताप ने इस युद्ध प्रणाली को 16वीं शताब्दी में अत्यंत कुशलता से अपनाया और मुगल सम्राट अकबर की विशाल सेना के खिलाफ इसे प्रभावी ढंग से लागू किया। छापामार युद्ध का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है :

- दुश्मन पर हमला करके उन्हें नुकसान पहुँचाना।
- सीधे टकराव से बचते हुए अपनी सेना को सुरक्षित रखना।
- दुश्मन की रसद और संचार व्यवस्था को बाधित करना।
- लंबे समय तक युद्ध को खींचकर दुश्मन को थकाना।

महाराणा प्रताप ने इन सभी सिद्धांतों को अपनाया और अरावली पहाड़ियों की भौगोलिक विशेषताओं का कुशलता से उपयोग किया।

महाराणा प्रताप की छापामार युद्ध रणनीतियाँ :-

अचानक हमले : महाराणा प्रताप की सेना मुगल शिविरों और आपूर्ति काफिलों पर अचानक हमला करती थी। हमले का समय और स्थान अप्रत्याशित होता था, जिससे दुश्मन को जवाबी कार्रवाई का समय नहीं मिलता था।

अरावली पहाड़ियों का उपयोग : अरावली की घनी घाटियाँ, संकरे रास्ते और ऊँची पहाड़ियाँ छापामार युद्ध के लिए आदर्श थीं। महाराणा प्रताप की सेना ने इन क्षेत्रों का उपयोग छिपने, दुश्मन पर हमला करने और बचकर निकलने के लिए किया।

दुश्मन की रसद पर हमला : मुगलों की रसद लाइनों को बाधित करना उनकी रणनीति का मुख्य भाग था। अकबर की सेना की लंबी आपूर्ति श्रृंखला को बार–बार निशाना बनाकर उन्होंने दुश्मन की सैन्य क्षमता को कमजोर किया।

छोटे, गतिशील सैनिक दल : महाराणा प्रताप ने अपनी सेना को छोटे–छोटे दलों में विभाजित किया, जो तेज़ी से हमला करने और पीछे हटने में सक्षम थे। इन दलों का नेत त्व कुशल सेनापतियों द्वारा किया जाता था।

स्थानीय जनजातियों का सहयोग : भील जनजातियों ने महाराणा प्रताप की छापामार युद्ध प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भीलों ने मार्गदर्शन, जासूसी, और स्थानीय भौगोलिक जानकारी प्रदान की।

दुश्मन को भ्रमित करना : महाराणा प्रताप ने फर्जी संदेश और अफवाहों का प्रसार किया, जिससे मुगलों को गलत स्थानों पर अपनी सेना तैनात करनी पड़ी। यह रणनीति दुश्मन की सेना को विभाजित करने और कमजोर करने में सहायक रही।

रात के हमले : रात्रि में हमले करना मुगल सेना के लिए अत्यधिक हानिकारक साबित हुआ। रात के समय दुश्मन की सेना अधिक असुरक्षित होती थी, और अचानक हमलों से मुगलों को भारी नुकसान हुआ।

महाराणा प्रताप का छापामार युद्ध, उनकी सैन्य कुशलता और दृढ़ संकल्प का प्रतीक है। यह युद्ध प्रणाली उनकी परिस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ विकल्प थी और उन्होंने इसे न केवल सफलतापूर्वक लागू किया, बल्कि भारतीय सैन्य इतिहास में इसे स्थायी बना दिया। छापामार युद्ध प्रणाली यह सिखाती है कि युद्ध में सफलता केवल सैन्य शक्ति से नहीं, बल्कि रणनीति, भूगोल, और संसाधनों के सही उपयोग से भी प्राप्त की जा सकती है।

संदर्भ-ग्रंथ :-

1. जदुनाथ सरकार की रचनाएँ।
2. मुगल साम्राज्य का सैन्य इतिहास (Military History of the Mughal Empire)
3. सतीश चंद्र।
4. मध्यकालीन भारत : सल्तनत से मुगलों तक (Medieval India: From Sultanate to the Mughals)
5. आर.सी. मजूमदार।
6. भारतीय इतिहास और संस्कृति का इतिहास (History and Culture of the Indian People)
7. हरिवंश राय बच्चन।
8. वीर महाराणा प्रताप।
9. कर्नल जेम्स टॉड।
10. एनाल्स एंड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान (Annals and Antiquities of Rajasthan)
11. राजस्थान का ऐतिहासिक भूगोल।
12. प्रोफेसर इरफान हबीब।
13. इंडियन मिलिट्री स्ट्रेटेजीज इन प्री–मॉडर्न टाइम्स।
14. डॉ. गोपाल सिंह।
15. मेवाड़ का संघर्ष और स्वतंत्रता संग्राम।
16. अरावली का युद्धक उपयोगः महाराणा प्रताप के संदर्भ में।
17. कवि श्यामलदास का ग्रंथ।
18. वीर विनोद।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 243–245

बालपन की यादों का खज़ाना, कृष्णा सोवती का संस्करण 'बचपन'

डॉ. हरप्रीत कौर
क

बालपन की अवस्था सभी के जीवन में एक श्रेष्ठ व अनोखा काल मानी जाती है। एक ऐसा काल जिसमें बालक में अनोखे परिवर्तन होते हैं। हम सभी के लिए यह अवस्था जीवन का स्वर्णिम समय होता है, जिसमें बालक का सर्वांगीण विकास होता है। बालकों की सोच बड़ों के सामान नहीं होती है। उनकी सोच में, भोलापन, सच्चाई, ईमानदारी होती है, उसमें अहम या फिर दूसरों को बुरा दिखाने की भावना नहीं होती है। शायद इसीलिए तो कहा जाता है कि बालक भगवान् का रूप होते हैं, इनमें छल–कपट नहीं होता। बालपन के दौरान सभी बालकों को अपनी वस्तुएं जैसे कपड़े, किताबें, खिलौने आदि बहुत प्रिय होते हैं, साथियों के साथ खेलना और भाई–बहन का झगड़ा मानो आम बात ही है। इस अवस्था में वे तरह–तरह के अनुभवों के माध्यम से बहुत कुछ सीखते हैं। इनके यहीं अनुभव आगे चलकर ज्यादातर इनके जीवन में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

यदि हम बचपन की स्मृतियों में झांकते हैं, तो हमारा रोम–रोम खिल उठता है। "बचपन की यादें अकसर होठों पर मुस्कान बिखेर देती है। बचपन में की गई मस्तियां आपको ताउम्र याद रहती हैं। बचपन–खेलकूद, मौत मस्ती, स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रकटीकरण एवं सुखवादी सिद्धांत पर कार्य करने का नाम हैं।"[1]

बचपन हमारे जीवन की एक सुनहरी अवस्था होती है, इसीलिए अकसर हम अपनी बचपन की बातों को सोचकर मन ही मन खुश होते हैं। जब कभी जीवन में कोई समस्या, दुःख–परेशानी का सामना करना पड़ता है, तो लगता है कि बचपन ही अच्छा था न कोई तनाव होता था और न ही कोई ज़िम्मेदारी। कृष्ण सोवती ने अपने संस्करण के माध्यम से प्रत्येक पढ़ने व सुनने वाला भी उनके साथ ही अपनी बचपन की यादों में खो जाता है।

अकसर बालकों को अपने कपड़ों के साथ बहुत लगाव होता है, जब कभी उन्होंने इधर–उधर जाना होता है, तो वे अपनी पसंद के ही कपड़े पहनते हैं और हम सभी को भी शायद अपने बचपन के कुछ कपड़े याद ही होंगे जो अकसर हम पहनना अच्छे लगते थे। इसमें लेखिका कहती है कि मुझे आज भी याद है, "बचपन की मेरी कुछ फ्रॉक जैसे हलकी नीली और पीली धारी वाला फ्रॉक। गोल कॉलर और बाजू पर भी गोल कफ़। वह यह भी बताती हैं कि उनके बचपन में फ्रॉक के ऊपर की जेब में रुमाल और बालों में रंग–बिरंगे रिबन का चलन था। दो ट्यूनिक भी याद हैं और उनके चॉकलेट और ग्रे रंग था जिनके अंदर की कोटी प्याज़ी और सफ़ेद थी।"[2]

आज के बच्चों के पास इतने कपड़े होते हैं कि उनका तो कपड़ों के रंग तक याद ही नहीं रहते, परन्तु उस समय कुछ तो थोड़े से कपड़े होते थे, जो हमें आज तक याद हैं। उस समय नौकरों का चलन नहीं था। बच्चों को अपने छोटे–छोटे कपड़े जैसे रुमाल, मोज़े खुद धोने होते थे और, "इतवार की एक छुट्टी पे सभी बच्चे अपने–अपने जूतों पर पॉलिश किया करते थे।"[3] हम सभी ने भी अपने बचपन में ही जूते पॉलिस करना सीखे हैं और आज भी जब समय मिलता है तो अपने बचपन के अनुभव के सहारे खुद ही, बूट पॉलिख कर लेते हैं। आज के बच्चे तो बालों में तेल तक नहीं लगाते हैं लेकिन हमारे समय तो बालों में तेल लगाने के साथ–साथ बीमारियों से बचने के लिए तेल पीना भी पड़ता था। लेखिका लिखती हैं कि "हर शनीचन कारे हमे ऑलिव ऑयल या कैस्टर ऑयल पीना पड़ता था। बच्चे की भांति मैं कह सकती हूँ कि बहुत मुश्किल काम था, मुझे तो सुबह से ही नाक में उसकी गंध आने लगती थी।"[4] हमारे समय में माँ–बाप के बनाए नियम आँख मूंद कर माने जाते थे। अगर तेल नहीं भी पीते तो कोई बड़ी बात नहीं थी परन्तु घर के नियमों की पालना करना आवश्यक था। लेखिका यह भी मानती है कि आज के बचपन और उनके बचपन में बहुत अंतर है। जिस बात को तो हम सभी मानते हैं। न वैसे बच्चे रहे और न ही वैसा बचपन। इसके पीछे शायद समय में जो परिवर्तन आया है बड़ा कारण है, जिसने हमारे आस–पास का वातावरण बदल कर रख दिया है। जैसे–जैसे हम शिक्षा प्राप्त करते चले गये और तकनीक की लिपेट में आये वैसे–वैसे ही प्रत्येक वस्तु में बदलाव आ गया, उनके नामों में भी और प्रयोग में भी। लेखिका इस अंतर को स्पष्ट करती एक जगह पर लिखती हैं कि उन दिनों कुछ घरों में ग्रामोफोन थे, रेडियो और टेलीविजन नहीं थे। हमारे बचपन की कुल्फ़ी, आइसक्रीम हो गई है। "कचौड़ी–समोसा, पैटीज़ में बदल गया है। शहतूत और फ़ाल्से और खसखस के शरबत कोक–पेप्सी में। हमारे समय में उन दिनों कोक नहीं, लेमनेड, विमटो मिनती थीं।"[5]

लेखिका लिखती हैं कि उनका घर शिमला में मॉल रोड से ज्यादा दूर नहीं था। कन्फ़क्शनरी काउंटर पर तरह–तरह की चॉकलेट और पेस्ट्री की खुशबू मनभावनी होती थी। आज के बच्चों की भांति हमारी अलमारियां चॉकलेटों से भरी नहीं होती थी। हमें तो हफते में एक चॉकलेट खाने की छूट होती थी। जिसे भी हम घर लेकर सब काम निपटाकर बड़े ही मज़े ले लेकर खाते थे।

बहुत अंतर है आज के बचपन और हमारे बचपन में। तब हमें प्रत्येक वस्तु की कदर होती थी, उसको पाने की लालसा होती थी और उसको पाकर लगता था जैसे कोई कीमती वस्तु मिल गई हो, वो भी इतने इंतज़ार के बाद।

आज के समय में बच्चे बरगर, पीज़ा आदि खाना पसंद करते हैं, वही हमारे समय में तो हम चनाज़ोर गरम और अनारदाने का चूर्ण खाने मात्र से ही घूमने का मज़ा दुगना हो जाता था। लेखिका कहती हैं कि बचपन की सारी क्रियाएं हमने की, कुछ भी नहीं छोड़ा, "घोड़ी सवारी, रंग–बिरंगे गुब्बारे उड़ाना, भाग–भागकर ज़ाखू मंदिर तक पहुँच जाना, चर्च की घंटियों को सुनकर खुश होना अच्छा लगता था।"[6] लेकिन आज कल के बच्चे तो शायद घरों का चार दीवारों तक ही सीमित होकर रह गये हैं। खेलना–कूदना, दोस्तों के साथ मस्ती करना, भाग–भागकर सभी गलियों में छोर मचाना अच्छा लगता था और कोई कुछ कहता भी न था।

लेखिका इस बात की चर्चा भी करती हैं कि छोटी उमर में "जब मुझे चश्मा लग गया तो सभी भाई–बहनों ने मेरा खूब मज़ाक उड़ाया 'सूरत बनी लंगूर की' कहकर खूब चढ़ाया गया।"[7] अकसर बच्चे साथ वाले बच्चों के

चश्मों को देखकर उनका मज़ाक उड़ाते ही हैं लेकिन अफसोस आज के समय में तो ज्यादातर बच्चों के ऐनक लग चुकी है, तो शायद अब वो मस्ती कहाँ?

कृष्णा सोवती ने इस संस्करण में न सिर्फ बचपन की यादों को ताज़ा किया बल्कि साथ ही साथ नये–पुराने बचपन का तुलनात्मक वर्णन भी किया। यह तो सच भी है कि हमारे बचपन में जो हँसी–मज़ाक, मस्ती, बेवाकी थी वो शायद आज के बालकों में नहीं। आज उनकी जगह पर इकांत, तनाव ने ले ली है। तकनीकी युग में आवश्यकताएं तो शायद सारी पूरी हो जाती हैं लेकिन बचपन कहीं न कहीं खो रहा है।

संदर्भ सूची :-

1. बालपन और बाल विकास, राज्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्दू पटना : बिहार, पृ. 10
2. बचपन (संस्करण), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (पाठ्य पुस्तक–6), 2005, पृ. 5
3. बचपन (संस्करण), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (पाठ्य पुस्तक–6), 2005, पृ. 6
4. बचपन (संस्करण), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (पाठ्य पुस्तक–6), 2005, पृ. 6
5. बचपन (संस्करण), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (पाठ्य पुस्तक–6), 2005, पृ. 7
6. बचपन (संस्करण), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (पाठ्य पुस्तक–6), 2005, पृ. 7
7. बचपन (संस्करण), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (पाठ्य पुस्तक–6), 2005, पृ. 8–9

पता : हरप्रीत कौर सिद्धू

56, सैंट्रल टाऊन, थरीके रोड़, लुधियाना–142022

मोबाइल : 98725–05975

ई–मेल : harpreet05@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 246–250

हिंदी साहित्य का इतिहास

डॉ. नामदेव ज्ञानदेव शितोळे
हिंदी विभाग प्रमुख, सावित्रीबाई कला महाविद्यालय, पिंपळगाव पिसा
तहसील– श्रीगोंदा, जिला अहिल्यानगर, महाराष्ट्र।

सामान्यता इतिहास शब्द के बारे में किसी देश या व्यक्ति के राजनीतिक या सांस्कृतिक इतिहास से बोध होता हैं, लेकीन सच तो यह हैं कि संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं हैं जो इतिहास से संबध नहीं रखती हो। अतः कहा जा सकता हैं कि संसार की सभी भाषाओं का अपना एक इतिहास हैं। हिंदी भाषा के साहित्य का भी अपना एक अलग सा इतिहास हैं। सामान्यतः साहित्य के इतिहास में हम प्राकृतिक घटनाओं या मानवीय क्रिया–कलापों के स्थान पर साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाता हैं। आमतौर पर देखा जाये तो साहित्यिक रचनाएँ भी मानवीय क्रिया–कलापों से भिन्न नहीं हैं अपितु वे विशेष वर्ग के मनुष्य की विशिष्ट क्रियाओं की सूचक हैं। किसी भी भाषा के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उक्त भाषा के रचयिताओं तथा उनसें संबधित स्थितियों, परिस्थितिओं और परम्पराओं को समझना भी आवश्यक होता हैं। प्रारंभिक कालखंड में राजनीतिक इतिहास में राजा–महाराजाओं के जीवन–चरित्र एवं युद्ध की घटनाओं को संकलित कर देना ही पर्याप्त माना जाता था। लेकिन आगे चलकर जैसे ही इतिहास के सामान्य दृष्टीकोण का विकास होता गया, वैसे ही साहित्य के इतिहास के दृष्टीकोण में भी उसी प्रकार की सूक्ष्मता एवं गंभीरता आ गयी।

उन्नीसवी शती से पूर्व विभिन्न कवियों और लेखकों ने अनेक ऐसे ग्रथों का सृजन किया है जिनमें हिंदी भाषा के विभिन्न कवियों के जीवन–वृत्त एवं उनके कृतित्व का परिचय दिया गया है, जैसे कि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'भक्तमाल', 'कविमाला', 'कालिदास हजारा' आदि–लेकिन इनमें काल –संवत आदि का अभाव होने के कारण इन्हें इतिहास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। हिंदी साहित्य की इतिहास लेखन परंपरा में सबसे पहला प्रयास एक फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने क्रिया था। उन्होंने फ्रेंच भाषा में 'इस्त्वार दे ला ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' ग्रंथ लिखा था। जिसका प्रथम भाग १८३६ में तथा द्वितीय भाग १८४७ में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ में हिंदी और उर्दू के अनेक कवियों का विवरण वर्ण क्रमानुसार दिया है। गार्सा द तासी के ग्रंथ का महत्व इसलिए है कि इसमें हिंदी काव्य का सर्वप्रथम इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है साथ ही कवियों के रचनाकाल का भी निर्देश किया है। भारत से दूर बैठकर विदेशी भाषा में इस प्रकार का प्रयास करना भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसी कारण साहित्येतिहास–लेखन की परंपरा में, उसके प्रवर्तक के रूप में गार्सा द तासी को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है।

शिवसिंह सेंगर जी ने 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रंथ १८८३ में लिखा। इस ग्रंथ में एक सहस्र भाषा–कवियो का जीवन–चरित्र उनकी कविताओं को उदाहरण सहित प्रस्तुत करने का सही प्रयास किया गया हैं। साथ ही कावियों का जन्म–काल, रचना–काल आदि के संकेत भी हैं। लेकिन यह बहुत विश्वसनीय नही हैं। इतिहास के रूप में इस ग्रंथ का ज्यादा महत्व नही हैं। लेकिन इसमें उस समय तक उपलब्ध हिंदी–कविता संबधी ज्ञान को संकलित कर दिया हैं, जिससे आगे के साहित्यकार लाभ उठा सकते व–इस दृष्टि से इसका महत्व हैं।

जार्ज ग्रियर्सन ने सन १८८८ में 'द माडर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' नामक ग्रंथ लिखा जो मूलतः एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में था। यह ग्रंथ नाम से इतिहास न होकर भी सही मायने में हिंदी साहित्य का पहला इतिहास माना जा सकता हैं। एस ग्रंथ में जार्ज ग्रियर्सन ने कवियों और लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण किया हैं साथ ही उनकी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट करने का सही प्रयास किया हैं। इस ग्रंथ के बारे में डॉ. गणपति चंद्र गुप्त लिखते हैं– "उनके काल विभाजन संबंधी प्रयासों के गुण–दोषों पर आगे अलग रूप में विचार किया जायेगा, किन्तु यहां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के स्वरूप एवं विकास के संबध में जिस दृष्टीकोन का परिचय ग्रियर्सन ने दिया है, वह परवर्ती इतिहासकारों के लिए भी पथ–प्रदर्शक सिद्ध हुआ है।"[१]

ग्रियर्सन ने भाषा की दृष्टि सें हिंदी साहित्य का क्षेत्र निर्धारित करते हुए स्पष्ट किया हैं कि इसमें न तो संस्कृत–प्राकृत को किया जा सकता हैं और न ही अरबी–फारसी–मिश्रीत उर्दू को। अपनी भाषा–नीति को स्पष्ट करते हुए भूमिका में लिखते हैं–"मैं आधुनिक भाषा–साहित्य का ही विवरण प्रस्तुत करने जा रहा हूं। अतः मैं संस्कृत में ग्रंथ–रचना करने वाले लेखकों का विवरण नहीं दे रहा हूं। भले ही प्राकृत कभी बोलचाल की भाषा रही हो, पर आधुनिक हिंदी के अंतर्गत नहीं आती। मैंने तो अरबी–फारसी के भारतीय लेखकों का उल्लेख कर रहा हूं और न ही विदेश से लायी गयी साहित्यिक उर्दू के लेखकों ही– मैंने इन अंतिम को, उर्दुवालों को, अपने इस विचार से जान बुझकर बहिष्कृत कर दिया हैं, क्योंकि इन पर पहले ही गार्सा द तासी ने पूर्ण रूप से विचार कर लिया हैं।"[२] ग्रियर्सन हिंदी भाषा के संबध में अपनी स्पष्ट राय व्यक्त करते हैं, साथ ही उपलब्ध सामग्री को यथासंभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं। हिंदी साहित्य का विकासक्रम का निर्धारण चरण–काव्य, धार्मिक काव्य, प्रेम–काव्य, दरबारी काव्य के रूप में करके सोलहवीं–सत्रहवीं शती के युग को (भक्तिकाल) को हिंदी काव्य का सुवर्ण युग मानना ग्रियर्सन की महत्वपूर्ण उपलब्धी हैं।

मिश्रबंधुओ ने 'मिश्रबंधु– विनोद' नामक ग्रंथ लिखा जो चार भागों में विभाजित है। इस ग्रंथ के प्रथम तीन भाग १९१३ में प्रकशित हुए और चतुर्थ भाग १९३४ में प्रकशित हुआ। इस ग्रंथ में मिश्रबंधुओं ने लगभग पांच हजार कवियों को स्थान दिया है और इसे आठ से भी अधिक काल–खंडो में विभक्त किया है। कवियों के विवरण के साथ–साथ साहित्य के विविध अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है तथा अनेक अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाते हुए उनके साहित्यिक महत्व को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी अपने ग्रंथ में कवियों का परिचयात्मक विवरण देने के लिये इसी ग्रंथ का आधार लिया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' यह ग्रंथ हिंदी साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा में सर्वोच्च ग्रंथ माना जाता है। मूलतः यह ग्रंथ नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी शब्द–सागर' की भूमिका के रूप में लिखा गया था – अपनी भूमिका में ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने स्पष्ट रूप में लिखा

है– "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ती का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ती के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तीयों की परम्परा को परखते हुए साहित्य–परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ती बहुत कुछ राजनैतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिती के अनुसार होती है।"[३] इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने साहित्येतिहास को साहित्यलोचन से अलग करते हुए अपने विकासवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोन का परिचय दिया है। साथ ही इतिहास के मूल विषय को आरंभ करने से पुर्व ही काल विभाजन के अंतर्गत हिंदी–साहित्य के ६०० वर्षों के इतिहास को चार सुस्पष्ट काल–खंडों में विभक्त करते हूए अपनी योजना को निश्चित रूप में प्रस्तुत किया है।

शुक्ल जी ने संपूर्ण भक्तिकाल को चार भागों में विभाजित करके उसे शुद्ध दार्शनिक एवं धार्मिक आधार पर प्रतिष्ठित किया है। इस काल के समस्त साहित्य को पहले निर्गुण–धारा और सगुण–धारा में और फिर दोनों धाराओं कों दो–दो शाखाओं–ज्ञानाश्रयी शाखा व प्रेमाश्रयी तथा रामभक्तिशाखा व कृष्णभक्तिशाखा में विभक्त करके दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टी से अनुसंधान करने वाले लोगों के लिए अंत्यंत सरल तथा सिधा मार्ग तैयार किया है। साथ ही कवियों और साहित्यकारों के जीवनचरित संबंधित इतिवृत्त के स्थान पर उनकी रचनाओं कों साहित्यिक मूल्यांकन के आधार पर प्रमुखता दी है। इसमें कुछ चुने हुए कवियों को ही स्थान दिया है। मिश्रबंधुओं ने पांच हजार कवियों कों स्थान दिया तो शुक्ल जी ने लगभग एक हजार ही कवियों को ही स्थान दिया है। इससे शुक्ल जी महानता प्रमाणित होती है कि उन्होंने इन कवियों का प्रामाणिक, सारगर्भित एवं सोदाहरण विवेचन बहुत ही सरलता से स्पष्ट किया है। रीतिकाल के रीति ग्रंथकारों के आचार्यत्व एवं कृतित्व का सूक्ष्म विश्लेषण भी किया है। रीतिकाल के कवियोंकी उपलब्धियों तथा सीमाओं के संबंध में निर्णय शुक्ल जी देते है वे कुछ अंश तक आज भी सर्वमान्य है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने ग्रंथ में अत्यंत सूक्ष्म व व्यापक दृष्टी, विकसित दृष्टीकोण, स्पष्ट विवेचन–विश्लेषण और प्रामाणिक निष्कर्ष प्रतिपादीत किए है। लेकिन इसके साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उनके द्वारा इतिहास की रचना उस समय हुई थी जबकि हिंदी का अधिकांश प्राचीन साहित्य अज्ञात, लुप्त एवं अप्रकाशित अवस्था में पड़ा था तथा उसका प्रामाणिक अध्ययन विश्लेषण नहीं हो पाया था। सामान्यतः साहित्यकार से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह इतिहास की सभी रचनाओं का स्वयं ही अनुसंधान, अध्ययन विश्लेषण करे और निष्कर्ष के आधार पर इतिहास रचना करे। शुक्ल जी इतिहास लेखन के समय में हिंदी अनुसंधान का आरंभ ही हुआ था। ऐसी स्थिती में उनका स्वतंत्र चिंतन एवं विवेचन महत्त्वपूर्ण था। विभिन्न काव्यधाराओं एवं परम्पराओं के मूल स्रोतों और उत्सों के यथार्थ अनुसंधान में शुक्ल जी का युगवादी दृष्टीकोण भी कही–कही बाधक सिद्ध हुआ है। शुक्ल जी नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं प्रौढ विवेचना शक्ती के महत्व के समक्ष नतमस्तक होते हुए भी हमें यह कटू सत्य स्वीकार करना पडता है कि शुक्ल जी उपलब्धीयां उसी सीमा तक ग्राह्य है जहां तक वे उनके आलोचक–रूप संबध है, वहीं उनकी अनेक सीमाएं स्पष्ट होने लगती है। लेकिन फिर भी इतिहास–लेखन की परम्परा में आपका महत्त्व है और आगे रहेगा भी इस में कोई शंका नहीं है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी–साहित्य की भूमिका' नामक ग्रंथ लिखा है, जिसमें उन्होंने कालक्रम

पद्धती का अवलंब नहीं किया तो उन्होंने प्रस्तुत विभिन्न स्वतंत्र लेखों में कुछ ऐसे तथ्यों एवं निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जो हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए नयी दृष्टी, नयी सामग्री और नयी व्याख्या प्रदान करते है। आपने अत्यंत सशक्त स्वरों में उद्‌घोषित किया है कि भक्ति आंदोलन न तो तद् युगीन पराजित हिंदू जाति की निराशा से उद्वेलित है और न ही इस्लाम की प्रतिक्रिया है। यहाँ द्विवेदी जी स्पष्ट शब्दों में इस्लाम के प्रभाव को नकारते है और उसका खंडन करते हुए लिखते है– 'मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हून लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूं कि अगर इस्लाम न आया होता तो भी इस साहित्य का बाहर आना वैसा ही होता जैसा आज है।'[४] साथ ही आपने यह भी स्पष्ट किया है कि सिद्धों और नाथपंथीयों की वाणी, विचार –सरणियां, पद्धतियां व काव्य शैलियां कबीर आदि से प्रभावित है। वस्तुतः भाव, विचार, तर्क–पद्धति, भाषा, शैली आदि के आधार पर सिद्ध किया कि हिंदी का संत काव्य पूर्ववर्ती सिद्धों व नाथपंथी के साहित्य का सहज विकसित रूप है। अतः उसे केवल इस्लाम पर आधारित मानने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य द्विवेदी हिंदी साहित्य के सशक्त इतिहासकार है। पूर्ववर्ती सांस्कृतिक धाराओं, सारणियों और पद्धतियों का जैसा गंभीर अनुशीलन आपने किया एवं मध्यकालीन जन–मानस की भाव धाराओं में जैसी गहरी डुबकी आपने लगायी है, वह कोई और नहीं कर सका। आपके इतिहास की रूपरेखा, काल–विभाजन–पद्धति व काव्याधारा की नियोजन बहुत–कुछ शुक्ल जी के इतिहास के समीप है।

डॉ. रामकुमार वर्मा जी ने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' सन १९३८ में प्रकाशित किया है। इसमें वर्मा जी ने ६९३ ई. १६९३ ई. तक की कालावधि को ही लिया है। इस ग्रंथ को सात प्रकरणों में विभाजित किया है। शुक्ल जी आपने अनुसार ही प्रकरणों का वर्गीकरण किया है। लेकिन युग व धाराओं के नामकरण में किंचित परिवर्तन किया है जैसे – निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा, 'निर्गुण प्रेममार्गी (सूफी) शाखा को संतकाव्य, प्रेमकाव्य कहा है। कवियों के मूल्यांकन में वर्मा जी ने अधिक सहृदयता एवं कलात्मकता दिखाई है।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास' प्रकाशित हुआ है। इसमें समस्त हिंदी साहित्य को सोलह भाषाओं में प्रकाशित किया है। इसके प्रत्येक खंड का संपादन अलग–अलग विद्वानों के संपादन में संपन्न हुआ है। संपूर्ण ग्रंथ लेखन में सौ से अधिक लेखकों का सहयोग रहा है। इतने अधिक लोगों का सहयोग होने के कारण इस ग्रंथ में निस्संदेह अपेक्षकृत अधिक एकरूपता एवं सजिवता आ गयी है।

डॉ. धीरेंद्र वर्मा जी के संपादन में 'हिंदी साहित्य' नामक ग्रंथ भी विभिन्न विद्वानों के सामुहिक सहयोग के आधार पर लिखा गया है। इस ग्रंथ में समुचे हिंदी साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया है –आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल। अलग अध्यायों मे अलग लेखकों ने इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टीयों एवं पद्धतियों का उपयोग किया है जिससे उसमें एकरूपता, अन्विती एवं सश्लेषण का अभाव दिखाई देता है। लेकिन फिर भी हिंदी साहित्य की इतिहास–लेखन की परम्परा में इस पुस्तक का विशिष्ट स्थान है।

समस्त हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में उपर्युक्त ग्रंथों के अलावा शोध–प्रबंध और समिक्षात्मक ग्रंथ लिखे गए है। ऐतिहासिक दृष्टी से इन ग्रंथों द्वारा संपूर्ण इतिहास प्रतिपादित नहीं होता लेकीन इतिहास के किसी एक पक्ष, अंग काल को समझा जा सकता हैं। इन सभी ग्रंथों का विवेचन करना यहा संभव नहीं है लेकिन उन में से कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का नामोल्लेख करने का प्रयास किया है – डॉ. नगेंद्र –हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. भगिरथ मिश्र–हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ. सियाराम तिवारी– मध्यकालीन खंण्डकाव्य, डॉ. नलिन

विलोचन शर्मा–साहित्य का इतिहास दर्शन, डॉ. मैतीलाल मेनारिया–राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ. टीकम सिंह तोमर–हिंदी वीरकाव्य, डॉ. शिवकुमार शर्मा–हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, श्री विशवनाथ प्रसाद मिश्र–हिंदी साहित्य का अतीत, डॉ. लक्ष्मिसागर वार्ष्णेय – हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र– रीतिकाव्य की भूमिका, डॉ. विजयेंद्र स्नातक–राधावल्लभ–संम्प्रदायरू सिद्धांत और साहित्य आदि ऐसे अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए है जिनके द्वारा हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंण्डो, काव्य–रूपों, काव्य–धाराओं, उपभाषाओं के साहित्य आदि पर प्रकाश पडता है।

अंतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की परंपरा में अनेक विद्वानों ने अपना योगदान दिया है। उपलब्ध शोध–प्रबंधों के नवीन निष्कर्ष के आधार पर नये सिरे से हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन किया जा सकता है। नए सिरे से हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन करने से आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी द्वारा स्थापित ढांचे में थोड़ा बहुत बदल करना पड़ेगा क्योंकि जिस कालखंड में शुक्ल जी हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन किया था। आज ६० साल से अधिक समय हो गया है। बीच के कालखंड में नयी सामग्री प्रकाश में आ गयी है। इस नयी सामग्री के मिलने पर साहित्य इतिहास में नए सिद्धांत स्थापित होने लगे हैं, नए सिद्धातों के आधार पर साहित्य की नुतन व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास हो रहा है। जिसके कारण हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास लेखन हो रहा है जो समय की मांग है। गार्सा स तासी से लेकर आज तक अनेक विद्वानों ने अब तक हिंदी साहित्य इतिहास लेखन परंपरा में अपना योगदान दिया है। इन सभी विद्वानों ने हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन अनेक दृष्टीयों, रूपों और पद्धतियों का आकलन और समन्वय किया है जो बहुत ही संतोषजनक है। इन लेखकों ने न केवल विश्व–इतिहास–दर्शन के बहुमान्य सिद्धांतों को अंगीकृत किया है बल्कि आपने अनेक नये सिद्धांत प्रस्थापित किए है जिसका सम्यक मूल्यांकन होने पर विश्व के भाषा के इतिहासकारों ने भी इसका अनुसरण किया है। यह हिंदी साहित्य के विद्वान लेखकों की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जानी चाहिए।

संदर्भ :–

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – संपादक – डॉ. नगेंद्र, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त–पूर्व पीठिका, पृष्ठ–२६
2. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ–४१
3. हिंदी साहित्य का इतिहास–भूमिका – रामचंद्र शुक्ल–२७
4. हिंदी–साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ –४५

भ्रमणध्वनी– ९४०३३३८५१३

ई–मेल –ndshitole76@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 1-2
पृष्ठ : 251-254

भारतीय कला का अन्य संस्कृतियों पर प्रभाव

ओटाराम सैन
सहायक आचार्य, इतिहास (VSY), राजकीय महाविद्यालय देवली कला (जिला – ब्यावर)

भूमिका :–

भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से ही भारतीय कला विभिन्न माध्यमों 'जैसे स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य और साहित्य' के जरिए वैश्विक स्तर पर प्रभाव डालती रही है। इस शोध पत्र में भारतीय कला के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन किया जाएगा और यह विश्लेषण किया जाएगा कि कैसे भारतीय कला ने एशिया, यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका की संस्कृतियों को प्रभावित किया है।

1. भारतीय स्थापत्य कला का वैश्विक प्रभाव :–

भारतीय स्थापत्य शैली की अनूठी विशेषताओं को दुनिया के कई हिस्सों में अपनाया गया है।

(क) दक्षिण–पूर्व एशिया पर प्रभाव :

अंगकोर वाट (कंबोडिया) : 12वीं शताब्दी में बना यह विशाल मंदिर भारतीय द्रविड़ स्थापत्य शैली और हिन्दू धर्म से प्रभावित है।

बोरोबुदुर (इंडोनेशिया) : यह बौद्ध मंदिर गुप्तकालीन भारतीय वास्तुकला का एक प्रमुख उदाहरण है।

थाईलैंड और म्यांमार के पगोड़ा : भारतीय बौद्ध स्तूपों से प्रेरित इन संरचनाओं में भारतीय स्थापत्य कला की छाप देखी जा सकती है।

(ख) मध्य एशिया और यूरोप पर प्रभाव

गांधार शैली : भारतीय और ग्रीक कला के मिश्रण से विकसित हुई यह शैली अफगानिस्तान, पाकिस्तान और मध्य एशिया तक फैली।

मौर्य और गुप्तकालीन स्तंभों का प्रभाव : अशोक स्तंभों की शैली यूरोपीय स्थापत्य कला को भी प्रभावित कर चुकी है।

मुगल और फारसी स्थापत्य कला का संगम : ताजमहल जैसे स्मारकों ने फारसी और तुर्क स्थापत्य शैली को नया रूप दिया।

2. भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला का प्रभाव :–

भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला ने एशिया और यूरोप में अपनी छाप छोड़ी।

(क) मूर्तिकला का प्रभाव :

गंधार और मथुरा कला : भारत की मूर्तिकला ग्रीक और रोमन मूर्तिकला से प्रभावित हुई, लेकिन बदले में उसने भी बौद्ध धर्म के माध्यम से चीन, जापान और कोरिया की कला को प्रभावित किया।

बौद्ध मूर्तियाँ : जापान, कोरिया और थाईलैंड में बुद्ध की मूर्तियाँ भारतीय मूर्तिकला की विशेषताओं को अपनाती हैं।

अफगानिस्तान की बामियान बुद्ध प्रतिमाएँ : इनकी शैली भारतीय और मध्य एशियाई कला के मिश्रण का उदाहरण है।

(ख) चित्रकला का प्रभाव :

अजंता-एलोरा की गुफा चित्रकारी : इनकी शैली चीन, जापान और मध्य एशिया की बौद्ध चित्रकला में देखी जा सकती है।

मुगल चित्रकला का ईरानी और तुर्की कला पर प्रभाव : मुगल दरबार की चित्रकला ने फारसी और तुर्की कला को भी प्रभावित किया।

राजस्थानी और पहाड़ी चित्रकला : यह शैली यूरोपीय कलाकारों और ब्रिटिश औपनिवेशिक कला को भी प्रेरित कर चुकी है।

3. भारतीय संगीत और नृत्य का वैश्विक प्रभाव :-

भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य परंपराओं ने एशिया और पश्चिमी दुनिया में अपनी पहचान बनाई।

(क) संगीत का प्रभाव :

भारतीय राग प्रणाली और अरबी-फारसी संगीत : भारतीय रागों ने फारसी, तुर्की और सूफी संगीत को गहराई से प्रभावित किया।

रविशंकर और पश्चिमी संगीत : पंडित रविशंकर ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को पश्चिमी जैज और रॉक संगीत से जोड़ा।

भारतीय लोक संगीत का वैश्विक प्रभाव : बॉलीवुड और भारतीय लोक संगीत की धुनें अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय हो गई हैं।

(ख) नृत्य का प्रभाव :

भरतनाट्यम और कत्थक का पश्चिमी बैले पर प्रभाव : कई समकालीन पश्चिमी नृत्य शैलियों में भारतीय नृत्य की मुद्राओं और लयबद्धता को अपनाया गया है।

बॉलीवुड नृत्य का वैश्विक प्रभाव : आज बॉलीवुड नृत्य विश्वभर में प्रसिद्ध है और इसे कई देशों में अपनाया जा रहा है।

4. भारतीय साहित्य और भाषा का प्रभाव :-

भारतीय साहित्य और भाषाओं का प्रभाव विश्व के कई हिस्सों में देखा गया है।

(क) महाकाव्यों और धार्मिक ग्रंथों का प्रभाव :

रामायण और महाभारत का प्रभाव : इन महाकाव्यों की कहानियां दक्षिण–पूर्व एशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड और लाओस में लोककथाओं का हिस्सा बन गईं।

बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद : संस्कृत बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद चीन, जापान और कोरिया की भाषाओं में किया गया।

(ख) भारतीय भाषाओं का प्रभाव :

संस्कृत भाषा का अंतरराष्ट्रीय प्रभाव : संस्कृत ने तिब्बती, चीनी, जापानी, और दक्षिण–पूर्व एशियाई भाषाओं के साहित्य और व्याकरण को प्रभावित किया।

हिंदी और तमिल भाषा का वैश्विक स्तर पर प्रसार : भारतीय प्रवासियों के कारण हिंदी, तमिल, तेलुगु और बंगाली भाषाएँ अब दुनिया के कई हिस्सों में बोली जाती हैं।

5. भारतीय धर्म और दर्शन का वैश्विक प्रभाव :–

भारतीय धार्मिक और दार्शनिक परंपराएँ पश्चिमी जगत को भी गहराई से प्रभावित कर चुकी हैं।

(क) योग और ध्यान का प्रभाव :

आज योग और ध्यान केवल भारत तक सीमित नहीं रहे, बल्कि पूरी दुनिया में इन्हें अपनाया जा रहा है।

योग परंपराओं ने पश्चिमी जीवनशैली को प्रभावित किया और इसे चिकित्सा और मानसिक स्वास्थ्य से जोड़ा गया।

(ख) भारतीय दर्शन का प्रभाव :

वेदांत और उपनिषदों का प्रभाव : जर्मन दार्शनिकों (जैसे शोपेनहावर) और यूनानी विचारकों ने भारतीय वेदांत और उपनिषदों से प्रेरणा ली।

बौद्ध और जैन दर्शन का वैश्विक प्रभाव : अहिंसा और ध्यान की परंपराएँ आज विश्वभर में लोकप्रिय हो रही हैं।

निष्कर्ष :–

भारतीय कला ने स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य, साहित्य और दर्शन के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों को गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय कला की यह समृद्ध परंपरा आज भी विकसित हो रही है और दुनिया के कोने–कोने में अपनी छाप छोड़ रही है।

संदर्भ (References) :–

1. Brown, Percy. Indian Architecture (Buddhist and Hindu Periods). Taraporevala, 1956.
2. Michell, George. The Hindu Temple: An Introduction to Its Meaning and Forms. University of Chicago Press, 1988.
3. Singh, Upinder. A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century. Pearson, 2009.
4. Coedès, George. The Indianized States of Southeast Asia. University of Hawaii Press, 1968.
5. Goetz, Hermann. India: Five Thousand Years of Indian Art. New York Graphic Society, 1959.
6. Goswamy, B.N. Indian Painting: Themes, Histories, Interpretations. Roli Books, 2014
7. Beach, Milo Cleveland. The Mughal Paintings of Akbar's Court. Cambridge University

Press, 1981.
8. Daniélou, Alain. The Ragas of Northern Indian Music. Munshiram Manoharlal, 1997.
9. Bose, Mandakranta. Speaking of Dance: The Indian Critique. D.K. Printworld, 2001.
10. Farrell, Gerry. Indian Music and the West. Oxford University Press, 1997.
11. Neuman, Daniel M. The Life of Music in North India: The Organization of an Artistic Tradition. University of Chicago Press, 1990.

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh

SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

50 THE GAZETTE OF INDIA : EXTRAORDINARY [PART III—SEC. 4]

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसे: प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh
SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037